अप्रैल - सितंबर 2003 वर्ष : 35 अंक : 2/3

प्रतियोगिता विशेषांक

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद् की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में विकसित मशीनीकरण योग्य ग्लास-सिरेमिक

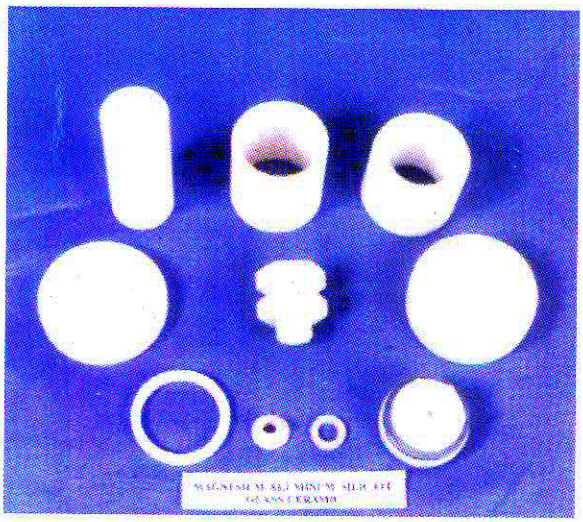

(अ) मशीनीकरण द्वारा निर्मित विभिन्न सिरेमिक घटक

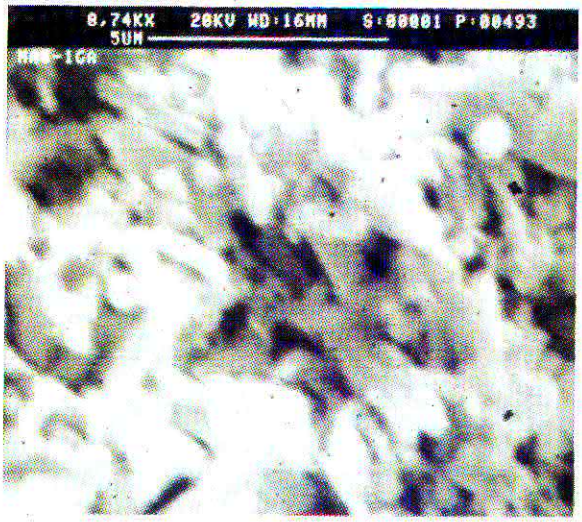

(ब) पदार्थ की अतिसूक्ष्म संरचना

: मूल्य : २० रू.

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित सिरेमिक घटकों का विवरण :

अ) ये विभिन्न घटक भा. प. अ. केंद्र के तकनीकी भौतिकी एवं प्रोटोटाइप इंजीनियरी प्रभाग में विकसित मैग्नेशियम एल्यूमिनियम सिलिकेट ग्लास सिरेमिक्स से बनाये गये हैं । ये अत्योच्च निर्वात में उच्च वोल्टता संबधी अनुप्रयोगों के लिए उपयुक्त हैं । इन्हें डायमंड मढ़े या सिलिकॉन कार्बाइड के औजारों का प्रयोग करके मशीनीकरण द्वारा विभिन्न आकारों व आमापों में बनाया गया है ।

ब) इस पदार्थ की सूक्ष्म संरचना का यह क्रमवीक्षक इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप द्वारा लिया गया चित्र है । यह विशेष प्रकार की वह संरचना है जिसमें पट्टियों की तरह के सूक्ष्म कण कांच की आधात्री (मैट्रिक्स) में एक समान रूप से वितरित हैं । यह मुख्यतः फ्लोरोफ्लोगोपाइट प्रावस्था का पदार्थ है ।

(अधिक जानकारी विज्ञान समाचार के अंतर्गत 'तकनीकी विकास' से संबंधित अनुभाग में दी गयी है ।)

वैज्ञानिक के स्वामित्व का विवरण

फार्म - 4 (नियम-8 देखिए)

प्रकाशन स्थल : मुंबई-85, **आवर्तता** : त्रैमासिक

मुद्रक व प्रकाशक का नाम, राष्ट्रीयता, पता :

श्री कुलवंत सिंह, पदार्थ संसाधन प्रभाग, भा प अ केंद्र, मुंबई - 400 085.
भारतीय, हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद

संपादक का नाम, राष्ट्रीयता, पता :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल, तकनीकी भौतिकी एवं प्रारूप इंजी. प्रभाग,
भा प अ केंद्र, भारतीय, हिं. वि. सा. प.

उन व्यक्तियों के नाम व पते जो पत्रिका के स्वामी हैं तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं -

'**वैज्ञानिक**', हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद की प्रतिनिधि पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती है ।
मैं, **श्री कुलवंत सिंह**, एत द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं ।

- श्री कुलवंत सिंह (हस्ताक्षर प्रकाशक)

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 35 अंक 2 व 3

अप्रैल-सितंबर 2003

प्रतियोगिता विशेषांक

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री कुलवंत सिंह
(संयोजक)

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री रमेश चंद्र पंत
श्री नंद लाल सोनी
श्री गोरा चक्रवर्ती
श्री मनीश कुमार
श्री करूनेश कुमार

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

श्री हरिओम मित्तल
डॉ. राज नारायण पांडेय
श्री जय प्रकाश त्रिपाठी
श्री दिनेश कुमार शुक्ल

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु.	50 रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट और उसके निहितार्थ 5
   - डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
2. विश्लेषणात्मक रसायन हेतु बीसवीं सदी की एक अनुपम भेंट : आयन वर्णलेखन 13
   - डॉ. रमाकांत रस्तोगी
3. डेन्ड्राइट कोशिकाएं : हमारे रोग प्रतिरोधीतंत्र की लंभी भुजाएं 21
   - अखिलेश कुमार तिवारी
4. ट्रांसजेनिक बी. टी. कपास 36
   - डॉ. महेंद्र सिंह
5. जैविक क्रम विकास के आइने में आंखें 40
   - डॉ. राज किशोर
6. दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टर की प्रचालन अवधि को बढ़ाने में सहायक "इन्टिग्रेटेड गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशिनिंग सिस्टम" 48
   - बॉबी सूर्यनारायण वेदुला गुरूमुर्ति शर्मा
7. जीन तकनीक 54
   - शुभा दाधीच
8. जीवन का अतिसूक्ष्म रूप-जीवाणु : कितना घातक ? कितना सहायक ? 63
   - कुमारी मिता चॅटर्जी एवं गीता चॅटर्जी
9. सतह रूपांतरित झिल्लियों द्वारा उद्योग निर्गमित प्रदूषित जल समस्या का निराकरण 70
   - डी. जगमोहन
10. वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास हेतु कुछ प्रयास 74
    - डॉ. राज नारायण पांडेय एवं
      डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा।

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं। परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है।

टिप्पणियां

1. गाय से प्राप्त विलक्षण प्राकृतिक रसायन 80
- सुभाष चंद्र एवं श्रीकृष्ण तिवारी

2. प्राकृतिक एस्ट्रोजन दूर भगाता है बुढ़ापा 81
- डॉ. गणेशकुमार पाठक

3. शहद क्रांति की जननी इटालियन मधुमक्खी 83
- विजय चितौरी

विज्ञान कथा

1. अंतरिक्ष यात्राएं और मानवीय प्रयास 76
- इरफान ह्यूमन

विज्ञान लतीफ़े/पहेलियां 79

विज्ञान कविता

1. भूकंप और विनाश 85
2. पर्यावरण के दोहे 85

विज्ञान समाचार

● भा. प. अ. केंद्र से 86
● तकनीकी विकास 87
● अन्य विज्ञान समाचार 88

संगोष्ठी समाचार 92

कुछ फूल : कुछ कांटे 96

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं। परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है।

– संपादक

संपादकीय

'प्रबुद्ध यंत्रीकरण' : समय की आवश्यकता

इलेक्ट्रॉनिकी, कंप्यूटर और सूचना तकनीकियों के क्रमशः विकास ने मानव समाज के लिए नित नये-नये अनुप्रयोग एवं सुविधाओं की अनेक संभावनाओं को प्रस्तुत किया है। आज जीवन के लगभग हर क्षेत्र में कंप्यूटर तथा उनके कई सूक्ष्म रूप यथा माइक्रोप्रोसेसर एवं माइक्रोनियंत्रक किसी न किसी रूप में प्रवेश कर चुके हैं। आम व्यक्ति ने भी उन्हें सहज स्वीकार कर लिया है। कंप्यूटर संबंधी घटकों की उपलब्धता तो महत्वपूर्ण है ही, परंतु इनके समायोजन एवं बुद्धिमतापूर्ण अनुप्रयोगों ने विज्ञान एवं तकनीकी विकास के साथ-साथ उच्च कोटि के जीवन को देने में अपनी अहम् एवं प्रभावी भूमिका भी सिद्ध कर दी है।

इस सृष्टि का सुचारू रूप से चलते रहना, प्रकृति के अनमोल नियंत्रण प्रक्रिया की देन है जिसके बारे में वैज्ञानिक-गण जानने की कोशिश में लगे हैं। इसी प्रयास में वैज्ञानिक सदैव से अपने दृष्टिकोण एवं समझ के आधार पर परिघटनाओं के नियंत्रण कार्य में लगे हैं। आज जब प्रबल इलेक्ट्रॉनिकी, प्रकाश इलेक्ट्रॉनिकी एवं कंप्यूटर का सम्मिलन हमारे सामने है तो प्रक्रिया नियंत्रण एवं औद्योगिक उत्पादन जैसे कार्यों का प्रबुद्ध यंत्रीकरण निसंदेह नया आयाम देगा।

किसी भी प्रक्रिया के नियंत्रण एवं उसे सुचारू रूप से चलाने हेतु हमें दो काम करने होते हैं; (i) आंकड़ा (जानकारी) अधिग्रहण तथा (ii) उसका विश्लेषण। अब यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि उपलब्ध जानकारियों के आधार पर नियंत्रण के लिए किस पद्धति को अपनाया जाय ! और यहीं सोच जन्म देती है प्रबुद्ध (स्मार्ट) यंत्रीकरण को।

यूं तो यह आम समझ है कि जब दो अलग-अलग निकायों के बीच संपर्क/संचरण/ सही तालमेल करना होता है तो एक ऐसी माध्यमिक कड़ी (अंतरापृष्ठ) की आवश्यकता पड़ती है जो उन दोनों के बीच सहज संपर्क/संचरण स्थापित कर सके। यह न केवल आम जीवन की बात है बल्कि विज्ञान एवं तकनीकी शोधों और विकास के लिए भी अहम् है। इसी इंटरफेसिंग (अंतरापृष्ठीय संबंध) की मदद से यंत्रीकरण के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति देखने को मिलती है। आरंभिक तथा पारंपरिक पद्धति में मुख्य कंप्यूटर (होस्ट कंप्यूटर) को सीधे अंतरापृष्ठीय यूनिट से जोड़ देते हैं। इस प्रकार किसी प्रक्रिया की भौतिक अवस्थाओं को परिभाषित करने के लिए इस कंप्यूटर को कई उद्दीपन संकेत (सिगनल) जैसे वोल्टेज, धारा, कोणीय तथा रेखीय चाल, तापक्रम इत्यादि उत्पन्न करने पड़ते हैं। इन उद्दीपनों के प्रभावों को आंकने (जानने) के लिए कंप्यूटर को विभिन्न संसूचनों से स्थिति / दशा की जानकारी ग्रहण करनी पड़ती है। ये निर्दिष्ट नियंत्रित की जाने वाली प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति को इंगित करते हैं। इस प्रकार की पद्धति में एक समर्पित कंप्यूटर को संसूचकों से प्राप्त कच्चे आंकड़ों (Raw Data) को नियमित रूप से संसाधित करते रहना पड़ता है और नये-नये उद्दीपनों के लिए लगातार सूचना देनी पड़ती है। इस कारण यह कंप्यूटर सरल से सरल कामों के लिए व्यस्त हो जाता है जो इसका अदक्षता पूर्ण अनुप्रयोग कहा जा सकता है। और यह अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों जैसे आंकड़ा विश्लेषण, निर्देशन इत्यादि के लिए उपलब्ध नहीं रहता है। इस प्रकार की पद्धति में अधिक लागत आती है जो आधुनिक संकल्पना के दृष्टिकोण से कहीं भी स्वीकार्य नहीं है।

दूसरी पद्धति जिसमें बड़े से बड़े काम तथा क्लिष्ट प्रक्रियाएं यानी जिनमें अत्याधिक मात्रा में आंकड़ा अधिग्रहण के साथ-साथ बारीकी के साथ नियंत्रण काम होता है, को कम लागत पर दक्षता से पूरा करना संभव होता है, बौद्धिक यंत्रीकरण संकल्पना पर आधारित होता है। इसमें यंत्रीय बुद्धिमता को सूझ बूझ के साथ संसूचकों या

नियंत्रणों तथा मुख्य कंप्यूटर के बीच वितरित करते हैं। इससे अभीष्ट प्रक्रिया / अनुप्रयोग के कई छोटे-छोटे काम पूरा करने के लिए स्थानीय बुद्धिमता (स्वतंत्र नियंत्रण) युक्त यंत्रीकरण का प्रयोग होता है। इससे होस्ट कंप्यूटर अनावश्यक कार्यों को करने में व्यस्त रहने से बच जाता है और उसकी क्षमताओं का सही उपयोग विश्लेषण जैसे महत्वपूर्ण कामों को कम लागत पर दक्षता से करने में होता है। यह उल्लेखनीय है कि इस बुद्धिमता को देने वाले हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर का निरंतर विकास अद्यतन गणनात्मक एवं वैश्लेषिक मांगों को पूरा करने के लिए, अत्यंत आवश्यक है। इसे किसी भी कीमत पर गौण नहीं समझा जा सकता है। यही कारण है कि इस तकनीक में निरंतर अपग्रेडेशन (उन्नति) का कार्य चलते रहना चाहिए। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगविद अधिक से अधिक शक्तिशाली एवं तीव्र कंप्यूटर-माइक्रोप्रोसेसर माइक्रो-नियंत्रकों का विकास जारी रखे हैं।

यंत्रों में स्थानीय बुद्धिमता के समावेश के कई उल्लेखनीय लाभ हैं। जैसे स्वायत रूप से गौण तथा पुनरावृत्ति किस्म के कामों की देखभाल व प्रबंधन। स्थानीय हार्डवेयर (इलेक्ट्रॉनिकी) का बारीकी के साथ नियंत्रण जिससे यंत्र विशेष की सम्मिश्र स्थिति तथा निदान संबंधी जानकारियों को उपलब्ध कराना आसान हो जाता है। संवेदकों (संसूचकों) में होने वाले ऑफ सेट, समय एवं ताप पर आधारित ड्रिफ्ट, अरैखिक व्यवहार का अपने आप मापन तथा सुधार (correction) हो जाता है। अधिग्रहित आंकड़ों का सारांश (सूचीबद्ध करना), उनका शुद्धिकरण और फिर उनको यथोचित रूप में तैयार कर प्रेषित करना संभव हो जाता है। यंत्र का गत्यात्मक पुनःसंरूपण (रिकन्फिगुरेशन) जिसमें होस्ट से नियंत्रण संबंधी विभिन्न जानकारियों को लेना, उनका संरूपण करके स्थानीय प्रोसेसर में उपयोग करना आदि काम आते हैं, किया जा सकता है। चूंकि होस्ट की कार्यक्षमता / कार्यकुशलता विभिन्न बौद्धिक यूनिटों / इकाइयों जिन्हें जोड़ा गया है, से स्वतंत्र रहती है, इसलिए कई संसूचकों तथा नियंत्रकों का संरूपण संभव हो पाता है। एक या अधिक उभय (common) आंकड़ा स्तंभ (Data Bus) जैसे RS232C, RS485 को आसानी से तथा कम लागत पर जोड़ सकते हैं।

इस प्रकार बौद्धिक यंत्रीकरण की बहुमुखी क्षमताओं से औद्योगिक अनुप्रयोगों जैसे उत्पाद निर्माण, प्रक्रिया संसाधन, स्वप्रबंधन इत्यादि में अभिनव सोच उपजी है। यही नहीं भविष्य में होने वाले हार्डवेयर-सॉफ्टवेयर उन्नतीकरण भी इनमें आसानी से समाविष्ट हो सकेंगे और इससे यंत्र की उपयोगिता व जीवन काल दोनों ही बढ़ सकेंगे। अतः इन उन्नत किस्म के घटकों व सोच का प्रयोग समय की आवश्यकता है। इनका लाभ राष्ट्र की आय बढ़ाने तथा जनजीवन में सुधार लाने में हो सकेगा।

●

वर्ष 2003 का अप्रैल-सितंबर अंक प्रतियोगिता विशेषांक के रूप में प्रस्तुत है जिसमें वर्ष 2002 में आयोजित अखिल भारतीय डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता में पुरस्कृत लेखों का समावेश है। अन्य सामग्रियों में पूर्ववत् - विज्ञान कथा-कविता, विज्ञान समाचार सम्मिलित किये गये हैं। विज्ञान संचारकों की द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में पुरस्कृत लेख, संगोष्ठी समाचार को विशेष रूप से दिया गया है। 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' की वार्षिक रिपोर्ट एवं नयी कार्यकारिणी संबंधी जानकारी भी इसमें उपलब्ध करायी गयी है। वर्ष 2003 की लेख प्रतियोगिता की अंतिम तिथि को 15 जनवरी 2004 तक बढ़ा दिया गया है। पाठकों से निवेदन है कि वे खुद तो अधिक से अधिक संख्या में भाग लें, साथ ही अन्य इच्छुक लेखकों को भी भाग लेने के लिए प्रेरित करें। हिंदी में विज्ञान साहित्य सृजन में यह आपका अमूल्य सहयोग होगा।

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट और उसके निहितार्थ

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,
वी. एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द, मुंबई - 400 088

ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट यानी मानव संजीन परियोजना विगत कई वर्षों से निरंतर सुर्खियों में है। जीनोम वस्तुतः किसी जीव का संपूर्ण डीएनए समूह होता है। ह्यूमन जीनोम परियोजना का उद्देश्य मानव में पाये जाने वाले समस्त डीएनए का मापन है। वैज्ञानिक समुदाय के साथ-साथ समाचार जगत में भी इसकी चर्चा हो रही है। 26 जून, 2001 को विज्ञान की उपलब्धियों में तब एक स्वर्णिम अध्याय और जुड़ गया जब ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट के रफ ड्राफ्ट के पूरा होने की औपचारिक घोषणा की गयी। ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट की इस कामयाबी को इंसान के चंद्रमा पर पदार्पण के बाद की अब तक की सबसे बड़ी घटना के तौर पर लिया गया। इस परियोजना के क्या लक्ष्य थे, लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में कहां तक पहुंचा जा चुका है तथा इसके क्या लाभ हैं, इत्यादि प्रश्नों पर इस लेख में कुछ प्रकाश डाला गया है।

आइए, देखें कि ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट है क्या, और इसकी पृष्ठभूमि क्या है। दरअसल ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट अपने प्रारंभ से ही एक महत्वाकांक्षी परियोजना रही है। परियोजना में अमरीका के यू. एस. डिपार्टमेंट ऑफ एनर्जी तथा नेशनल इंस्टीट्यूट्स ऑफ हैल्थ की भागीदारी थी। ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट का औपचारिक श्रीगणेश 1990 में हुआ था। उस समय इस प्रॉजेक्ट को पूरा करने के लिए 15 साल की अवधि तय की गयी थी। लेकिन कालांतर में तत्संबंधी प्रौद्योगिकी में अपेक्षा से कहीं तीव्रतर प्रगति होने से इस परियोजना का कार्य तेजी से बढ़ा। फलतः यह परियोजना अपनी तय अवधि से दो साल पहले ही पूरी होने जा रही है। विज्ञान जगत के लिए यह निश्चित रूप से एक सुखद संयोग ही होगा जब ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट अपनी पूर्णता को प्राप्त होगा, यह साल **वाटसन** और **क्रिक** द्वारा 1953 में की गयी डीएनए संरचना की खोज का स्वर्ण जयंती वर्ष भी है। ऐसा माना जा रहा है कि इस परियोजना के पूर्ण होने के साथ ही विज्ञान की कई विधाओं में अभूतपूर्व घटनाएं हो जायेंगी। इसीलिए यहां तक कहा जाने लगा है कि इक्कीसवीं सदी जीवविज्ञान की सदी है क्योंकि जीवविज्ञान आगे चलकर ज्ञान-विज्ञान के अनेक आयामों के साथ समाज के व्यापक सरोकरों को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखता है। बहुत हद तक यह सही भी जान पड़ता है। ऐसा इसलिए कि आज विज्ञान में हो रहे शोधकार्यों में अधिकतर परोक्ष या अपरोक्ष रूप से जीवन या जैविक कार्यों से जुड़े हैं। अतः यदि जीवविज्ञान को लेकर इतना उत्साह है और इतनी उम्मीदें हैं तो उसे अतिरंजित नहीं कहा जाना चाहिए। आइए, देखें कि इंसान के जीनोम के बारे में जान लेने पर मानव जीवन और उसके सरोकारों पर आखिर क्या फर्क पड़ेगा ? क्या जीनोम को पूरी तरह जान और समझ लेने से मानव रोग-व्याधियों सहित तमाम जैविक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेगा जो अभी तक उसके लिए कठिन था।

परियोजना को शुरू करते समय उसके छः लक्ष्य निर्धारित किये गये थे, यथा-

(1) इंसान के डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड (डीएनए) में मौजूद कूल लगभग एक लाख जीनों की पहचान करना,

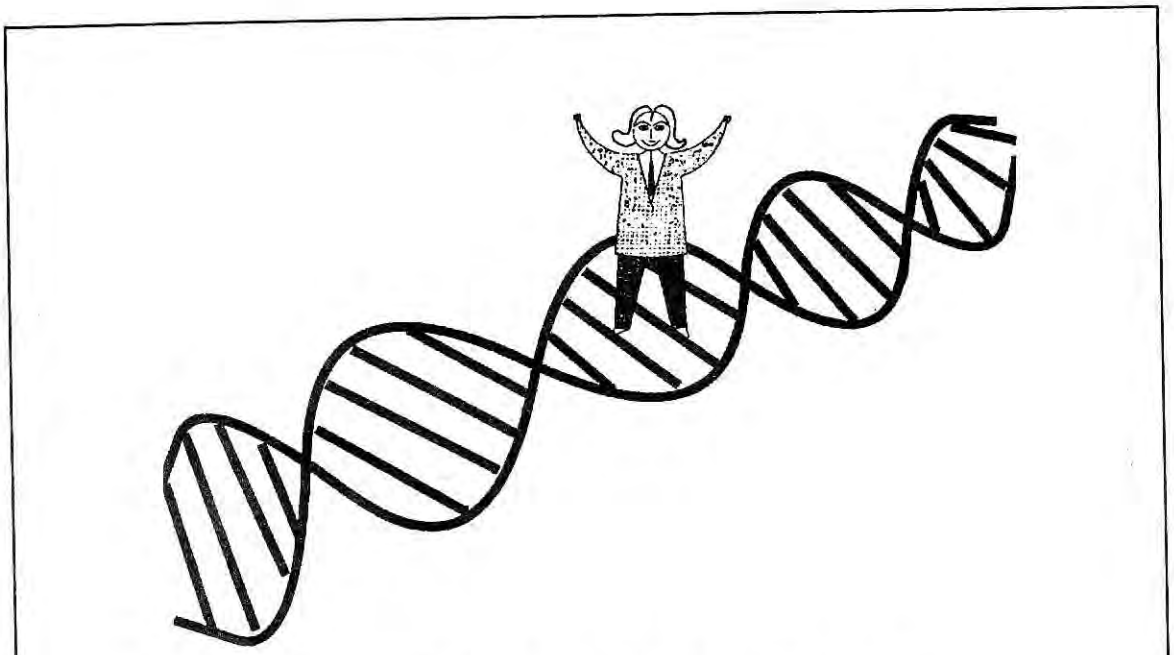

चित्र-1 : डीएनए द्विकुंडली अर्थात जीवन की सीढ़ी

(2) इंसान के डीएनए में उपस्थित करीब तीन अरब बीस करोड़ क्षारकों का निर्धारण करना,
(3) सूचनाओं का डाटाबेस तैयार करना,
(4) अधिक तेज और कार्यक्षम सीक्वेंसिंग प्रौद्योगिकी का विकास करना,
(5) आंकड़ों के विश्लेषण के लिए टूल्स विकसित करना, और
(6) भविष्य में इस परियोजना से उठने वाले नैतिक, विधि संबंधित और सामाजिक मुद्दों पर विचार करना और उनके निराकरण का प्रयास करना ।

इस परियोजना के कुल तीन चरण हैं । इसका प्रथम चरण 1990 में शुरू किया गया । उस समय उसे 15 वर्षीय परियोजना के तहत लिया गया था । इस पर खर्च के लिए 3 अरब डॉलर (करीब एक खरब पचास अरब रुपये) की धनराशि स्वीकृत की गयी थी । इसके अंतर्गत मानव के लगभग एक लाख जीनों में मौजूद कुल लगभग तीन अरब क्षारयुग्मों (बेस पेअर्स) का निर्धारण करने का लक्ष्य रखा गया था । लेकिन चूंकि कार्य उम्मीद से कहीं तीव्र गति से बढ़ा, इसलिए पहली पंचवर्षीय योजना, जिसकी अवधि 1990-1995 तक तय की गयी थी, उसका 1993 में पुनरावलोकन किया गया और आगे के लिए नयी समय-सारिणी तय की गयी । संशोधित समय सारिणी के अनुसार प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि 1993-1998 तक निर्धारित की गयी । इस समय चल रही तीसरी और अंतिम पंचवर्षीय परियोजना में क्षारयुग्मों का पूरा डाटाबेस तैयार करने का कार्य किया जा रहा है । इस परियोजना का काल 1998-2003 तक तय है । यह परियोजना जब शुरू की गयी थी, उस समय इसमें चंद शोध संस्थाएं ही संलग्न थीं, लेकिन आज की तारीख में अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, जापान सहित कुल 18 देश इस कार्य में लगे हैं । चीन इस परियोजना में शामिल होने वाला नवीनतम सदस्य है ।

जीवन के मुख्य तत्त्व :

जैसा कि हम जानते हैं, हर जीव का शरीर कोशिकाओं से बना होता है । कोशिकीय संख्या के आधार पर जीव

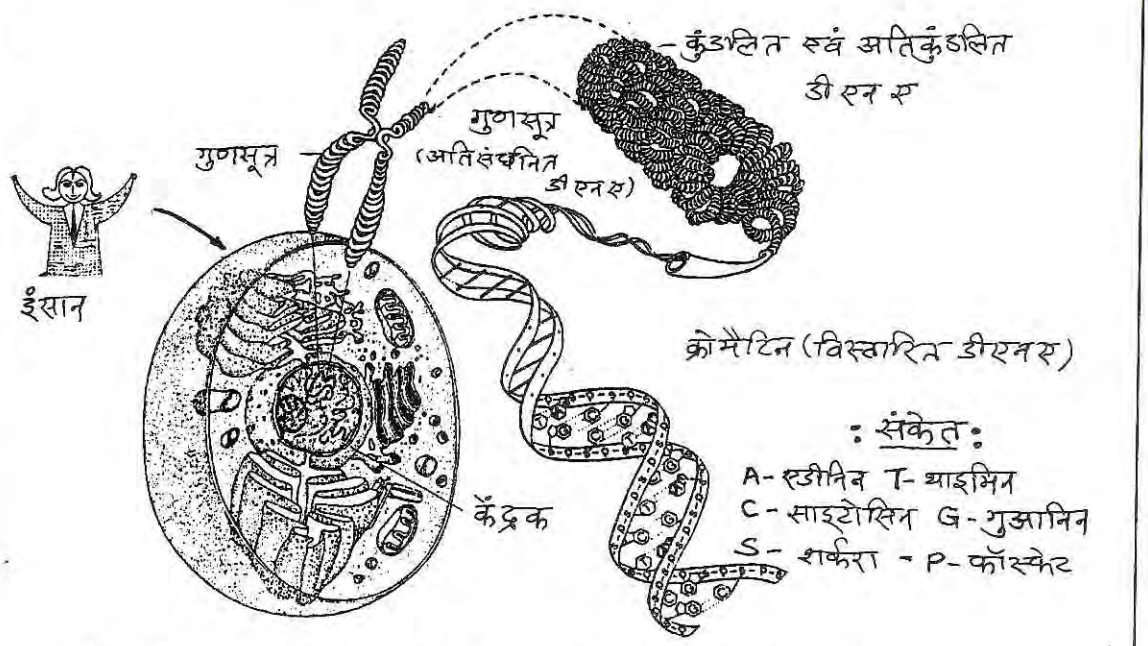

चित्र-2 : मानव कोशिकाओं में डीएनए की स्थिति और संरचना की एक झलक

एक कोशिकीय तथा बहुकोशिकीय होते हैं। अमीबा एक कोशिकीय जीव का सामान्य उदाहरण है। बहुकोशिकीय जीवों की लंबी सूची है। इंसान भी एक बहुकोशिकीय प्राणी है। एक अनुमान के मुताबिक मानव शरीर में कुल दस हजार करोड़ कोशिकाएं होती हैं। इन कोशिकाओं का ज्यादा हिस्सा पानी होता है। कोशिका के भीतर के जलीय घोल को जीवद्रव्य कहते हैं। जीवन की सारी क्रियाएं इसी जीवद्रव्य में संपादित होती हैं। इन क्रियाओं का नियंत्रण कोशिका में उपस्थित केंद्रक करता है। केंद्रक मुख्यतः न्यूक्लियोप्रोटीन का बना होता है। न्यूक्लियोप्रोटीन में न्यूक्लिक अम्ल और प्रोटीन होता है। न्यूक्लिक अम्ल दो प्रकार का होता है - राइबोन्यूक्लिक अम्ल (आरएनए) तथा डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल। न्यूक्लिक अम्ल आनुवंशिक गुणों के वाहक होते हैं यानी पैत्रिक गुण माता-पिता से उनकी संततियों में न्यूक्लिक अम्लों के द्वारा ले जाये जाते हैं। डीएनए जीवन की कुंजी है। जीवन का सारा चिट्ठा इसमें रासायनिक संकेतों में दर्ज होता है। न्यूक्लिक अम्ल केंद्रक के भीतर कुछ खास संरचनाओं में पाया जाता है जिन्हें गुणसूत्र या क्रोमोसोम कहते हैं (चित्र-1)। ये गुणसूत्र धागे सदृश होते हैं। इंसान के शरीर की हर कोशिका में 23 जोड़े यानी 46 गुणसूत्र पाये जाते हैं। इसमें 22 जोड़े ऑटोसोम्स होते हैं और एक जोड़ा सैक्स क्रोमोसोम होता है। इस एक जोड़े क्रोमोसोम में एक एक्स (X) और एक वाई (Y) गुणसूत्र होता है। ये ही भावी संतति का लिंग निर्धारित करते हैं। उदाहरणतः कि वह लड़का होगा, या लड़की। पुरुषों में एक एक्स और एक वाई गुणसूत्र पाये जाते हैं। स्त्रियों में एक जोड़ी सिर्फ एक्स गुणसूत्र होते हैं। इन गुणसूत्रों में जीन होते हैं। ये जीन वास्तव में डीएनए की खास लंबाई के हिस्से होते हैं जो किसी प्रोटीन विशेष के संश्लेषण के लिए उत्तरदायी होते हैं। मानव शरीर की एक कोशिका में करीब-करीब मीटर लंबा डीएनए होता है। इस तथ्य से यह अनुमान लगाना आसान है कि एक मीटर के लाखवें हिस्से के बराबर जैसी सूक्ष्म कोशिका में इतना लंबा डीएनए किस तरह घनीभूत तरीके से समायोजित रहता है। यदि मानव शरीर में

मौजूद समस्त कोशिकाओं में डीएनए की कुल लंबाई की मोटे तौर पर गणना करें तो यह लंबाई कई करोड़ किलोमीटर होती है ।

डीएनए रासायनिक तौर पर बहुलक (पॉलीमर) होते हैं । ये अनेक अणुओं से बने होते हैं । इनका अणुभार बहुत ज्यादा होता है । सामान्य अणुओं की तुलना में ये हजारों गुना तक भारी हो सकते हैं । डीएनए तीन तरह के घटकों से बना होता है । ये हैं - नाइट्रोजनी क्षार, शर्करा और फॉस्फोरिक अम्ल । फॉस्फोरिक अम्ल को अक्सर फॉस्फेट नाम से भी पुकारते हैं । नाइट्रोजनी क्षार क्षारीय प्रकृति के नाइट्रोजनयुक्त यौगिक होते हैं । मोटे तौर पर इन्हें दो भागों में बांटा जाता है; प्यूरीन्स तथा पिरीमिडीन्स । प्यूरीन्स के अंतर्गत एडीनिन और गुआनिन नामक क्षार आते हैं जिन्हें (A) और (B) संकेतों से प्रदर्शित करते हैं । पिरीमिडीन्स में साइटोसीन (C), थाइमिन (T) और यूरेसिल (U) समाविष्ट हैं चित्र (2 तथा 3) । न्यूक्लिक अम्ल में पायी जाने वाली शर्करा पेंटोज शुगर कहलाती है । ऐसा इसलिए कि इसका एक अणु पांच कार्बन परमाणुओं से बना होता है । पेंटोज शर्करा दो तरह की होती है - राइबोज ($C_5H_{10}O_5$) और डिऑक्सीराइबोज ($C_5H_{10}O_4$) । डिऑक्सीराइबोज शर्करा, राइबोज शर्करा के अपचयन से बनती है यानी उसमें एक ऑक्सीजन परमाणु कम होता है । नाइट्रोजनी क्षार शर्करा से मिलकर न्यूक्लियोसाइड्स बनाते हैं जिन्हें तत्संबंधी क्षार के अनुसार एडिनोसीन, गुआनोसीन, साइटीडीन, थाइमिडीन और यूरीडीन कहते हैं । न्यूक्लियोसाइड्स फॉस्फोरिक अम्ल (H_3PO_4) से जुड़कर न्यूक्लियोटाइड्स बनाते हैं । ये न्यूक्लियोटाइड्स डीएनए जैसे बहुलक के एकलक (मोनोमर) हैं । पांचों न्यूक्लियोटाइड्स के नाम ये हैं, जिन्हें क्रमशः एडिनिलिक अम्ल, गुआनिलिक अम्ल, साइटिडिलिक अम्ल, थाइमिडिलिक अम्ल तथा यूरिडीलिक अम्ल कहते हैं । इस तरह इन तीनों घटकों यानी क्षार, शर्करा और फॉस्फेट के अणु संयुक्त होकर न्यूक्लियोटाइड का अणु बनाते हैं । न्यूक्लियोटाइड के ऐसे हजारों लाखों अणु मिलकर पॉलीन्यूक्लियोटाइड के विशाल अणु बनाते

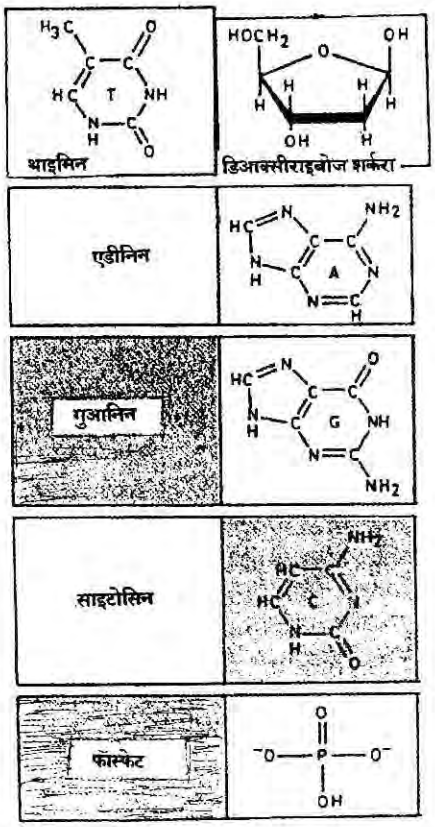

चित्र-3 : डीएनए के रासायनिक घटक

हैं । डीएनएक एक पॉलीन्यूक्लियोटाइड है । इसकी एक श्रृंखला में अनेकानेक न्यूक्लियोटाइड होते हैं । जैसा कि हम जानते हैं, प्रजनन में शुक्राणु या डिंब निर्माण के समय डीएनए द्विविभाजित होता है । इस दौरान कोशिका में डीएनए की हूबहू प्रतिलिपि तैयार होती है जो भावी संतति को प्राप्त होती है । अब सवाल उठता है कि ये अणु किस तरह से व्यवस्थित होते हैं, वे किस तरह की संरचना का निर्माण करते हैं । वास्तव में केंद्रक के अंदर डीएनए ऐसे ही नहीं पड़ा रहता, वरन वह निश्चित ज्यामितीय संरचना में मिलता है । डीएनए दो लड़ियों में रहता है ।

ये लड़ियां आपस में द्विकुंडलीय (डबलहैलिकल) संरचना बनाती हैं । आकृति में ये लड़ियां लहरियादार

और सीढ़ीनुमा होती हैं (चित्र-2) । दो लड़ियों के नाइट्रोजनी क्षारों के बीच हाइड्रोजन बंध बना होता है । हाइड्रोजन बंध एक विद्युतस्थैतिक आकर्षण बल होता है जो किन्हीं दो विपरीत आवेशों के मध्य कार्य करता है । डीएनए में क्षारकों के बीच दो एवं तीन हाइड्रोजन बंध होते हैं । हालांकि हाइड्रोजन बंध सहसंयोजक बंधों की तुलना में काफी कमजोर (4-5 किलोकैलोरी प्रति अणु) होते हैं लेकिन डीएनए की लड़ियों को जोड़े रखने और डीएनए को खास ज्यामितीय संरचना प्रदान करने में इनकी ही पूरी भूमिका होती है ।

डीएनए सीक्वेंसिंग : इस सिलसिले में रोचक बात यह है कि मानव के डीएनए सीक्वेंसिंग का बीड़ा सबसे पहले अमरीका ने उठाया था लेकिन खमीर (यीस्ट) के क्रोमोसोम - III की सीक्वेंसिंग का काम सबसे पहले यूरोप में हुआ था । इस काम में तकरीबन सौ प्रयोगशालाओं के करीब 300 शोधकर्ता लगे हुए थे । इस जीनोम की लंबाई 3 लाख 15 हजार 399 क्षारयुग्म थी । 1995 के मध्य तक एन्फ्लुएंजा के जीवाणु का पूरा जीनोम तैयार कर लिया गया था । बाद में एन्फ्लुएंजा जीवाणु की अन्य प्रजातियों के भी जीनोम तैयार हुए । खमीर के पूरे जीनोम में कुल एक करोड़ बीस लाख क्षार होते हैं । 1996 के अंत तक खमीर का पूरा जीनोम तैयार कर लिया गया था । जीनोम के अध्ययन में सबसे पहले गुणसूत्रों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं । इन टुकड़ों का क्लोन तैयार करते हैं फिर इनके डीएनए का पांच बार विश्लेषण करके उनमें मौजूद क्षारकों का क्रम निर्धारित करते हैं । उस समय तक इलेक्ट्रोफोरेसिस से डीएनए को न्यूनतम 30,000 न्यूक्लिओटाइडों तक के ही छोटे टुकड़ों में तोड़ा जा सकता था । अत: पूरे ह्यूमन जीनोम को इस तरह से तोड़ने पर कुल करीब एक लाख टुकड़े तैयार होंगे । इतनी संख्या में इन टुकड़ों की सीक्वेंसिंग करके सभी टुकड़ों को फिर से उनके वास्तविक क्रम में सम्मजित करना एक दुरुह कार्य ही होता, लेकिन प्रौद्योगिक उन्नति से यह काम आसान हो गया । इसमें ऑटोमैटिक सीक्वेंसिंग मशीनों ने अग्रणी भूमिका अदा की वरना इतने तंतुओं को फिर से सही क्रम में जोड़ना एक तरह से असंभव ही था । सीक्वेंसिंग में क्रैग वेंटर की खोज की वजह से गति आयी । वेंटर ने कहा कि हम अपेक्षाकृत कम खर्च और अवधि में ही जीनोम परियोजना को पूरा कर सकते हैं ।

वेंटर ने 1998 में परकिन-एल्मर कंपनी के सहयोग से सेलेरा जीनोमिक्स की स्थापना की । इस कंपनी ने द्रुतगित से सीक्वेंसिंग करने वाली मशीन की खोज की थी जो पांच लाख क्षारयुग्मों को एक दिन में सीक्वेंस कर सकती है । 1999 की शुरुआत में सेलेरा जीनोमिक्स ने 300 ऐसी मशीनें खरीदीं । परीक्षण के तौर पर उन्होंने फलमक्खी के जीनोम की सीक्वेंसिंग की । इसे उन्होंने चंद महीनों में ही पूरा कर लिया । फलमक्खी के जीनोम में 13 करोड़ बीस लाख क्षारयुग्म होते हैं । इस काम में जापान और चीन के भी हाथ बंटाने से काम में तेजी आयी । परियोजना में समय के साथ अनेक लोग, नयी-नयी युक्तियों और विचारों के साथ जुड़ते गये और कार्य आगे बढ़ता गया । और आज हम इस मुकाम पर पहुंच गये हैं कि इसकी पूर्णता सन्निकट है । नयी सहस्त्राब्दि की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है । लेकिन इसके साथ एक पहेली भी जुड़ी है । पहेली इसलिए क्योंकि इन तीन सौ बीस करोड़ क्षारयुग्मों के क्रम में क्या निहितार्थ हैं, इनमें जीवन का कौन-सा रहस्य छिपा हुआ है, यह जानना सबसे बड़ा काम है । इस तरह आगे असीमित कार्य एवं संभावनाओं के द्वार हमारे लिए खुले हैं । जो सबसे खास बात है वह यह कि मानव शरीर में मौजूद तकरीबन एक लाख जीनों में से बहुत से ऐसे हैं जो फिलहाल किसी काम के नहीं लगते, लेकिन उनके भी कोई अर्थ जरूर होने चाहिए ।

हालांकि ये सभी जीन हर कोशिका में विद्यमान हैं लेकिन विभिन्न ऊतकों में अभिव्यक्त होने वाले जीनों की संख्या अलग-अलग होती है । जहां मस्तिष्क में लगभग सभी जीन सक्रिय होते हैं वहीं मांसपेशियों में मात्र कुछ सौ जीन ही सक्रिय होते हैं । हमें यह जानने की जरूरत है कि कैसे डीएनए का हिस्सा सक्रिय हो उठता है और मैसेंजर आरएनए का निर्माण करता है जो एक प्रोटीन

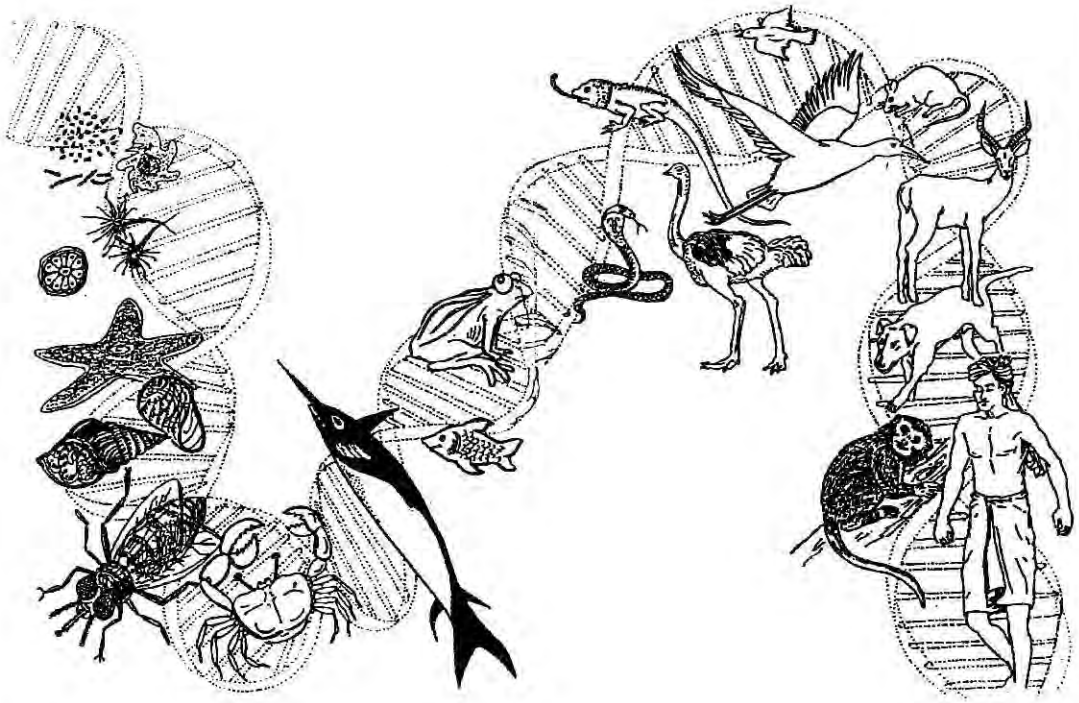

चित्र-4 : सूक्ष्मजीवों से लेकर इंसान तक के बीच डीएनए की सार्वभौमिकता

विशेष के संश्लेषण के लिए उत्तरदायी होता है। आखिर डीएनए के सक्रिय होने के लिए संकेत कहां से आता है। यह वास्तव में बड़ी ही गूढ़ प्रक्रिया है जिसके उद्घाटन से जीवन के कई रहस्यों से परदा हटा जायेगा। दूसरी चीज जो खास मायने रखती है वह यह है कि मानव जीनोम तथा दूसरे जीवों, उदाहरणतः फलमक्खी या चूहे के जीनोम में क्या समानता है। हम इन जीवों में जीनोम का क्रम बदल कर देख सकते हैं कि उसके क्या संभावित नतीजे होते हैं। इनका हम अपने हित में इस्तेमाल कर सकते हैं क्योंकि हमें मालूम हो जायेगा कि कौन सा जीन किस अंग के निर्माण के लिए उत्तरदायी है। एक फायदा यह होगा कि यदि हमें पता चल जाय कि अमुक जीन बाद में चलकर अमुक रोग का कारण बनता है तो हम भ्रूणावस्था में ही जैवप्रौद्योगिक तरीकों से उसका निराकरण कर सकते हैं। इस तरह हम तमाम आनुवंशिक कष्टों से निजात पा सकते हैं। हालांकि अभी यह कहना थोड़ी जल्दबाजी हो सकती है, लेकिन हम उसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं

और इतने बड़े मिशन में लगने का हमारा अभीष्ट भी वही है। कई बीमारियां तो ऐसी हैं जो एकदम लाइलाज हैं और उनसे प्रभावित रोगी हमेशा के लिए पीड़ा भोगने को अभिशप्त हो जाता है। यदि इलाज के क्षेत्र में हमें सफलता मिल गयी तो कई तरह के रोगों से छुटकारा मिल जायेगा। मसलन यदि हमें पहले से मालूम हो जाय कि अमुक जीन कैंसर या ट्यूमर के लिए उत्तरदायी है तो पहले से ही हम उसके निदान के लिए ऐसा कुछ कर सकते हैं जिससे बाद में चलकर वह कैंसर का कारण नहीं बन सकेगा। इससे हमें नयी दवाइयां बनाने में भी मदद मिल सकेगी। फिलहाल ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट से बड़ी आशाएं जुड़ी हैं। आने वाले दिनों में चिकित्सा के क्षेत्र में अभूतपूर्व बदलाव आने की प्रबल संभावना है।

जीनोम की सार्वभौमिकता : इस प्रॉजेक्ट का एक महत् उद्देश्य है अलग-अलग समुदायों में डीएनए के अंतर का अध्ययन करना। इंसान जेनेटिक तौर पर आपस में 99.8 प्रतिशत समानता रखते हैं। यानी मानव प्रजाति में जेनेटिक स्तर पर सिर्फ 0.2 प्रतिशत का ही अंतर है। इस तरह भी कह सकते हैं कि किन्हीं 500 न्यूक्लियोटाइड्स में मात्र एक न्यूक्लियोटाइड ऐसा होता है जो किन्हीं दो व्यक्तियों में भिन्न होता है। मोटे तौर पर इसका अर्थ यह हुआ कि किन्हीं दो व्यक्तियों के पूरे 3 अरब जीनोम की तुलना करें तो उनमें तकरीबन 60 लाख जीनोम एक दूसरे से भिन्न होंगे। सांख्यिकीय तौर पर देखें तो यह आंकड़ा (3-5%) हल्का-फुल्का लग सकता है लेकिन जीनोम में इतने अंतर के गहरे निहितार्थ होते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि जीनोम रूपी पोथी में शब्दों एवं वाक्यों के बीच तमाम वर्ष यत्र-तत्र बिखरे होते हैं। और ये अर्थहीन हैं, ऐसा आभास भी कदाचित उचित नहीं होगा। यह भी बड़े मजे की बात है कि सूक्ष्मजीव से लेकर विशाल हाथी और यहां तक कि बौद्धिक चेतना से संपन्न इंसान के जीनोम में बहुत ही समानता पायी जाती है। इसे जीनोम की सार्वभौमिकता यानी 'यूनिवर्सलिटी ऑफ जीनोम', भी कह सकते हैं (चित्र-4)। कभी-कभी जीनोम में बदलाव के गंभीर नतीजे होते हैं, मसलन कि सिर्फ एडीनिन की जगह गुआनिन हो जाने से इंसान में थैलेसीमिया जैसी बीमारी हो सकती है। लेकिन यह परिवर्तन अपरिहार्य है। यह प्राकृतिक वरण और जैवविकास का मूल रहा है। कोई भी जीव प्रजाति बिना परिवर्तन के अस्तित्व ही नहीं बचा सकती क्योंकि वह रोगाणुओं के प्रति अतिशय सुग्राही हो जायेगी तथा नष्ट हो जायेगी। इसमें ऐसा भी हो सकता है कि मात्र एक खास तरह के जीवाणु ही पूरी प्रजाति का समूल नाश कर दें। इसीलिए कहा जाता है कि भिन्नता एक प्राकृतिक वरदान है।

बहुधा हम आबादी को तमाम समस्याओं का कारण मानने के आदी हो चले हैं लेकिन हकीकत में देखा जाय तो जीनोम के तौर पर यह एक वरदान है। अब जबकि जेनेटिक प्रौद्योगिकी की महान शक्ति इंसान के हाथ में आने जा रही है, हमें इस बात पर गौर करने की आवश्यकता है कि हम इस ज्ञान को मानवता के हित में किस तरह से इस्तेमाल करें। इसके इस्तेमाल में कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। कोशिश यह होनी चाहिए कि इसके द्वारा हम भेदभावरहित और समतामूलक समाज का निर्माण करें, जहां हर व्यक्ति को इसका बराबर फायदा मिल सके। इस तकनीकी से हमें इस बात का पता चल जायेगा कि किन तरह की दवाओं से किन लोगों पर दुष्प्रभाव पड़ता है और क्यों ? इसे हम जीनोटाइप के आधार पर भी वर्गीकृत कर सकते हैं। इस तरह यदि हमें पता चल गया कि अमुक व्यक्ति अमुक जीनोटाइप का है तो तो उस पर लागू होने वाली दवा के इस्तेमाल से हम रोगी का सही-सही इलाज कर सकते हैं। दुनिया के जीनपूल का 16% जीनपूल भारत में है। देश की आबादी को भले हम अपनी तमाम कमियों और पिछड़ेपन की वजह मानें, लेकिन जहां तक जीनपूल की प्रचुरता का सवाल है, इस मायने में हम बहुत संपन्न हैं। जीनपूल की प्रचुरता में सिर्फ चीन ही हमसे आगे है। यह जीनपूल हमारे लिए फायदे की बात है तथा इसका सदुपयोग किया जा सकता है। ह्यूमन जीनोम परियोजना की इसमें अहम् भूमिका हो सकती है।

सफर जीनोम का.....

वर्ष 1866...

ग्रेगर जोहान मेंडल ने आनुवंशिक इकाइयों के अस्तित्व का प्रतिपादन किया । उन्होंने इसे फैक्टर के नाम से पुकारा । बाद में इसे ही जीन कहा गया ।

वर्ष 1910...

फलमक्खी पर कार्य करते हुए टी. एच. मॉर्गन ने सिद्ध किया कि जीन का वहन गुणसूत्रों द्वारा होता है । और यह भी कि ये जीन गुणसूत्रों में एक रेखीय क्रम में लगे होते हैं तथा उनकी स्थिति का निर्धारण और मापन किया जा सकता है ।

वर्ष 1926...

एच. जे. मुलर ने खोज की कि एक्स किरणों से जेनेटिक परिवर्तन संभव है तथा उससे आनुवंशिक उत्परिवर्तन किये जा सकते हैं ।

वर्ष 1944...

सिद्ध हुआ कि प्रोटीन नहीं बल्कि डीएनए ही जेनेटिक पदार्थ है ।

वर्ष 1953...

डीएनए संरचना की खोज । द्विकुंडलीय (डबल हेलिकल) संरचना के नाते इस अणु की कुंडली आसानी से खुल जाती है । इसी वजह से कुंडली अपनी प्रतिलिपि तैयार कर पाती है । यही सरलता इस अणु को विशिष्ट बनाती है । रेप्लिकेशन और ट्रांसक्रिप्शन में एक स्ट्रैंड की हूबहू प्रतिलिपि (कॉपी) तैयार होती है ।

वर्ष 1961...

प्रोटीन संश्लेषण की खोज । डीएनए किस तरह कोशिका को प्रोटीन बनाने का निर्देश देता है, इस प्रक्रिया का पता चला ।

वर्ष 1970...

डीएनए को खास स्थानों से काटने वाले रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम की खोज हुई ।

वर्ष 1977...

डीएनए सीक्वेंसिंग को गति मिली । बेस (क्षारक) के निर्धारण की दर में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी । जीवाणुभोजी (बैक्टिरियोफेज) नामक विषाणु के पूरे जीनोम का निर्धारण किया गया । यह पहला जीव था जिसका जीनोम मैप किया गया था ।

वर्ष 1984...

डीएनए फिंगरप्रिंटिंग का विकास हुआ ।

वर्ष 1988...

डॉ. जे. डी. वाटसन ने 2005 तक मानव के जीनोम का निर्धारण कर लेने का संकल्प लिया । इस पर 3 अरब डॉलर के खर्च का अनुमान लगाया गया ।

वर्ष 1990...

15 वर्षीय परियोजना, 'ह्यूमन जीनोम प्रॉजेक्ट' का औपचारिक श्रीगणेश हुआ ।

वर्ष 1995...

वेंटर की शॉटगन विधि से एन्फ्लुएंजा रोग के जीवाणु का जीनोम मैप किया गया ।

वर्ष 2000...

फलमक्खी (ड्रॉसोफिला) के पूरे जीनोम का निर्धारण किया गया । इसे पूरा करने का श्रेय वेंटर और जेराल्ड रूबिन को जाता है ।

अब जब कि यह परियोजना अपने समापन पर है, इसी से जुड़ी एक अन्य परियोजना की भी रूपरेखा बन चुकी है । इसे 'जीनोम्स टू लाइफ' नाम दिया गया है । इसमें मुख्य भूमिका डिपार्टमेंट ऑफ एनर्जी की होगी । यह दस वर्षीय परियोजना होगी । इसके अंतर्गत सूक्ष्म जीव से लेकर इंसान तक के जीनोम का तुलनात्मक अध्ययन कर जीवन की आधारभूत, व्यापक और क्रमबद्ध समझ हासिल करना है । इसलिए कहा जा सकता है कि आने वाले वर्षों में जीनोम को लेकर कौतूहल बना रहने वाला है ।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

विश्लेषणात्मक रसायन हेतु बीसवीं सदी की एक अनुपम भेंट : आयन वर्णलेखन

डॉ. रमाकांत रस्तोगी
ईंधन रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

स्माल, स्टीवेन्स तथा वाउमेन द्वारा 1975 में खोजी गयी आयन क्रोमेटोग्राफी (आ.क्रो.), यानी आयन वर्णलेखन तकनीक बृहत क्रोमेटोग्राफी परिवार की एक होनहार सदस्या है। इस विधि ने अपनी 27 वर्ष की अल्पायु में आयन वैश्लेषिक रसायन में जो धाक जमायी है वह अद्वितीय है। इस विधि में दिन-प्रतिदिन जुड़ते नये आयामों ने विश्लेषकों को नयी दिशाएं प्रदान की हैं। जहां एक ओर नमूने का आकार मिली लीटर (मिली.) से माइक्रो लीटर (माली.) में और अब नैनो लीटर (नैली.) में संभव हो सका है, वहीं दूसरी ओर विश्लेषण का समय घंटों से घटकर कुछ मिनट ही रह गया है। नये इलेक्ट्रॉनिक एवं मापन यंत्रों में हुई प्रगति से एक साथ बहुत सारे एनालाइट का पी.पी.बी. और अब पी.पी.टी. स्तर की सांद्रता का सही मापन संभव हो सका है। यही कारण है कि आज इस विधि का उपयोग गुणवत्ता नियंत्रण हो या अपशिष्ट प्रबंधन, पर्यावरण हो या औद्योगिकी, रोग उपचार हो या औषधि निर्माण, खनन हो या धातु शोधन, खाने के पदार्थ हों या पौधे अथवा पानी की गुणवत्ता हो, सभी में आम हो रहा है। प्रस्तुत लेख में इस विधि के विकसित होने से अभी तक की प्रगति का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

एस. एस. स्वीट (Tsweet) ने 1899-1901 के दौरान पौधे के पिगमेंट के पृथक्करण के लिए पहली बार क्रोमेटोग्राफी के बारे में सोचा और अपने इस विचार को 1903 में छपे अपने शोधपत्र में प्रकाशित किया। इस प्रकार बीसवीं सदी के प्रारंभ के साथ वर्णलेखन विधा का जन्म हुआ। समय के साथ यह विधि फली फूली और परिवार में नये सदस्यों का समावेश हुआ। इस खोज के बाद अगले 30 वर्षों तक इसका उपयोग केवल ठोस स्थिर फेज़ और तरल गतिशील फेज़ पर आधारित रहा। 1938 में एन. ए. इज्माइलोब और एम. एस. श्रेयबर ने पतली परत (थिन लेयर) वर्ण लेखन की आधारशिला रखी जिसको 1958 में इमोन स्टाहल ने परिष्कृत किया। पारटीशन क्रोमेटोग्राफी की खोज 1941 में ए. पी. जे. मार्टिन और एल. एम. सिंजे ने की ।

उनके कार्य ने वर्ण लेखन को गणितीय आधार प्रदान किया। उन्होंने आसवन विधि में प्रयोग में आने वाले प्लेट सिद्धांत का उपयोग इसमें पहली बार किया। उनके इस कार्य ने न केवल इस विधि को एक सबल आधार प्रदान किया बल्कि गैस क्रोमेटोग्राफी तथा पेपर क्रोमेटोग्राफी के अवतरण व विकसित होने में भी मदद की, जिसके लिए उन्हें 1952 में रसायनिकी का नोबेल पुरस्कार भी मिला।

यद्यपि आयन विनिमय क्रोमेटोग्राफी को प्रारंभ करने का श्रेय टेलर, उरे तथा ओलोक सम्यूनसन को जाता है परंतु इसकी उपयोगिता का प्रदर्शन मैनहैटन परियोजना (1942-1944) के बाद ही बढ़ा। अधिक दबाव पर काम करने वाले रेजिन के छोटे दाने (10 माइक्रो मी.) की उपलब्धता ने हाइपरफॉर्मेंस लिक्विड क्रोमेटोग्राफी विकसित करने में मदद की जिसका श्रेय होरवाथ (1965) तथा सिंडर आदि को जाता है।

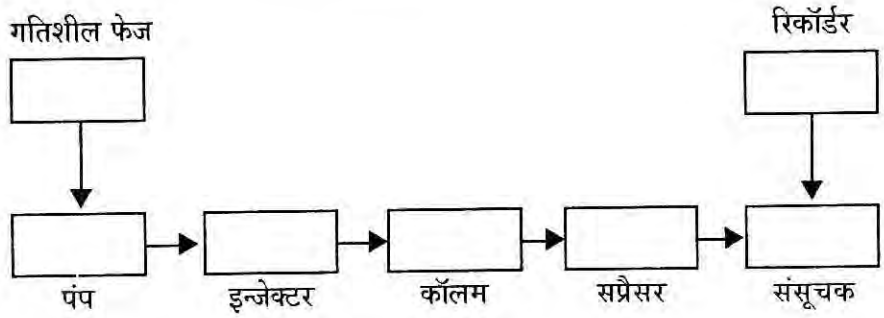

चित्र-1 : आयन क्रोमेटोग्राफ का प्रवाही रेखा चित्र

इस क्रोमेटोग्राफी रूपी माला में 'आयन क्रोमेटोग्राफी' नामक बहुमूल्य मोती को पिरोने का कार्य 1975 में स्माल और उसके साथियों ने किया। चूंकि एक लेख में वर्णलेखन के सभी अनमोल रत्नों का वर्णन करना कठिन है इसलिए प्रस्तुत लेख में परिवार के इस नये सदस्य का ही वर्णन किया जा रहा है।

जैसा कि विदित है कि सातवें दशक के प्रारंभ में कार्बनिक पदार्थों के मापन के लिए गैस वर्ण लेखन विधि परिपक्व हो चुकी थी और जो विश्लेषण गैस वर्ण लेखन द्वारा नहीं किये जा सकते थे वे तरल वर्ण लेखन द्वारा संभव लगने लगे थे। इसके विपरीत अकार्बनिक आयन मापन में क्रोमेटोग्राफी का योगदान नगण्य था। इसका कारण था कि उस समय उपलब्ध तरीके कम सुग्राही, अचयनशील, अधिक मेहनत एवं समय लेने वाले थे। अतः यह स्वाभाविक था कि वैज्ञानिकों का ध्यान अकार्बनिक मापन के ऐसे तरीकों को ढूंढ़ने में लगा था जो सरल, सुग्राही और चयनशील हों। इसी सिलसिले में कुछ वैज्ञानिकों का ध्यान आयन विनिमय द्वारा आयनों के पृथक्करण पर गया क्योंकि बाज़ार में कम क्षमता वाली भिन्न-भिन्न रेजिनों की उपलब्धता ने रेजिन द्वारा पृथक्करण को काफी सबलता प्रदान की। लेकिन इन अलग किये गये आयनों का सुग्राही परिचयन एक समस्या थी, विशेष कर, उन अकार्बनिक ऋणायनों के लिए जो पराबैंगनी विकिरण के लिए पारदर्शक थे।

इस गुत्थी को सुलझाते-सुलझाते 'डो केमिकल कंपनी' अमरीका में काम करने वाले स्माल और साथियों ने पृथक किये गये आयनों का परिचयन, विद्युत चालकता द्वारा करने की संभावना पर विचार किया क्योंकि सब आयनों का यह मूल गुण है कि वे विलयन में चालकता प्रदर्शित करते हैं। दूसरे, चालकता पर आधारित मापन यंत्र न केवल सरल होते हैं वरन् सुग्राही भी होते हैं। इस विचार को कार्यान्वित करने में मुख्य बाधा बढ़ी हुई पृष्ठभूमि चालकता (background conductivity) की थी। आयन विनिमय पृथक्करण के लिए एलूयेंट (गतिशील फेज़) के रूप में विद्युत विश्लेष्य का प्रयोग करते हैं जिसके परिणामस्वरूप एलूयेंट की चालकता, एनालाइट की तुलना में बहुत अधिक हो जाती है और एनालाइट का सुग्राही परिचयन संभव नहीं हो सकता। स्माल, स्टीवेंस तथा वाउमेन ने 1975 में अपनी खोज द्वारा एलूयेंट की चालकता को दबाने का तरीका खोजा जिसे उन्होंने 'एलूयेंट सप्रैसर तकनीक' कहा। इस खोज के साथ ही क्रोमेटोग्राफी विधि की एक नयी शाखा 'आयन क्रोमेटोग्राफी' का जन्म हुआ।

आयन क्रोमेटोग्राफी का सिद्धांत :

चित्र-1 में 1975 में विकसित किये गये आयन क्रोमेटोग्राफ का प्रवाही रेखा चित्र दिखाया गया है। देखने से लगता है कि यह उपकरण तरल क्रोमेटोग्राफी में आम तौर से प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों जैसे पंप

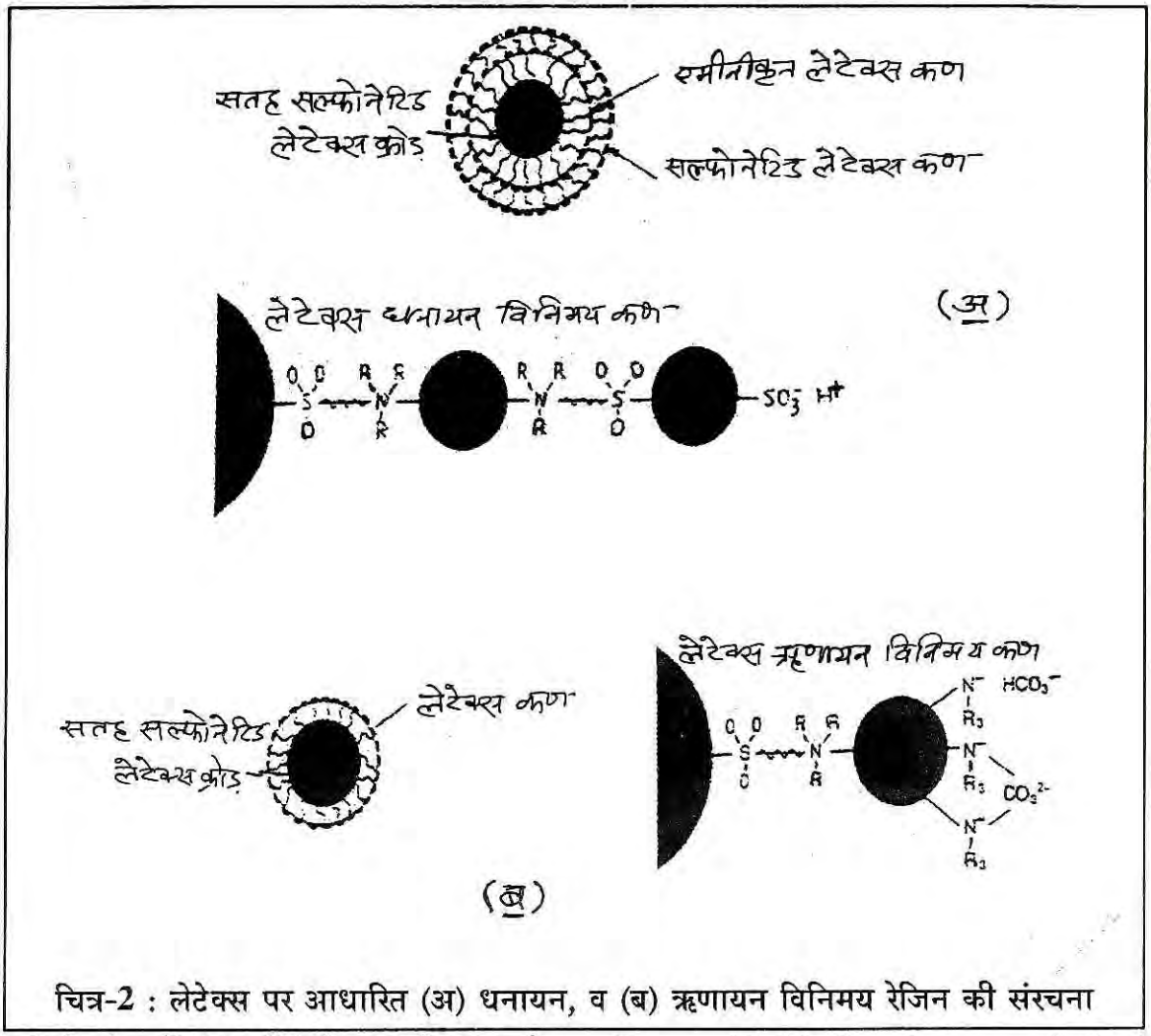

चित्र-2 : लेटेक्स पर आधारित (अ) धनायन, व (ब) ऋणायन विनिमय रेजिन की संरचना

(गतिशील फेज़ को पंप करने के लिए), इन्जेक्टर (नमूने को इन्जेक्ट करने के लिए), रेजिन कॉलम (एनालाइट पदार्थों के पृथक्करण के लिए) चालकता संसूचक और रिकॉर्डर से मिलकर बना है लेकिन ध्यान से देखने से ज्ञात होता है कि जहां तरल क्रोमेटोग्राफी में एक कॉलम (स्तंभ) का प्रयोग होता है वहीं यहां पर दो कॉलम प्रयुक्त हो रहे हैं । इस नयी विधि की पूर्ण पद्धति इन दोनों कॉलमों की प्रकृति तथा अभिप्राय पर आधारित है ।

पहले कॉलम की विशेषता यह है कि वह एक विशेष प्रकार की रेजिन से बनाया गया है । इसका कारण यह है कि उन दिनों प्रचलित रेजिनों की दो मुख्य सीमाएं थीं । एक, जैसे-जैसे रेजिन की क्षमता बढ़ती थी तो एनलाइट को अलग करने के लिए और अधिक गतिशील फेज़ की आवश्यकता होती थी जिसके परिणामस्वरूप पृष्ठ भूमि चालकता बढ़ जाती थी । अत: सुग्राही परिचयन संभव नहीं था । दूसरे, परंपरागत रेजिन अधिकतर मैक्रोपोरस प्रकार की थी जिसके कारण एनालाइट आयन को विनिमय के लिए रेजिन के अंदर जाने और बाहर आने के लंबे रास्ते को पार करना पड़ता था जिसके कारण क्रोमेटोग्राम में एनालाइट का शीर्ष (पीक) अधिक चौड़ा हो जाता था और परिणामस्वरूप एनालाइट की सुग्राहिता कम हो जाती थी ।

इन दोनों समस्याओं का समाधान एक विशेष प्रकार की रेजिन को बनाकर किया गया । इस विशेष रेजिन में विनिमय ग्रुप को सतह पर सीमित किया गया जिससे एनालाइट को लंबा रास्ता न तय करना पड़े और इस विनिमय ग्रुप की क्षमता कम करने के लिए उस पर विपरीत आवेश वाले आयन का एग्लोमरेट बनाकर किया गया । उदारहरण के तौर पर ऋणायन विनिमय रेजिन बनाने के लिए माइक्रोपोरस क्रोड़-कण को सल्फोनेरान द्वारा ऋणात्मक किया गया । फिर इन सल्फोनेटिड क्रोड़ कणों को ऐसे बहुत छोटे कणों के विलंबन से गुजारा गया, जिसे एमीनीकृत कर धनात्मक रेजिन बनाने का प्रचलित तरीका दिखाया गया है । चित्र-2 में ऋणात्मक तथा धनात्मक रेजिन बमामे का प्रचलित तरीका दिखाया गया है ।

इन दोनों कणों में विपरीत आवेश होने के कारण वह एक दूसरे से स्थिर विद्युत तथा वान्डर वाल्स बलों द्वारा एग्लोमरेट पदार्थ बनाते हैं, जिससे क्रोड़-कण पर एमोनीकृत कण का लेप हो जाता है । इस प्रकार बने स्थिर फेज़ कणों का विसरण रास्ता छोटा होता है तथा आयन विनिमय क्षमता कम होती है, क्योंकि आयन विनिमय ग्रुप केवल ऊपरी सतह के थोड़े से भाग में ही विद्यमान होते हैं । लेप करने के काम में आने वाले माइक्रो कण को ऋणायन विनिमय रेजिन्स के माइक्रो कणों को पीसकर प्राप्त किया गया, जिनकी जगह बाद में 20 से 100 नैमी. आकार के कणों ने ले ली । इन सबका परिणाम यह हुआ कि तनु एलूयेंट द्वारा कार्यक्षम पृथक्करण संभव हो गया ।

जब एक नमूने को इन्जेक्ट किया जाता है तो पहले कॉलम (पृथक्करण कॉलम) में निम्न क्रिया द्वारा पृथक्करण होता है ।

रेजिन$^+$ A^- + E^- ↔ रेजिन$^+$ E^- + A^- .....(1)

जहां एलूयेंट E^- , एनालाइट A^- को धनात्मक आयन विनिमय रेजिन से पृथक कर देता है ।

दूसरा कॉलम - बनाम सप्रैसर कॉलम :

इस कॉलम में भी विशेष प्रकार की रेजिन होती है, चूंकि इस कॉलम का उद्देश्य पहले कॉलम से आये आयनों का उदासीकरण करना है । इसके प्रयोग में आने वाली रेजिन पहले कॉलम में प्रयोग होने वाली रेजिन के विपरीत आवेश की होती है । उदाहरण के तौर पर यदि ऋणायन विश्लेषण के लिए पहले कॉलम में ऋणायन रेजिन प्रयोग होगी तो सप्रैसर में धनात्मक रेजिन का प्रयोग होगा । इसी प्रकार धनात्मक आयनों के पृथक्करण में सप्रैसर में ऋणायन रेजिन का प्रयोग होगा । विश्लेषणात्मक कॉलम से पृथक्कृत आयनों को सप्रैसर कॉलम में निम्न क्रिया द्वारा दबाया (सप्रैस) किया जाता है ।

सप्रैसर-H^++Na^+OH^- ↔ सप्रैसर-Na^++ H_2O ..(2)

एनालाइट (Cl^- उदाहरणस्वरूप) की सप्रैसर के साथ,

सप्रैसर-H^++Na^++Cl^-↔ सप्रैसर-Na^++H^++Cl^- ..(3)

एल्यूशन के समय चालकता G में परिवर्तन एनालाइट A तथा गतिशील फेज़ के सह-आयन E की आयनिक समतुल्य चालकता में अंतर तथा एनालाइट की सांद्रता के समानुपात पर निर्भर करता है ।

$$\Delta G = [(\lambda_A - \lambda_E) C_A \alpha_A]/10^{-3} K \quad ...(4)$$

जहां λ_A और K एनालाइट के डिग्री ऑफ डिसोसिएशन और संसूचक के सेल नियतांक हैं ।

इसी प्रकार एनालाइट A के NaOH द्वारा एल्यूशन होने पर चालकता में कमी, सप्रैस्ड एनालाइट H_2O तथा एनालाइट A की आयनिक-समतुल्य चालकता पर निर्भर करेगी ।

$$\Delta G = [(\lambda_{H_2O} - \lambda_A) C_A \alpha_A]/10^{-3} K \quad ...(5)$$

समीकरण 4 तथा 5 को देखने से साफ पता लगता है कि सप्रैस्ड चालकता परिचयन में कई गुना सुग्राहिता बढ़ती है ।

साधारणतया सप्रैस्ड आ. क्रो. में ऋणायन विश्लेषण के लिए $NaOH/Na_2CO_3$ बफर का प्रयोग होता है । इसी प्रकार धनायन विश्लेषण में H_2SO_4 या मीथेन-सल्फ्यूरिक अम्ल एलूयेंट का प्रयोग होता है । विशेष विश्लेषण कार्य के लिए विशेष एलूयेंट का प्रयोग किया जाता है ।

नॉन-सप्रैस्ड आयन क्रोमेटोग्राफी :

स्माल और साथियों द्वारा विकसित सप्रैस्ड आ. क्रो. 'डो केमिकल' कं. (जो आज डायोनेक्स कॉर्पोरेशन

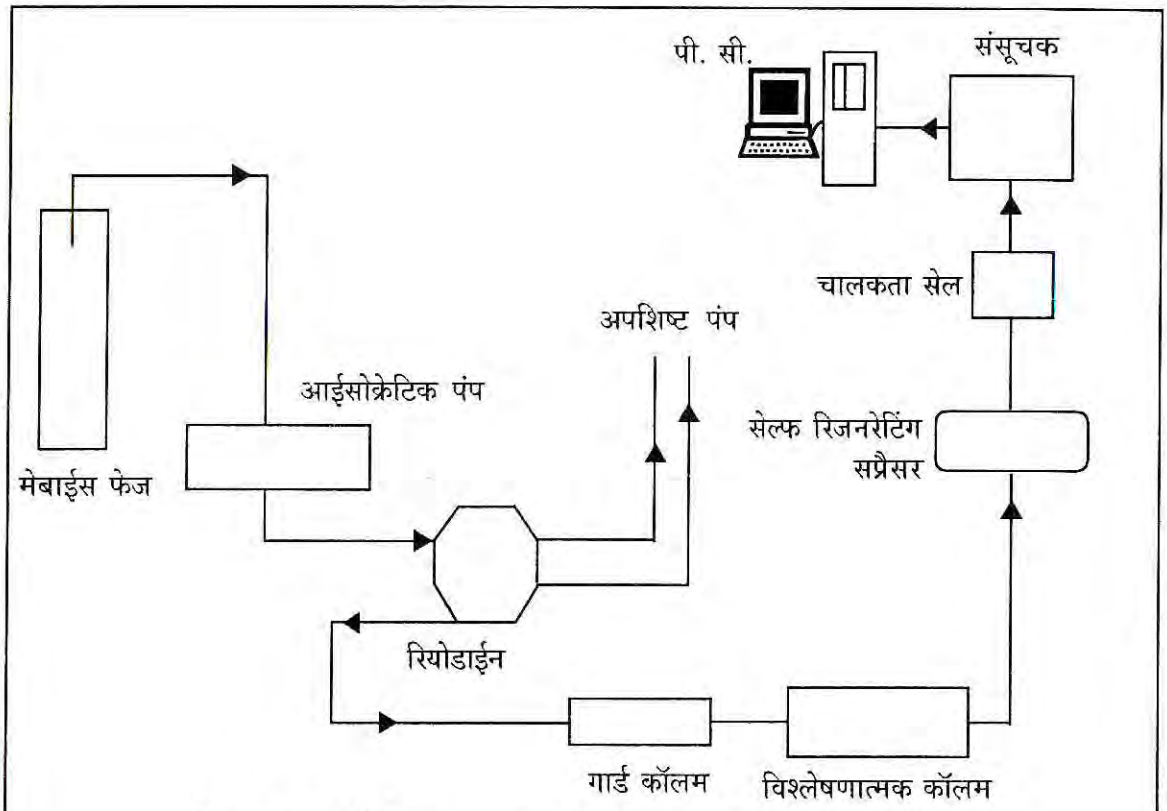

चित्र-3 : डायोनेक्स आयन क्रोमेटोग्राफ का प्रवाही रेखा चित्र

के नाम से जानी जाती है), अमरीका ने पेटंट करा लिया । इस कारण से आयन विश्लेषण के वैकल्पिक तरीकों पर जोर-शोर से कार्य प्रारंभ हो गया । इनमें प्रमुख कार्य जेरडे और साथियों द्वारा विकसित नॉन-सप्रैस्ड आ. क्रो. का था । उन्होंने भी कम क्षमता वाले आयन विनिमय रेजिन का प्रयोग किया जिसके क्रियाशील समूह सतह पर ही थे । लेकिन इन लोगों ने अक्रिय पॉलीमर दानों को सल्फूरिक अम्ल या एमीनीकृत अभिकारक से बहुत कम समय के लिए क्रिया करायी । इस प्रकार से प्राप्त रेजिन की क्षमता 10-30 $\mu eq/g$ तक थी । दूसरा अंतर सप्रैसर प्रयोग न करने का था । सुग्राही परिचयन प्राप्त करने के लिए उपयुक्त बनावट के एलूयेंट का प्रयोग किया गया । यानी एलूयेंट इस प्रकार चुना गया जिससे उसके और एनालाइट आयन की चालकता के बीच काफी अंतर हो । यदि एनालाइट आयन की चालकता एलूयेंट की चालकता से अधिक थी तो एनालाइट के परिचयन सेल में जाने पर चालकता में बढ़ोत्तरी होती थी और इस तरीके को 'सीधे परिचयन' कहा गया । इसके विपरीत यदि एनालाइट की चालकता एलूयेंट की चालकता की तुलना में कम होती तो परिणामस्वरूप प्राप्त चालकता में कमी आती और इस तरीके को 'अप्रत्यक्ष परिचलन' कहा गया ।

साधारणतया चालकता मापन पर आधारित ऋणायन विश्लेषण के लिए बैनजोएट और थैलेट जैसे एरोमेटिक कार्बोस्टेट्स का प्रयोग किया गया और धनायन पृथक्करण के लिए ऐरोमेटिक क्षारों का प्रयोग किया गया है क्योंकि इनकी आयनिक चालकता 35 $s.cm^2.eq^{-1}$ से कम है और आयन का आकार भी बढ़ा है ।

नॉन-सप्रैस्ड क्रोमेटोग्राफी को कई कंपनियों ने व्यावसायिक आधार पर विकसित किया और सप्रैस्ड

क्रोमेटोग्राफी के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया । इन कंपनियों में वाटर बेसकान, मैट्रोहॉम, हेमिल्टन आदि मुख्य हैं । लेकिन एक बात स्पष्ट है कि दोनों विधियों में रेजिन बनाने के तरीके में अंतर होने के कारण आज भी पृथक्कृत आयनों के क्रोमेटोग्राम को देखकर बताया जा सकता है कि एग्लोमरेटिड रेजिन द्वारा कौन सा पृथक्करण किया गया है ।

आयन क्रोमेटोग्राफी में नये आयाम/प्रगति :

क्रोमेटोग्राफी विधि द्वारा विश्लेष्य आयन की सुग्राहिता, गतिशील फेज़ के सही एवं पल्स रहित पंपिंग, विश्लेषणात्मक कॉलम की क्षमता तथा संसूचक की परिचयन सुग्राहिता पर निर्भर करेगा । अतः पिछले 27 वर्षों में आ. क्रो. में हुई प्रगति इसके इन यंत्रों तथा इलेक्ट्रॉनिकी में हुई प्रगति का बोधक है ।

आयन क्रो. में आज भी अधिकतर विश्लेषण कार्य आइसोकेट्रिक चालकता मोड में होते हैं अर्थात एलूयेंट के लिए एक निश्चित गति वाला पंप तथा मापन के लिए चालकता संसूचक । इसका कारण इसका सस्ता एवं सरल होना है । लेकिन कुछ विशेष प्रकार के नमूनों में जिनमें एक ही संयोजक आवेश वाले आयन या बहुसंयोजक आवेश वाले आयन हों, उनका इस प्रणाली द्वारा परिचयन संभव नहीं है । ग्रेडिएंट पंप के उपलब्ध होने के कारण आ. क्रो. द्वारा विश्लेषण का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है । उदाहरण के रूप में ग्रेडिएंट पंप-फोटोमीटरी परिचयन का उपयोग कर आज लेंथनाइड्स, एक्टेनाड्स तथा ट्रांजिशन तत्वों का विश्लेषण आ. क्रो. द्वारा संभव हो गया है ।

यद्यपि सप्रैस्ड आ. क्रो. में प्रयोग में आने वाली रेजिन बनाने का मूल तरीका आज भी एग्लोमरेट बनाने के द्वारा है लेकिन विशिष्ट प्रकार के नमूने के लिए विशिष्ट प्रकार की रेजिन का संश्लेषण किया जाता है । इन संश्लेषित रेजिनों का रेजिन क्रोड़ पर भिन्न-भिन्न मोटाई की लेटेक्स परत लगाकर या लेटेक्स की भिन्न-भिन्न क्रास-लिंकिंग प्रयोग कर प्राप्त किया जाता है । इसके परिणामस्वरूप आज अलग-अलग तत्वों के विश्लेषण के लिए अलग-अलग कॉलम उपलब्ध हैं । उदाहरण के रूप में डायोनक्स कार्पोरेशन का Ion Pac AS-4A कॉलम, कॉमन ऋणायन के लिए Ion Pac CS-5A कॉलम, लेंथनाइड्स तथा ट्रांजिशन तत्वों के विश्लेषण के लिए बनाये गये हैं ।

चित्र-3 में एक व्यवसायिक आ. क्रो. प्रणाली का प्रवाही रेखा चित्र दिखाया गया है । आज लगभग सभी व्यवसायिक क्रोमेटोग्राफी प्रणालियों में पृथक्करण कॉलम के पहले गार्ड कॉलम का प्रयोग होता है । इसका कार्य अवांछित आयनों से पृथक्करण कॉलम की सुरक्षा करना है । इसके अतिरिक्त यह वांछित आयनों की सांद्रता भी 20-25% बढ़ाता है जिससे सुग्राहिता में बढ़ोतरी होती है ।

प्रारंभ में एलूयेंट सप्रैसर के लिए विपरीत आवेश वाला रेजिन कॉलम प्रयोग होता था जिसका कुछ नमूनों के विश्लेषण के बाद पुनर्जनन करना पड़ता था । इसके बाद ट्यूबलर मेमब्रेन रेजिन का प्रयोग शुरु हुआ जिसमें एनालाइट तथा पुनर्जनित रेजिन, विपरीत प्रवाह (counter current) में बहते थे । इसके बाद सपाट (flat) झिल्ली सप्रैसर का पदार्पण हुआ जिसमें H^+ तथा OH^- आयन पानी के विद्युत अपघटन (electrolysis) द्वारा सप्रैसर में ही पैदा होते हैं जिसे सेल्फ जेनरेटिंग सप्रैसर के नाम से ही जाना जाता है । इस सप्रैसर के बाज़ार में आने से आ. क्रो. की लोकप्रियता और अधिक बढ़ गयी, क्योंकि पृष्ठभूमि चालकता काफी कम होने के कारण क्रोमेटोग्राम की बेस लाइन में स्थिरता तथा सुधार आता है । कुछ समय पहले आ. क्रो. के आविष्कारक स्माल ने एक नये रिफ्लैक्स सप्रैसर को विकसित किया है जिसमें एलूयेंट विश्लेषणात्मक कॉलम में ही बनाया जायेगा तथा अलग से सप्रैसर या दूसरे कॉलम की आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।

इसी प्रकार इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी में प्रगति द्वारा ऐसे इंटरफेस उपलब्ध हैं जिनके द्वारा आ. क्रो. को किसी भी संसूचक जैसे - आई. सी. पी.- आई. ई. एस. (ICP-IES), आई. सी. पी. - एम. एस. (ICP-MS) एंपरोमीटरी आदि से जोड़ा जा सकता है । अतः जो तत्व/पदार्थ/आयन विद्युत चालकता द्वारा नहीं मापे जा

सकते वे पृथक्करण के बाद इन ऊपर लिखे किसी संसूचक/संसूचकों द्वारा मापे जा सकते हैं ।

समय के साथ आ. क्रो. में हुए नये विकास कार्य जैसे आयन, युग्म (पेयर) तथा आयन एक्सक्लूसन क्रोमेटोग्राफी भी बृहत आयन क्रोमेटोग्राफी के भाग माने जाते हैं । इनके प्रवर्जन ने आ. क्रो. के वैश्लेषिक क्षेत्र को और विस्तृत कर दिया है ।

उपयोग :

आयन क्रोमेटोग्राफी की सरलता, सुग्राहिता नमूने की कम मात्रा की आवश्यकता, विश्लेषण गति तथा एक ही नमूने में बहुतत्व विश्लेषण की संभावना ने आज इस विधि के उपयोग को प्रचलित करने में/होने में मदद की है । सामान्यतया पी. पी. एम. से पी. पी. बी. स्तर की सांद्रता का परिचयन आम बात है । नमूने को पूर्व सांद्रित कर पी.पी.टी. स्तर में उपस्थित तत्व का विश्लेषण भी आ. क्रो. द्वारा पृथक्करण आयनों तथा स्पेशीज को आई.सी.पी.-एम.एस., संसूचक से जोड़कर इनकी बहुत कम मात्रा के सही-सही मापन पर प्रकाशित शोधपत्रों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है । यही कारण है कि अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्थाएं जैसे EPA, IUPAC आदि कई मुख्य विश्लेषण कार्यों के लिए इस विधि का अनुमोदन करती हैं । आज आ. क्रो. का उपयोग पर्यावरण, पॉवर प्लांट, रसायन, अर्धचालक उद्योग, बायोटेक्नोलॉजी, कृषि संबंधी, पल्प और पेपर उद्योग, खनन और धातु उद्योग, इलेक्ट्रोप्लेटिंग, घरेलू सामान तथा नाभिकीय पदार्थों के गुणवत्ता नियंत्रण में आम हो गया है । इस लेख में सभी उपयोगों के बारे में चर्चा करना संभव नहीं है । अत: कुछ ही उदाहरणों द्वारा इस विधि की उपयोगिता को दर्शाया गया है ।

नाभिकीय ईंधन का रासायनिक गुणवत्ता नियंत्रण :

नाभिकीय पदार्थों का विश्लेषण करते समय नमूने की मात्रा तथा सांद्रता पर अंकुश रहता है । अत: इस तरह के नमूने का विश्लेषण करते समय ऐसी विधि प्रयोग करने की आवश्यकता होती है जो विश्वसनीय तथा सुग्राही हो । उदाहरण के रूप में कार्बाइड नाभिकीय ईंधन में फ्लोराइड तथा क्लोराइड की स्पेसिफिकेशन सीमा क्रमश: 10 तथा 20 पी.पी.एम. है । इन अपद्रव्यों को आधात्री (मैट्रिक्स) से पाइरोहाइड्रोलिसिस द्वारा अलग करने के बाद इनकी सांद्रता काफी कम हो जाती है, इसलिए सामान्य गीले तरीकों से इनका सही मापन कठिन है । दूसरे, दोनों तत्वों के मापन के लिए दो भिन्न-भिन्न तरीकों की आवश्यकता पड़ती है । लेखक और उसके साथियों ने F^- तथा Cl^- के आ. क्रो. द्वारा मापन का तरीका विकसित किया है, जिसमें F^- तथा Cl^- की परिचयन सीमा क्रमश: 5 और 10 पी.पी.बी. है । पिछले 5 वर्षों में ऑक्साइड ईंधन, कार्बाइड ईंधन प्लूटोनियम एलॉय आदि के नमूनों में F^- तथा Cl^- का विश्लेषण सामान्य रूप से किया जा रहा है ।

इसी प्रकार नाभिकीय पदार्थों में एक महत्वपूर्ण अपद्रव्य बोरान (B) के विश्लेषण का तरीका विकसित किया गया है । इस तरीके का प्रयोग कर U_3O_8 और U -एलॉय में N विश्लेषण का तरीका तथा सॉल जैल विधि द्वारा UO_2 माइक्रोस्फीयर बनाने के लिए प्रयोग में आने वाले यूरेनिलनाइट्रेट फीड में उपस्थित पी.पी.एम. स्तर के NO_2^- तथा मोलर स्तर के NO_3^- का एक साथ (बिना U के पृथक्करण किये) 5 मिनट में विश्लेषण आदि मुख्य हैं । थोरियम ऑक्साइड नमूने में लेंथनाइड्स के विश्लेषण पर कार्य चल रहा है ।

पर्यावरण संबधी अनुप्रयोग :

पर्यावरणीय नमूनों का आ. क्रो. द्वारा विश्लेषण उसका एक महत्वपूर्ण उपयोग है । इसके अंतर्गत पानी, भूमि तथा हवा से संबंधित नमूनों का विश्लेषण किया जाता है । उदाहरण के तौर पर F^-, Cl^-, NO_2^-, NO_3^{3-}, PO_4^{3-}, SO_4^{2-} जिन पर पानी की गुणवत्ता निर्भर करती है । इनको आ. क्रो. द्वारा 7 मिनट में पृथक कर मापा जा सकता है । विश्लेषण के लिए केवल 50 माली. नमूने की आवश्यकता, 10 पी.पी.बी. की सुग्राहिता तथा स्वचालित उपकरण की उपलब्धता ने इस विधि को प्रचलित होने में मदद की है ।

इसी प्रकार अल्कली और अल्कलाइन अर्थ धातुओं का परिचयन, पीने के पानी, भूमिगत पानी, वर्षा के

पानी, नहाने के पानी, बर्फ इत्यादि के विश्लेषण में आ. क्रो. का उपयोग आम है ।

N की उपस्थिति का मापन NO_2^-, NO_3^-, NH_4^+ की मात्रा से आंका जाता है । ऐसे ही हवा की गुणवत्ता उसमें उपस्थित ऐरोसॉल, सल्फर ऑक्साइड तथा नाइट्रोऑक्साइड पर निर्भर करती है । इन सबका मापन आज आ. क्रो. द्वारा ही हो रहा है ।

दयालबाग एजूकेशन इंस्टीट्यूट, आगरा और लेखक के प्रभाग द्वारा संयुक्त अध्ययन के अंतर्गत दयालबाग क्षेत्र के पर्यावरणीय (ओस, कुहरा, बारिश के पानी तथा एरोसॉल) के कई सौ नमूने एक साल में एकत्र किये गये और उनका विश्लेषण ईंधन रसायनिकी प्रभाग में सप्रैस्ड चालकता आ. क्रो. द्वारा किया गया । विश्लेषण किये गये आयनों में मुख्यतया ऋणायन F^-, Cl^-, NO_3^-, SO_4^{2-}, तथा PO_4^{3-} और धनायन Mg^{2+}, Ca^{2+}, Na^+, K^+ एवं NH_4^+ थे । इनके विश्लेषण से ओस की बनावट अर्थात उसमें उपस्थित तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई ।

इसके अतिरिक्त झरने के पानी में सल्फर स्पीसिएशन का तरीका विकसित कर झरने के पानी का विश्लेषण किया गया । इसी काम को आगे बढ़ाते हुए औद्योगिक अपशिष्ट सल्फर स्पीशीज S^{2-}, SO_3^{2-}, SO_4^{2-}, $S_2O_3^{2-}$, तथा SCN^- के विश्लेषण का तरीका विकसित करके उसके नमूने का भी विश्लेषण किया गया ।

पानी में साइनाइड की मात्रा की सीमा 50 पी.पी.बी. है । यदि पानी अम्लीय हो तो समय के साथ CN^-, HCN के रूप में वाष्प बनकर उड़ जाता है और यदि विश्लेषण शीघ्र न किया जाय तो CN^- की मात्रा कम होती जाती है । हम लोगों द्वारा विकसित आ. क्रो. के तरीके में जिसमें एंपरोमीटरी तरीके से परिचयन होता है साइनाइड विश्लेषण न केवल 10 पी.पी.बी. स्तर का संभव है बल्कि विकसित गतिज संबंध द्वारा नमूने को एकत्र करने वाले दिन में साइनाइड की मात्रा का गणन किया जा सकता है । इसी से संबंधित एक और अध्ययन कार्य में $< 9pH$ के पानी में Cl^- की बढ़ती हुई सांद्रता के प्रभाव के कारण साइनाइड की सांद्रता में परिवर्तन का अध्ययन भी आ. क्रो. द्वारा किया गया ।

रोग संबंधी उपयोग :

आ. क्रो. का एक और महत्वपूर्ण उपयोग, रोग संबंधी रसायनिकी में शरीर के द्रव, सलाइवा, पेशाब तथा सीरम में कार्बनिक और अकार्बनिक ऋणायन तथा धनायन की मात्रा का मापन है । जहां सलाइवा का विश्लेषण एकदम सरल है, नमूने को केवल पतला करके इन्जेक्ट किया जा सकता है वहीं सीरम के नमूने को विश्लेषण के पहले तैयार करना पड़ता है । उसमें उपस्थित प्रोटीन को अलग करना आवश्यक होता है । गुर्दे में पथरी होने वाले रोगी के लिए ऑक्सलेट की मात्रा का मापन अति आवश्यक है । Glyoxylic/Glycolic acid में अपचयन करके फोटोमीटरी तरीके से मापन किया जाता था । यह तरीका अधिक समय लेता था । अतः अधिकतर गुर्दे में पथरी के होने का अनुमान Ca की मात्रा में हुई विषमता से लगाया जाता था । 1982 में आ. क्रो. द्वारा पेशाब के नमूने में ऑक्सलेट के विश्लेषण का तरीका विकसित होने के बाद से इसका सही परिचयन संभव हो गया है । 20 मिनिट में 0.5 माइक्रो मोल/लीटर ऑक्सलेट का सही मापन हो सकता है । आज जीवन के लिए आवश्यक खाने का सामान हो या पीने का पानी, प्रगति का बोधक उद्योग हो या नाभिकीय गुणवत्ता नियंत्रण अथवा स्वास्थ्य संबंधी गुर्दों की पथरी का विश्लेषण, इन सभी में आ. क्रो. का उपयोग हो रहा है और दिन-प्रतिदिन यह तकनीक नये क्षेत्रों में पदार्पण कर रही है । अतः यह कहना कि 'आयन क्रोमेटोग्राफी' - विश्लेषणात्मक रसायन को बीसवीं सदी की एक अनुपम भेंट है, कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा ।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

डेन्ड्राइट कोशिकाएं : हमारे रोग प्रतिरोधीतंत्र की लंभी भुजाएं

अखिलेश कुमार तिवारी
टाइप-IV/1 भा. ला. अ. संस्थान,
नामकुम, रांची - 834 010 (झारखंड)

डेन्ड्राइट कोशिकाएं हमारे शरीर को आक्रांत करने वाले रोगाणुओं को पकड़ कर प्रतिरोधीतंत्र को इनका सामना करने हेतु प्रेरणा प्रदान करती हैं । कैंसर रोधी टीकौषधि के आकल्पन और परीक्षण के उद्देश्य से संप्रति, वैज्ञानिक इन विशिष्ट महत्वपूर्ण कोशिकाओं का आश्रय ले रहे हैं । समस्त मानव शरीर में ऊतकों की गहराई में दबी हुई विस्तीर्ण श्रृंगिकाओं से युक्त ये कोशिकाएं पर्यावरणीय विषम परिस्थितियों से लोहा लेने हेतु सदैव उद्यत रहती हैं । इनकी रोधक क्षमता का गहन अध्ययन करने और कैंसर रोधी टीकौषधि की खोज का अभिनव प्रयास चल रहा है । प्रस्तुत लेख अधुनातन शोध परिणामों पर आधारित है ।

हम अपने दैनिक जीवन में सैंकड़ों की संख्या में फ्लू सदृश अनेक रोगाणुओं का अंतर्ग्रहण करते रहते हैं । ये हमारी नासिका और श्वासनली तथा फेफड़ों की आंतरिक श्लेष्मा को प्रभावित करते रहते हैं । इसी प्रकार साल्मोनेला सदृश जीवाणु हमारे पाचनतंत्र में प्रवेश कर पाचन अस्त-व्यस्तता उत्पन्न करते हैं । त्वचा के धरातल पर असंख्य सूक्ष्मजीव इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब और किस प्रकार वे उपचर्म स्तर पर भेदन कर अंदर प्रवेश प्राप्त करें । रोगाणु आक्रमण के प्रसंग में एक विशेष प्रकार की श्वेत रुधिर कणिकाएं (WBC) जिन्हें डेन्ड्राइट (द्रुमाकृति) कोशिका की संज्ञा दी गयी है, हमारे प्रतिरोधी तंत्र के सर्वोत्तम परिरक्षक सिद्ध हुए हैं । विगत कुछ वर्षों में वैज्ञानिकों ने इन महत्त्वपूर्ण कोशिकाओं का रहस्योद्घाटन और विस्तृत अध्ययन करना प्रारंभ कर दिया है । ये कोशिकाएं प्रतिरोधीतंत्र को यह प्रशिक्षण भी देती हैं कि अमुक पदार्थ बाह्य और अवांछनीय है या सकंटकारक हो सकता है अथवा लाभदायक है ।

द्रुमाकृत्ति कोशिकाएं वस्तुत: शरीर में प्रतिरोधसर्जक प्रत्युत्तरों को भी उत्पन्न करती हैं तथा इनका नियंत्रण भी करती हैं । प्रतिरोधी स्मृति के प्रवर्तन हेतु इनकी अहम् भूमिका होती है । ये तथ्य ही टीकौषधि निर्माण के आधारभूत घटक होते हैं । कतिपय चिकित्साशास्त्रियों और जैव प्रौद्योगिकीय प्रतिष्ठानों ने द्रुमाकृतिक कोशिकाओं के इस महत्वपूर्ण योगदान पर आधारित टीकौषधियों का प्रयोग करना प्रारंभ भी कर दिया है । इनमें मुख्यत: D-कोशिकाएं तथा रोगी व्यक्ति के शरीर से उपार्जित की गयीं कुछ अर्बुद कोशिकाएं भी रहती हैं । D-कोशिकाओं का गहन संबंध प्रतिरोधक सहनशीलता से भी होता है । D-कोशिकाओं के माध्यम से ही HIV-(एड्स) विषाणु लिंफ़ ग्रंथियों में पहुंच पाते हैं । वे लिंफ ग्रंथियों में T-कोशिकाओं का भ्रंशन करते रहते हैं, अत: AIDS व्याधि का आक्रमण प्रदर्शित होने लगता है । कुछ ऐसी कोशिकाएं जो उचित समय पर क्रियाशील नहीं हो पाती हैं, प्राय: प्रतिरोधी व्यतिक्रमों (Immune disorders) यथा - ल्यूपस (Lupus) - त्वक्क्षेत्रीय घावों का सृजन करने लगती हैं ।

प्रतिरोधी विज्ञान के दो प्रधान घटक माने जाते हैं - प्रतिजन और लसिका द्रव । परंतु केवल इन्हीं दो आधारभूत घटकों की सहायता से प्रतिरोध क्षमता को अर्जित करना संभव नहीं होता है । एक तृतीय महत्व वाले घटक के रूप में DC या डेन्ड्राइट कोशिकाएं भी होती हैं । ये वस्तुत: प्रतिजनकारी प्रस्तुतीकरण का कार्य

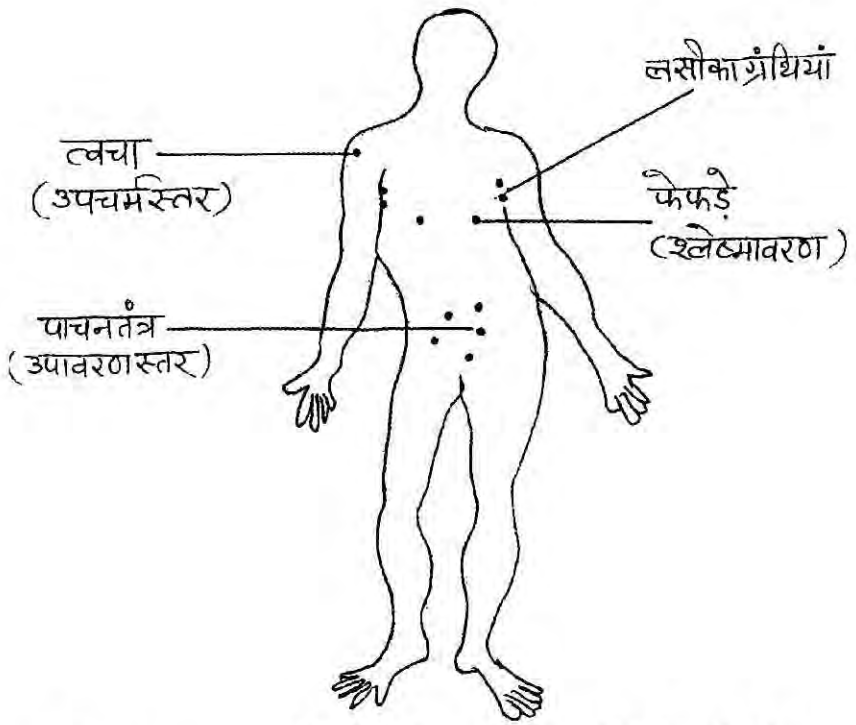

चित्र-1 : मानव शरीर में द्रुमीय कोशिकाओं की उपस्थिति

संपादित करती हैं। अतएव ये APC (प्रतिजन प्रस्तुतकारी कोशिका वर्ग) के अंतर्गत आती हैं और प्रतिरोधी प्रत्युत्तरीय क्षमता की प्रेरक तथा नियंता होती हैं। सर्वप्रथम इनकी पहचान वर्ष 1868 में लैंगर हैंस कोशिका के रूप में त्वचा के उपचर्म स्तर क्षेत्र में की गयी थी। इनका विधिवत् अध्ययन वर्ष 1975 के लगभग प्रारंभ हुआ। द्रुमीय कोशिकाएं β एवं T-लिंफोसाइट्स की दक्ष प्रेरक होती हैं। β-कोशिकाओं की प्रवृत्ति प्रतिकाय उत्पादन की ओर होती हे व β-कोशिका धारी ग्राहकों के माध्यम से सीधे ही प्रतिजनों का अभिज्ञापन कर लेती हैं।

T-कोशिकाएं APCs के द्वारा प्रतिजनों को प्रसंस्कृत रूप में परिणत करने के पश्चात् ही पहचान पाती हैं। वस्तुतः T-कोशिकाओं के प्रतिजन संग्राही TCRs प्रतिजन के अंशों के MHC (Major Histocompatibility Complex) के साथ संबद्ध करने के उपरांत ही पहचान पाते हैं। जब इनका प्रस्तुतीकरण APCs के द्वारा किया जाता है।

द्रुमीय कोशिकाओं के अतिरिक्त कोई भी मानव रक्त-कोशिका अपने नाम के अनुरूप कार्य नहीं प्रदर्शित करती है। हमारे श्वासतंत्र, लसीका अंगों और त्वचा आदि में पायी जाने वाली DCs तारों की भांति श्रृंगिकाओं से युक्त होती हैं। पृथक्कृत करके स्लाइड पर देखे जाने पर इनमें अनेक सूक्ष्म द्रुम देखे जा सकते हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी यंत्र में इनके द्रुमीय प्रवर्धन लगभग 10 माइक्रॉन तक बड़े दिखाई पड़ते हैं। ये कांटेदार अथवा समान धरातलीय हो सकते हैं। जीवित अवस्था में प्रावस्था विपर्यासी सूक्ष्मदर्शी में ये कोशिकाएं विस्तीर्ण और सुकोमल सार्वदैशिक प्रवर्धनों (श्रृंगिकाओं) से युक्त दिखाई पड़ती हैं। जीवित या कृत्रिम प्रयोगशाला से उत्पादित मात्र कुछ ही D-कोशिकाएं दृढ़ कोशिका

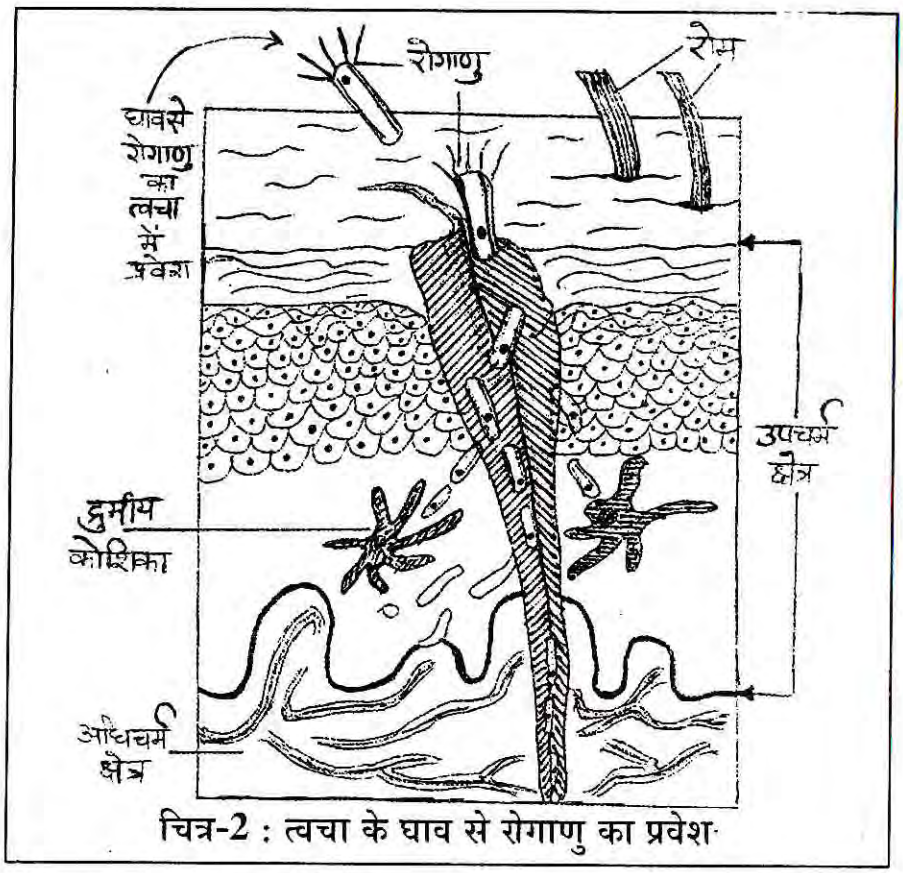

चित्र-2 : त्वचा के घाव से रोगाणु का प्रवेश

प्रत्युत्तरों को उद्वेलित करने हेतु आवश्यक होती हैं ।

प्रायोगिक परिस्थितियों में द्रुमीय कोशिका, मिश्रित ल्यूकोसाइट प्रतिक्रिया को प्रेरित कर सकती है जो अंग प्रत्यारोपण तिरस्कार हेतु उत्तरदायी होती है । एक प्राणी की ल्यूकोसाइट्स (प्रत्यारोपण हेतु दाता) ग्राही प्राणी की T-कोशिकाओं से मिश्रित होने पर यदि दोनों मेल खाती हैं तो मिश्रित ल्यूकोसाइट्स प्रतिक्रिया (MHC) के दौरान T-कोशिकाएं वृद्धि करने लग जाती हैं और साइटोकाइंस का मोचन करती हैं, तब इन्हें CTLs की संज्ञा दी जाती है । सामान्य अवस्था में MLR (मिश्र ल्यूको प्रतिकिया) में समान संख्याओं में प्रेरक तथा प्रत्युत्तरीय कोशिकाएं भाग लेती हैं, तथापि मात्र एक द्रुमीय कोशिका 100 से 3000 T-कोशिकाओं को उद्वेलित कर सकती है ।

द्रुमीय कोशिकाएं अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में होती हैं । ये रक्त में कुल श्वेत सधिर कणिकाओं की मात्र 0.2% ही होती हैं । कुछ अन्य ऊतकों (यथा - त्वचा) में भी अल्प संख्या में पायी जाती हैं । इनकी विरलता के कारण ही आंशिक रूप से इनके प्रमुख क्रिया-कलापों का सही ज्ञान अर्जित करने में वैज्ञानिकों को कठिनाइयां होती रहीं । सर्वप्रथम1868 में शरीरविज्ञानी पॉल लैंगर हैंस ने इनका पता लगाया था । उसने भ्रमवश इन्हें त्वचावर्ती चेतापुच्छों की संज्ञा प्रदान की थी । वर्ष 1973 में रॉक फेलर वि. वि. में कार्यरत प्रो. स्टीनमैन ने इन कोशिकाओं को मूषकों की प्लीहा (Spleen) में देखा और उनकी प्रतिरोधी भूमिका की पुष्टि की । इन कोशिकाओं में असाधारण रूप से प्रायोगिक जंतुओं में प्रतिरोधी क्षमता के प्रवर्तन की क्षमता पायी गयी । इन्हें इसी कारण से डेन्ड्राइटिक कोशिकाओं का नाम दिया गया था । क्योंकि इनकी भुजाएं प्रवर्धित थीं । अभी भी

कुछ DCs को लैंगर हैंस कोशिकाओं के ही नाम से जाना जाता है। ये त्वचा के उपचर्म स्तर में पायी जाती हैं।

DCs के अभिज्ञान के लगभग 20 वर्ष पश्चात् भी शोधकर्ता इनके उपार्जन हेतु नवजात ऊतकों से कष्ट-साध्य मंद प्रक्रिया पर ही आश्रित थे। 1992 में कई नवीन पद्धतियों का विकास हुआ ताकि बड़ी मात्रा में DCs का अस्थिमज्जा में वर्धन करना संभव हो सके। वर्ष 1994 में लैन्जावेकिया के नेतृत्व में शोधकर्ताओं ने श्वेत रक्त कणिकाओं से मोनोसाइट्स का वर्धन किया। इनको DCs में परिवर्तित करना सरल था जो प्रतिरोधी तंत्र को क्रियाशील अथवा क्रियाशून्य करने में सक्षम होती हैं इनसे मैक्रोफाज कोशिकाओं का सृजन करना भी संभव होता है, जो सूक्ष्मजीवों तथा मृत कोशिकाओं का सफाया करने में सक्षम होती हैं।

DCs की कृत्रिम वर्धन क्षमता ने इनके बारे में सम्यक ज्ञानार्जन की दिशा में बहुत सहायता की है। DCs के कई युग्म प्रिकर्सरों से भी उत्पन्न होते रहते हैं और रक्त में यत्र-तत्र भ्रमण के पश्चात् अपरिपक्वरुप में त्वचा में आश्रय ले कर स्थित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्लेष्मावरणीय अन्य अंगों (यथा- यकृत, फेफड़ों, प्लीहा आदि) में भी ये युग्म पाये जाते हैं। अपरिपक्व DCs में आक्रामक रोगाणुओं को पकड़ने तथा नाश करने की अद्भुत क्षमता होती है। ये कोशिकाएं सूक्ष्म स्तरीय तरल चूषण विधि के द्वारा अपने पास स्थित विषाणुओं का भी चूषण कर लेने में धानी विधि (Vaculoe mehtod) का उपयोग करने में दक्ष होती हैं।

यांग जुऑन लियू के अनुसार कुछ अपरिपक्व DCs विषाणुओं का त्वरित नाश करने के लिए α–इंटरफरोन नामक द्रव्य का मोचन करने लगती हैं। एक बार जीवाणु इनके पास आते ही टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। प्रतिरोधी तंत्र को यह ज्ञात भी होता रहता है। ये कोशिकाएं MHC के अनुवर्ती Pick forked अणुओं का प्रयोग करती हैं। प्रतिजनों का पता लगाने और उन्हें पकड़ने में DCs अत्यंत दक्ष होती हैं। ये रक्त और लसीका के माध्यम से भ्रमण करती हैं तथा प्रतिजनयुक्त MHCs अणुओं को भी सृजित करती हैं जब एक निर्धारित स्थान पर पहुंच जाती हैं और परिपक्वता अर्जित करने लगती हैं। वस्तुत: DCs की सीधी सादी T-कोशिकाओं को प्रशिक्षित भी करती हैं कि अमुक प्रतिजन बाहरी है या नहीं, अर्थात् संकटकारी हो सकता है या नहीं। यह अद्भुत क्षमता संभवत: सह-संवेदी अणुओं के कारण होती है जो इनके बाहरी धरातल पर अवस्थित होने के कारण प्रभावी होते हैं और T-कोशिका की सतह पर स्थित अनुरुमी ग्राही से संबद्ध हो सकती हैं।

अपरिपक्व एवं परिपक्व द्रुमीय कोशिकाएं :

अधिकांश ऊतकों में DCs की उपस्थिति "अपरिपक्व" स्थिति में ही पायी जाती है। इस स्थिति में ये T-कोशिकाओं को उद्वेलित करने में असमर्थ होती है। यद्यपि इनमें वांछित अतिरिक्त संकेतों का अभाव रहता है जो T-कोशिका क्रियाशीलता उत्पन्न करते हैं, यथा -CD-40, CD-54 और CD-86। तथापि ये प्रतिजनों को पकड़ने के लिए अत्यंत दृढ़ रुप से उद्यत रहती हैं। वस्तुत: प्रतिजन ही तो DCs के भ्रमण और पूर्ण परिवरक्वता के लिए उत्तरदायी होते हैं। अपरिपक्व DCs की प्रहरी स्थिति के कारण ये स्पष्ट रुप से त्वक् धरातल अथवा उपचर्म स्तर पर DC अणुओं के कारण प्रदर्शित होती हैं। मनुष्यों में लगभग 10^9 उपचर्मवर्ती ल्यूकोसाइट्स होती हैं। अपरिपक्व DCs त्वचा में वर्धनीय केराटिनोसाइट्स के आधार स्तर के ऊपरी स्तर में पायी जाती हैं।

नवजात ल्यूकोसाइट्स दुर्बल T-कोशिकाग्राही होती हैं तथा इनमें कुछ ही MHC और अतिरिक्त अणु पाये जाते हैं। इनमें बहुत से प्रतिजन पकड़ने वाले ग्राही अणु (Fcy एवं Fce) अवश्य पाये जाते हैं। प्रायोगिक संवर्धनों के दौरान यह लाक्षणिक स्वरुप (Phenotype) परिवर्तित होने में मात्र 24 घंटे ही लगते हैं। कोशिकाओं में व्यापक संपरिवर्तन हो जाते हैं, (यथा - प्रतिजन पकड़ने की क्षमता लुप्त हो जाना, T-कोशिका कार्यों में वृद्धि आदि)। जीवित परिस्थिति में लगभग यही प्रभाव प्रदर्शित होता है। शक्तिशाली प्रतिरोधक संवेदना प्राप्त होने पर (यथा, किसी प्रत्यूर्जक (Allergen) या

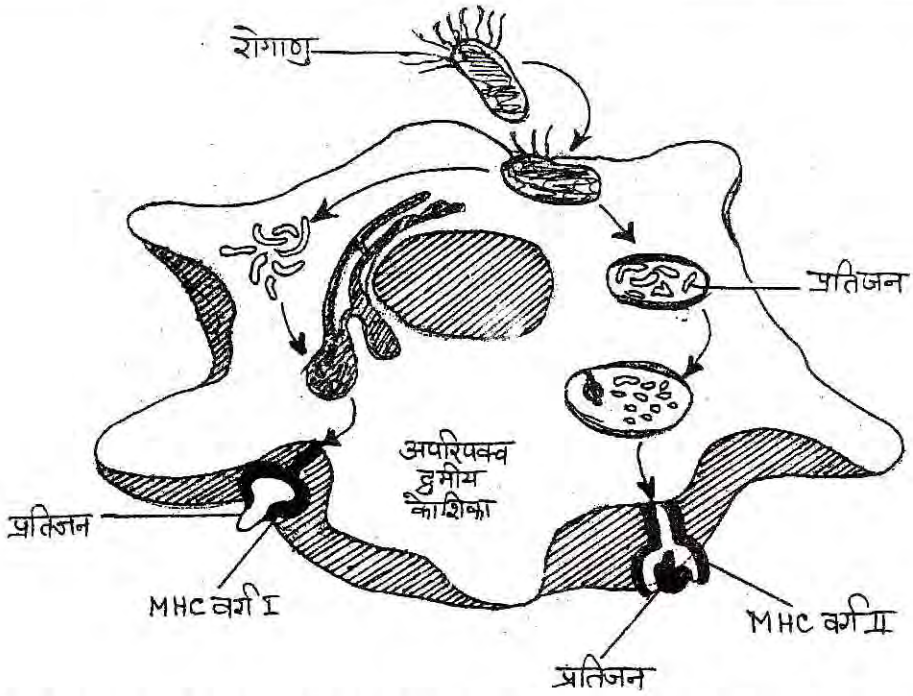

चित्र-3 : अपरिपक्व द्रुमीय कोशिका द्वारा रोगाणु का अंतर्ग्रहण एवं भ्रंशन

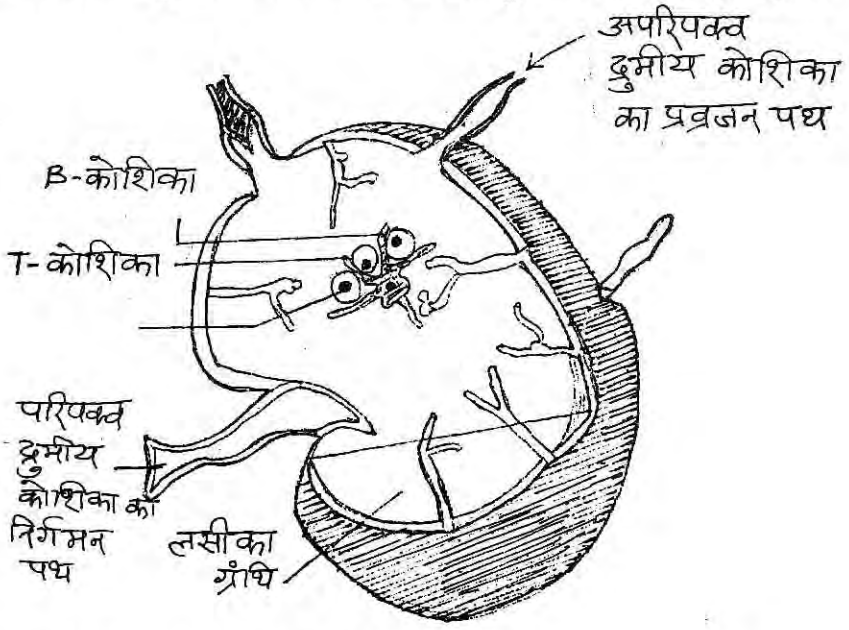

चित्र-4 : लसीका ग्रंथि में द्रुमीय कोशिका द्वारा प्रतिकाय सृजन प्रक्रिया

अंग प्रत्यारोपण (Transplant) के संपर्क में) अधिकांश ल्यूकोसाइट्स जो उपचर्म में होती हैं, परिपक्व होने लग जाती हैं और अधिचर्मीय लसीकाओं (Dermal Lymphatics) में गतिमान हो जाती हैं। इन्हें प्रतिजनीय T-कोशिकाओं की खोज करनी होती है। न्यून मात्रा में प्रतिजन पकड़ने वाली DCs भी रक्त फेफड़ों, प्लीहा, हृदय, वृक्कों तथा β एवं T-कोशिकाएं जो टॉन्सिल्स में होती हैं, पायी जाती हैं। इनमें LC के विशिष्ट संकेतक नहीं मिलते हैं (यथा, E-कैदेरिन, बरबेक कण, Lag-1 आदि) । तथापि 1-2 दिनों के उपरांत ये अतिरिक्त अणुओं का उपार्जन कर ही लेती हैं।

अपरिपक्व DCs में कई ऐसे गुण होते हैं जो उन्हें प्रतिजनों को पकड़ने में सक्षम बनाते हैं। एक तो ये रोगाणु तथा सूक्ष्मजीवों के कणों का भक्षण फागो-साइटोलसिस (Phagocytosis) के द्वारा कर लेते हैं, दूसरे ये बृहदाकार पिनोसाइट घटाकृतियों का सृजन कर सकते हैं जिनमें अतिकोशिकीय तरल और अन्य विलेय द्रव्य स्थित होते हैं। इस पूरी क्रिया को मैक्रोपिनोसाइटोसिस कहते हैं। तीसरे, ये एन्डोसाइटोसिस के घटकीय ग्राहियों को भी प्रदर्शित करती हैं। प्रतिजनों का इस प्रकार कोशिका के आंतरिक पथों में प्रवेश होता रहता है। मैक्रोफाजों में अधिकांश प्रोटीन लाइसोसोमों में स्थानांतरित कर दी जाती है। इनमें मात्र कुछ MHCs जो द्वितीय वर्ग के होते हैं, स्थित होते हैं। DCs में ऐसा नहीं होता है। DCs स्वयं ही अत्यधिक संख्या में MHC- द्वितीय वर्गीय पेप्टाइडों का उत्पादन मात्र एकल जीवन अवस्था में ही करने में सक्षम होती हैं।

अपरिपक्व DCs में यह विलक्षण क्षमता संभवत: इनमें पाये जाने वाले MHC की प्रचुरता वाले क्षेत्रों के कारण होती है। इनकी परिपक्वता प्राप्ति की अवधि में ये लाइसोसोमहीन पुटियों में परिवर्तित हो जाते हैं। कोशिकाहारी मारक कोशिकाओं (Cytotoxic Killer cells)-CKCs की उत्पत्ति के लिए DCs को प्रतिजनीय पेप्टाइडों को CD-8 प्रदर्शित करने वाली T-कोशिकाओं को MHCs आवृत्त अणुओं के साथ प्रस्तुत करना पड़ता है। CKCs ही संक्रमित कोशिकाओं को नष्ट करने हेतु तथा अंग प्रत्यारोपण तथा अर्बुद कोशिकाओं को आक्रांत करने में सक्षम होती हैं।

वस्तुत: यह सुस्पष्ट हो चुका है कि प्रतिरोधी क्षमता के प्रवर्तन हेतु DCs की परिपक्वता आवश्यक होती है। परिपक्वता के कई घटक और कारक होते हैं, यथा -सूक्ष्मजीवी या प्रदाही अणु, जीवाणु, सूक्ष्मजीवी भित्तिअवयव, साइटोकाइंस आदि। एक बार अनुदेश प्राप्त कर लेने के उपरांत सहायक T-कोशिकाएं, β-कोशिका वर्ग को उद्वेलित करने लगती हैं ताकि वे प्रतिकायों और मारक कोशिकाओं की उत्पत्ति कर सकें और संक्रामकों तथा संक्रमित कोशिकाओं का विनाश कर सकें। कुछ अन्य प्रशिक्षित कोशिकाओं का स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं, फिर स्मरण कोशिकाओं का कार्य करने लगती हैं और कई वर्षों तक शरीर में अवस्थित रहती हैं। मारक कोशिकाओं का प्रत्युत्तर उत्पादन वास्तव में DCs के उपवर्ग पर भी आंशिक रूप से आश्रित होता है। साइटोकिन्स -I या -II की क्रियाशीलता पर यह निर्भर होता है। संक्रामक या परजीवी कारकों के आक्रमण के समय टाइप-II साइटोकाइन युद्ध के हेतु तैयार हो जाती हैं। टाइप-I अन्यान्य जीवाणुओं तथा विषाणुओं के आक्रमण हेतु क्रियाशील होती रहती हैं। यदि DCs अनुपयुक्त साइटोकिन्स का चयन कर भी लेती हैं तो शरीर पर कुप्रभाव पड़ सकता है पर इसका सामना भी किया जाता है। कुष्ठ व्याधि के जीवाणु संक्रमण की स्थिति में कुछ व्यक्तियों में टाइप-I प्रत्युत्तर प्रकट होते हैं और तब साधारण ग्रंथियों वाला व्याधिस्वरूप (Tuberculoids) प्रकट होता है। टाइप-II प्रत्युत्तरों के प्रवर्तन होने पर घातक स्वरूप प्रकट हो सकता है।

कैंसर घाती प्रवृत्ति :

कैंसर कोशिकाओं की असामान्यता एक सर्वविदित तथ्य है। इसके द्वारा कुछ ऐसे प्रतिकूल अणुओं का सृजन किया जाता है जो हानिप्रद होते हैं। इन अणुओं को लक्ष्यीकृत रूप से नष्ट करने के लिए टीकौषधि का विकास कैंसर से मुक्ति पाने का एक सशक्त माध्यम हो सकता है। सीधी-सादी सहायक T-कोशिकाओं को

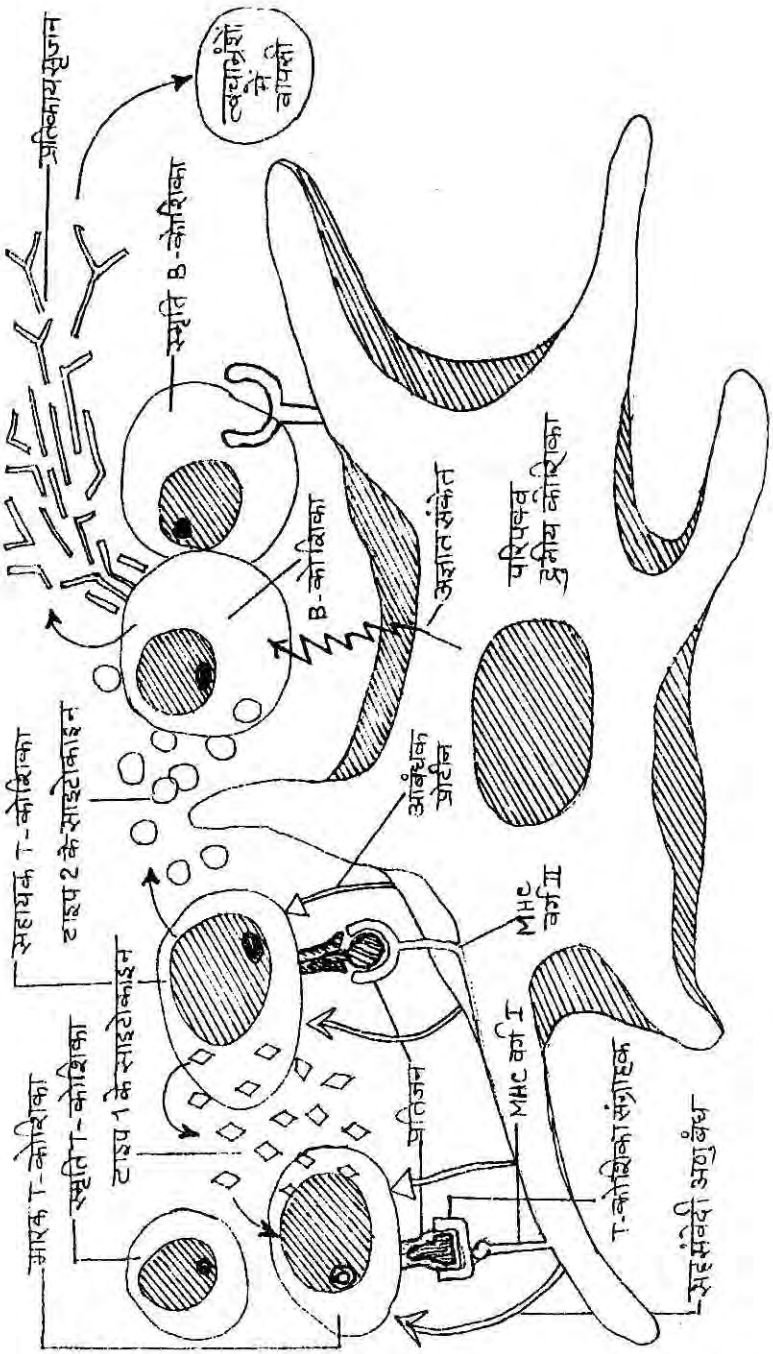

चित्र-5 : लसीका ग्रंथि में प्रव्रजनोपरांत द्वयीय कोशिका के आबंधन से प्रतिकाय सृजन

क्रियाशील बनाना सभी टीकौषधियों का आधार होता है। अतएव वैज्ञानिकों ने अपना ध्यान D-कोशिकाओं के इस बारे में योगदान पर क्रेंद्रित करना प्रारंभ किया है। इनसे सामान्य कोशिकाएं अप्रभावित रहती हैं और रासायनिक चिकित्सा तथा विकिरण उपचार के दुष्प्रभावों से भी मुक्ति मिलती है (यथा - केश-क्षय, अस्थिमज्जा नाश, दुर्बलता, रक्ताल्पता, प्रतिरोध क्षमता ह्रास)। कुछ विशिष्ट प्रतिजन, जो मात्र कैंसर कोशिकाओं पर ही

तालिका-1 : द्रुमीय कोशिकाएं - एक दृष्टि में

संरचना	अवस्थिति	कार्य	कैंसर टीकौषधि संभावनाएं
• विस्तीर्ण अंगिकाओं वाली कोशिकाएं • भ्रमणकारी प्रवृत्ति	• त्वचा के उपचर्म ऊतक • श्लेष्मावरणीय क्षेत्र • प्लीहा • लसीका ग्रंथियों, प्रणाली	संक्रामक सूक्ष्मजीवियों को घेरकर उनका नाश करती हैं तथा धरातलीय प्रतिजन प्रदर्शित करती हैं, अंततः इनका भ्रंशन कर देती हैं। इस प्रकार प्रतिरोधी तंत्र की विशिष्ट नियामक होती हैं।	अर्बुद प्रतिजनों की धारक D-कोशिकाओं के मानव आधारित परीक्षण प्रगति पर हैं और टीकोषधि निर्माण का कार्य भी शीघ्र पूरा होगा।

प्रदर्शित होते हैं, कष्ट साध्य रुप से ही अर्जित कर शोधकार्यों हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं, तथापि वैज्ञानिकों ने अनेक प्रतिजनों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली है। इनमें त्वचावर्ती कैंसर - मेलानोमा उल्लेखनीय है। मेलानोमा के विशिष्ट प्रतिजनों की पहचान वर्ष 1990 के आरंभ में ब्रूसेल्स के राष्ट्रीय कैंसर संस्थान के प्रो. थेरीबून तथा रोज़ेनबर्ग ने की थी।

संप्रति, मेलानोमा चिकित्सा में कई परीक्षणों के दौरान D-कोशिका टीकौषधियों का प्रयोग किया जा रहा है और इनमें कैंसरग्रस्त रोगियों से अर्जित की गयी एवं प्रयोगशाला में अर्बुद प्रतिजनों के सान्निध्य में विकसित DC पूर्वजनकों का उपयोग किया जा रहा है। वास्तव में DCs प्रतिजनों को पकड़ कर उन्हें तोड़ डालती हैं और भ्रंश कणों को कोशिका धरातल पर लाती हैं, जब इन्हें टीकौषधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तो प्रतिजनों से आवृत्त DCs अर्बुदों के विरुद्ध प्रत्युत्परों का प्रवर्तन करने लगती हैं।

अनेक शोधकर्ताओं ने विविध प्रकृति वाले कैंसरों (यथा - मेलानोमा, लिंफोमा, बृहदांत्रीय तथा प्रोस्टेट कैंसरों) पर इन परीक्षणों को संपादित करना आरंभ कर दिया है और अनेक मामलों में सफलता भी प्राप्त की है। अब ऐसे परीक्षण बड़े स्तर पर किये जाने लगे हैं। अभी तक DC-टीकौषधि का उपयोग उग्र कैंसर अवस्था में ही किया जाता था। कुछ प्रारंभिक अवस्था वाले कैंसरों में टीकौषधियां आक्रांत कर सकती हैं अथवा इस संदर्भ में रोगी के प्रतिरोधीतंत्र को इस हेतु प्रेरित कर सकती हैं। उदाहरणार्थ -Vitilago (त्वचा में सामान्य मेलैनोसाइट्स के नाश के कारण उत्पन्न श्वेत दाग) को मेलैनोमा से ग्रस्त् रोगियों की टीकौषधीय चिकित्सा के दौरान उभर कर प्रकट होते देखा गया है।

यदा-कदा अर्बुदों के उत्परिवर्तन की भी संभावनाएं होती हैं, जो DC- टीकौषधि के प्रतिरोधी दंश से बच निकलते हैं। इस संदर्भ में अर्बुद कोशिकाएं प्रतिजनों का उत्पादन ही करना रोक देती हैं जिन पर टीकौषधि प्रभाव डालती है। ऐसा केवल DC- टीकौषधि के उपचारी मामलों में ही नहीं अपितु परंपरागत कैंसर उपचारों में भी प्रदर्शित होता है। DC- टीकौषधि का निर्माण विशिष्ट अर्बुदों के उपचार की दृष्टि से मितव्ययी नहीं होता है। वैज्ञानिकों ने इसके लिए रोगी के शरीर से अर्बुद कोशिकाओं को उपार्जित करने के समय अपव्ययी पद्धति से मुक्ति पाने की दिशा में एक अभिनव प्रयास के अंतर्गत DCs के पूर्वोत्पादकों (Precursors) को उद्वेलित करने का प्रयत्न किया है, जो पहले से ही विद्यमान रहते हैं। ये विखंडित होकर अर्बुद के विरुद्ध प्रतिरोधी प्रत्युत्तरों को उत्पन्न करती हैं। सियेटिल में कार्यरत प्रो. डेविड लैंच और उनके दल ने यह स्पष्ट किया है कि एक विशिष्ट साइटोकिन मूषकों में अधिक DCs के निर्माण हेतु प्रेरक होती है। ड्यू पैरडोल ने यह ज्ञात किया कि आनुवंशिकीय अभियंत्रण युक्त अर्बुद कोशिकाएं बड़ी मात्रा में साइटोकिन्स का निर्माण कर सकती हैं। ये साइटोकिन्स ही DCs को

तालिका-2 : द्रुमीय कोशिकाधारित कैंसर रोधी टीकौषधियों का विकास

टीकौषधि निर्माता	मुख्यालय	भंडारण संकेत	कैंसर की प्रवृत्ति	परीक्षण-अवस्था विवरण
ML - प्रयोगशाला	बैरिंगटन (इंग्लैंड)	LSE : MLB	मेलानोमा (त्वचावर्ती कैंसर)	परीक्षणों की प्रथम अवस्था
डैन्ड्रियोन	सियेटिल (अमरीका)	NASDAQ : DNDN	प्रोस्टेट, स्तन कैंसर, अंडाशयी, बृहदांत्रीय एवं बहुआयामी मायलोमा	अंडाशय,स्तन-प्रथमावस्था बृहदांत्रीय कैंसर, प्रौस्टेट - II/III अवस्था
जेनज़ाइम	फ्रेमिंघन (अमरीका)	NASDAQ : GZMO निजी	वृक्क, मेलानोमा	वृक्क - प्रथमावस्था मेलोनोमा- II/III अवस्था
प्रतिरोधी डिज़ाइनधारी अणु	पेरिस	(गुप्त)	प्रोस्टेट, मेलानोमा	परीक्षणों की II अवस्था
मैरिक्स बायोसाइंस	डरहम (अमरीका)	निजी (गुप्त)	मेलानोमा	प्रथमावस्था
ऑक्सफोर्ड बायोमेडिका	ऑक्सफोर्ड (इंग्लैंड)	LSE : OXB	बृहदांत्रीय	I या II अवस्था
ज़ाइकोस	लेक्सिंगटन (अमरीका)	निजी (गुप्त)	DNA - आधारीत टीकौषधि (अन्यान्य कैंसर के लिए)	I या II अवस्था

क्रियाशील करते हैं तथा कैंसर टीकौषधि निर्माण में इनका बड़ा महत्व है ।

द्रुमीय कोशिकाओं का प्रव्रजन :

कार्यावेशित होने पर DCs लसीका ऊतकों की ओर परिभ्रमण करने लगती हैं, यथा - प्लीहा एवं लसीका ग्रंथियों में पहुंच कर परिपक्वता प्राप्त करती हैं, T- और β-लिंफोसाइट्स को आकर्षित करती हैं तथा पुनर्चक्रित होने वाली TLs की क्षमता का अनुरक्षण भी करती हैं। इस उद्देश्य से ये केमोकिन्स (Chemokines) का मोचन करती हैं । रोगाणुओं की अनुपस्थिति में भी DCs का एक वर्ग भ्रमण करता ही रहता है व इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में लिंफ के माध्यम में ये सदा विद्यमान रहा करती हैं । अपवाद स्वरूप वापसी लिंफ द्रव में ये नहीं पायी जाती हैं क्योंकि लसीका ऊतकों में पहुंच कर अधिकांश प्रव्राजक DCs मृतप्राय हो जाती हैं ।

रक्त में DCs के पूर्वोत्पादकों के दो उपवर्ग होते हैं - एक तो प्रदर्शनकारी होती हैं, दूसरी CD11c हीन होती हैं । यकृतवर्ती साइन्यूसाइड्स में अवस्थित DCs यकृत की लसीका वाहिनियों और गुहावर्ती लसीका ग्रंथियों में प्रवजन करती हैं आंत्रवर्ती DCs आंत्रयोजनी (Mesentery) में स्थित लसीका ग्रंथियों में प्रव्रजित होती रहती हैं । अंतर्ग्रहीत विषाणु और जीवाणु DCs को गतिमान कर वायुमार्गीय उपावरण के अंदर प्रविष्ट कर देते हैं । इसके अतिरिक्त स्फुरदीप्तीय स्पर्श प्रत्यूर्जकों का त्वचा से स्पर्श भी DC- प्रव्रजन को प्रेरित करता है । हृदय एवं त्वचा के प्रत्यारोपण के उपरांत DCs प्रत्यारोपी अंग से निकलकर विभिन्न लसीका ऊतकों में भ्रमण करने लग जाती हैं । जब इनके प्रवेश को अभिवाहक लसीका वाहिनियों के संबंध विच्छेदन द्वारा अवरुद्ध कर दिया जाता है तो प्रत्यारोपित अंग या त्वचाखंड अथवा स्पर्शी प्रत्यूर्जकों के प्रत्युत्तर उत्पन्न नहीं होते हैं ।

द्रुमीय कोशिकाओं के प्रव्रजन मार्ग के विषय में अपूर्ण जानकारी होती है। कई साइटोकिन्स और कैमोकिन्स यथा - GM-CSF TNF-α, IL-4, MIP-1α तथा β, प्रव्रजन और परिपक्वनीयता का नियमन करती रहती हैं।

प्रतिरोधक क्षमता की अवरुद्धता :

वैज्ञानिकों ने DCs की कार्य शैली के अवरोधक कारकों का अध्ययन भी प्रारंभ किया है। कभी-कभी ये कोशिकाएं विलोम प्रवृत्तीय कार्य भी करने लगती हैं और व्याधि के कारकों से युद्ध करने के स्थान पर उन्हें प्रोत्साहित करने लग जाती हैं। सामान्यत: शरीर में 'केंद्रीय सहनशीलता' के उद्देश्य से वक्ष प्रदेशीय ग्रंथि 'थायमस' से नवसृजित T-कोशिकाओं का मोचन होने लगता है, जो अपने शरीर के अवयवों को भी बाहरी समझ लेती हैं और कुछ इस क्रिया में वंचित भी रह जाती हैं। इस तरह शरीर में ऐसी अवरुद्धता स्वयं ही उत्पन्न होती रहती है। कुछ प्रकीर्ण रोगों से आक्रांत रोगियों में (यथा Rheumatoid arthritis, टाइप-I मधुमेह या Lupus erythematosus जो स्वप्रतिरक्षक व्यतिक्रमों (Autoimmune disorders) से भी ग्रस्त होते हैं, यह परिवृत्तीय सहनशीलता (Peripheral tolerance) प्रभावी नहीं होती है। रक्त में स्थित DCs ल्यूपस के रोगियों में असाधारण रूप से क्रियाशील होती हैं क्योंकि ये उच्च मात्रा में α–इंटरफेरानों का विमोचन करती रहती हैं, जो एक प्रतिरोधी प्रोटीन है।

α–इंटरफेरानों के कारण रक्त में ही परिपक्व DCs के पूर्वोत्पादकों का सृजन संभव होता है। परिपक्व DCs डी. एन. ए. का अधिग्रहण करती हैं जो ल्यूपस रोगियों में असामान्य रूप से पाया जाता है। परिणामत: व्यक्ति विशेष के प्रतिरोधी तंत्र को स्वयं अपने ही डी.एन.ए. के विरुद्ध प्रतिकाय सृजन हेतु प्रेरित करता है। इस प्रकार के प्रतिकाय ल्यूपस के रोगियों के लिए जीवन को संकटमय और जटिल बना सकते हैं यदि ये वृक्कों या रक्तप्रवाहिकाओं में पहुंच जाते हैं। अत: α–इंटरफेरानों की उत्पत्ति बाधित करना वस्तुत: ल्यूपस की एक उपचार विधा मानी जाती है। दूसरे शब्दों में इसे DCs की क्रियात्मक प्रवृत्ति को अवरुद्ध करना कह सकते हैं। संभवत: इस प्रकार की उत्प्रेरक विधा का उपयोग अंगों के प्रत्यारोपण से उत्पन्न होने वाले तिरस्कार को रोकने हेतु भी किया जा सकता है। AIDS के नवीनतम उपचार हेतु भी D-कोशिकाओं की क्षमता का उपयोग संभव है। वर्ष 2000 में नीदरलैंड के वैज्ञानिकों ने DCs के एक उपवर्ग की पहचान की जिनके द्वारा DC-SIGN (HIV के बाह्य आवरण को बांध सकने वाला अणु) का निर्माण होता है। ये कोशिकाएं HIV रोगाणुओं का चयन कर लसीका ग्रंथियों में स्थित T-कोशिकाओं के भंडार को हस्तांतरित कर देती हैं। ऐसी औषधियां, जो HIV और DC-SIGN की अंतर्क्रिया को अवरुद्ध करती हैं, AIDS की व्यापकता में ह्रास उत्पन्न करती हैं।

द्रुमीय कोशिकाओं की उत्पत्ति एवं विकास :

DCs की उत्पत्ति के अनेक मार्ग हो सकते हैं। रक्त में पायी जाने वाली मोनोसाइट्स उपयुक्त साइटोकिन्स के साथ प्रयोगशाला में संवर्धन विधि से DCs का सृजन करती हैं। अस्थि मज्जा में भी DC कोशिकाओं के पूर्वजनक होते हैं। RBCs के पूर्वजनक भी समस्त रक्त कोशिकाओं एवं DCs को उत्पन्न करते हैं, इसमें उनमें अवस्थित CD-34 के अंश होने के कारण ही ऐसा होता है। इस प्रकार नवजात DCs पूर्ण अपरिपक्व, अविभाजी प्रकृति की होती हैं। कई साइटोकिंस इनकी वृद्धि और विभेदन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

मनुष्यों में एक विशिष्ट लसीकावर्ती DC जनक की पहचान की गयी है जो CD-4 को भी प्रदर्शित करता है एवं DC11c इसमें अनुपस्थित रहता है। यह प्रतिकाय उत्पादक प्लाज़्मा कोशिका के सदृश्य प्रतीत होता है परंतु IL-3 तथा CD40L की उपस्थिति में DC को जन्म देता है। यहां पर उल्लेखनीय है कि यद्यपि मूषक DCs की उत्पत्ति उत्क्रमणीय विषाणुओं (Transformaing Viruses) की सहायता से संभव है, तथापि तात्कालिक DC मलिनता प्रदर्शित नहीं होती है। मानवीय लैंगर हैंस कोशिका नियमन (Granulomatosis) के दौरान प्रारूपिक LCs (निफोसाइट्स) तथा

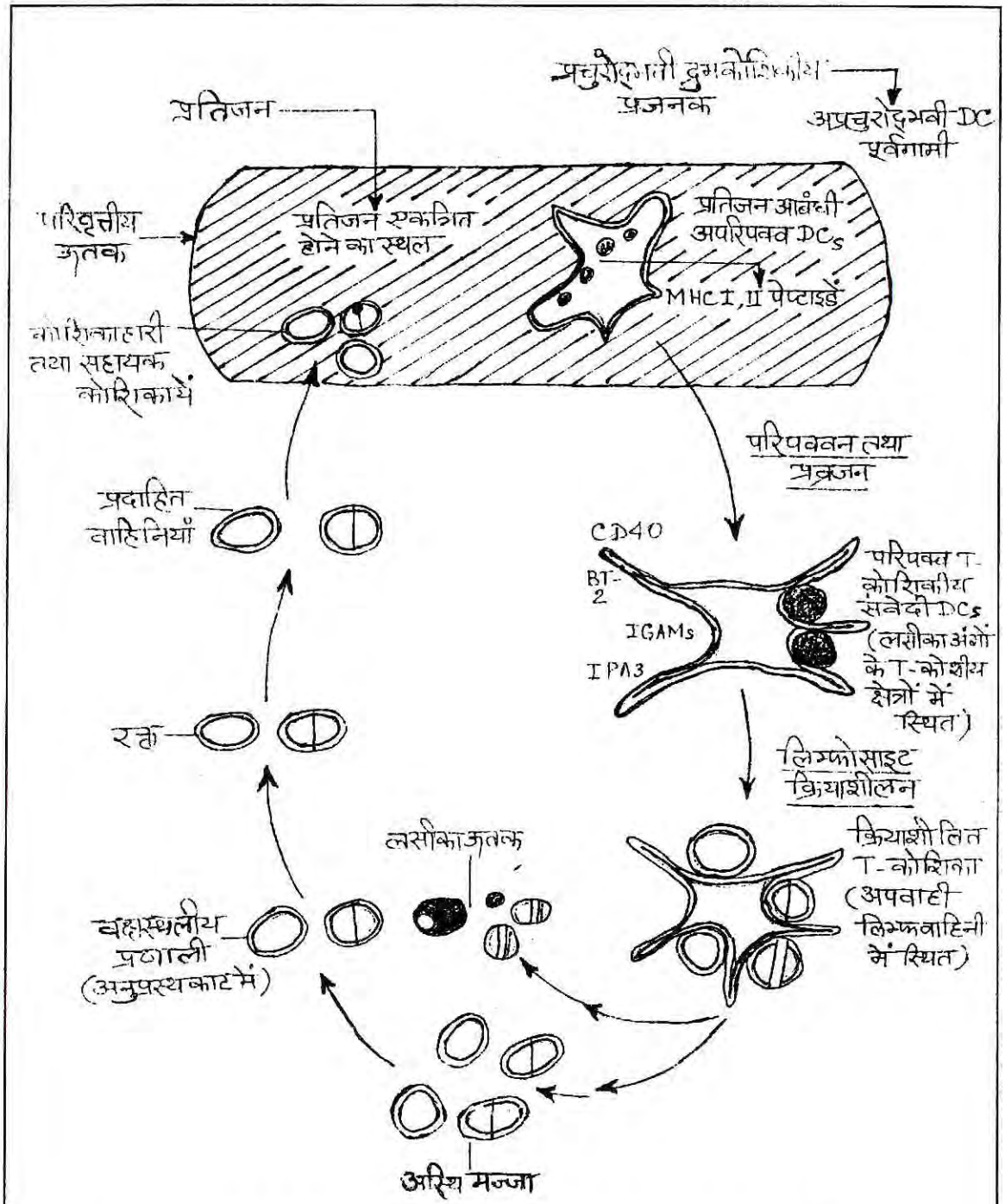

चित्र-6 : प्रतिरोधी तंत्र के नियमन की अपवाही तथा अभिवाही क्रियाएं

इओसिनोफिल कोशिकाएं एक साथ संग्रहित होती रहती हैं। इस संग्रहण की भूमिका ग्रेनूलोमास (Granulomas) और अन्य मलिनताओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रतीत होती है।

द्रुमीय कोशिका तथा β-लिंफोसाइट्स :

DCs अपनी T-कोशिका उद्वेलनकारी प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं परंतु β–कोशिकाओं की वृद्धि तथा इम्यूनोग्लोब्यूलिन) के मोचन पर भी दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करती हैं। β कोशिकाएं, DCs दोनों ही APCs (प्रतिजन उत्पादक कोशिकाएं) होने के कारण अत्यावश्यक मानी जाती हैं। DCs प्रतिजनों को अंतर्हित कर सकती हैं क्योंकि इनमें बहुआयामी ग्राही होते हैं, जबकि β–कोशिकाओं में विशिष्ट प्रतिजन इम्यूनोग्लोब्यूलिन संग्राही एवं कुछ अन्य प्रतिजनरोधी तत्त्व होते हैं। DCS T-कोशिकाओं को उद्वेलित और प्रसारित भी करती हैं जो कालांतर में β–कोशिका वृद्धि और प्रतिकाय उत्पत्ति को प्रेरित करती है।

FDCs (Follicular Dendritic Cells) अवगुंठनीय द्रमीय कोशिकाएं सीधे ही उद्वेलित रक्त कोशिकाओं (BCs) की आजीविता, वृद्धि तथा विभेदनीयता का नियमन करती हैं तथा प्रामाणिक BC अवगुंठनों का संगठन भी करती हैं। FDCs सामान्य DCs से अलग होती हैं और अस्थिमज्जा जनित नहीं होती हैं। उनमें ल्यूकोसाइट चिन्हक नहीं पाये जाते हैं (CD 45) तथा एक विशिष्ट प्रकार के अणुओं का धरातलीय प्रदर्शन करती हैं जो अन्य ज्ञात पूरक ग्राही (CD11b, CD 21, CD 35) तत्त्वों के अतिरिक्त होते हैं। वर्धित हो रही BCs (Centroblasts) में आंतरिक उत्परिवर्तन होते रहते हैं जिनके पश्चात् उनका विभाजन अवरुद्ध हो जाता है और वे सेन्ट्रोसाइटट्स (Centrocytes) के रूप में तब तक प्रतीक्षा करती हैं जब तक FDCs के द्वारा प्रतिरोधी जटिलता उन्हें उद्वेलित नहीं करती है। इस प्रकार BCs तथा TCs का आपसी ताल-मेल ही उच्च शक्तिवाली BCs के दीर्घ आजीवन का आधार होती हैं।

द्रुमीय कोशिकाएं तथा T-कोशिकाएं :

द्रुमीय कोशिकाएं की प्रेरक क्षमता जो T-कोशिकाओं पर प्रभावी होती है, के प्रति अधिकांश अध्ययन केंद्रित हैं, किंतु बाहरी प्रतिजनों से सामना करने के पूर्व T-कोशिकाओं को स्वकीय प्रतिजनों के प्रति सहनीयता विकसित करना आवश्यक होता है। यह क्रिया थाइमस ग्रंथि में क्रेंद्रीय सहनीयता के द्वारा होती है और इसमें T-कोशिकाओं का विलोपन होता है। लसीका अंगों में परिवर्ती सहनीयता विकसित होती है जो संभवतः परिवक्व T-कोशिकाओं के अपमार्जन या ऊर्जा प्रेरण के फलस्वरूप होता है। दोनों ही स्थितियों में DC तंत्र, जो प्रतिरोधी गुणों का भी सृजन करता है, वस्तुतः बाह्य प्रतिजनों के प्रति सहनीयता के विकास के साथ-साथ स्वकीय प्रतिजनों के प्रति भी इस गुण का सृजन करता है।

थाइमस के मध्यांश में MHC अणुओं के संदर्भ में DCs स्वप्रतिजनों को प्रस्तुत करती हैं। थाइमोसाइटस जो स्वप्रतिजनों के प्रति उच्च पक्षपात रखती हैं स्वयं निष्क्रिय हो जाती हैं, इस क्रिया को 'नकारात्मक चयन' कहा जाता है। यदि प्रतिजनधारक DCs सीधे विकासशील थाइमस अथवा भ्रूणीय थाइमस अंग प्रवर्धनों में प्रविष्ट किये जाते हैं तो प्रतिक्रियाशील T-कोशिकाएं निष्क्रिय हो जाती हैं। थाइमिक ऊतक में मैक्रोफाज बड़ी मात्रा में मृत थाइमोसाइट्स को खा डालती हैं जो धनात्मक चयन क्रिया में असफल हो जाती हैं। यद्यपि इन मैक्रोफाजों में स्वप्रतिजनों का नियंत्रण करने की उच्च क्षमता होती है और स्वतः प्रतिक्रियाशील T-कोशिकाओं को निष्क्रिय करने की आदर्श प्रवृत्ति होती है, तथापि ये ऐसा नहीं कर पाती हैं जब MHC (वर्ग II) के अणु मध्यांश में स्थित DCs पर ही प्रस्तुत किये गये होते हैं। दूसरी ओर जब MHC (वर्ग II) के अणु मात्र ऊतकीय उपावरण में ही प्रदर्शित होते हैं और DCs में नहीं, तो स्वप्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि होती है। इससे यह प्रकट होता है कि मध्यांश में स्थित DCs ही स्वप्रतिक्रियाशील T-कोशिकाओं के निष्फलन की उत्तरदायी होती हैं।

अधुनातन शोध अध्ययनों से DCs के एक अतिविशिष्ट योगदान का संकेत मिला है कि ये कोशिकाएं

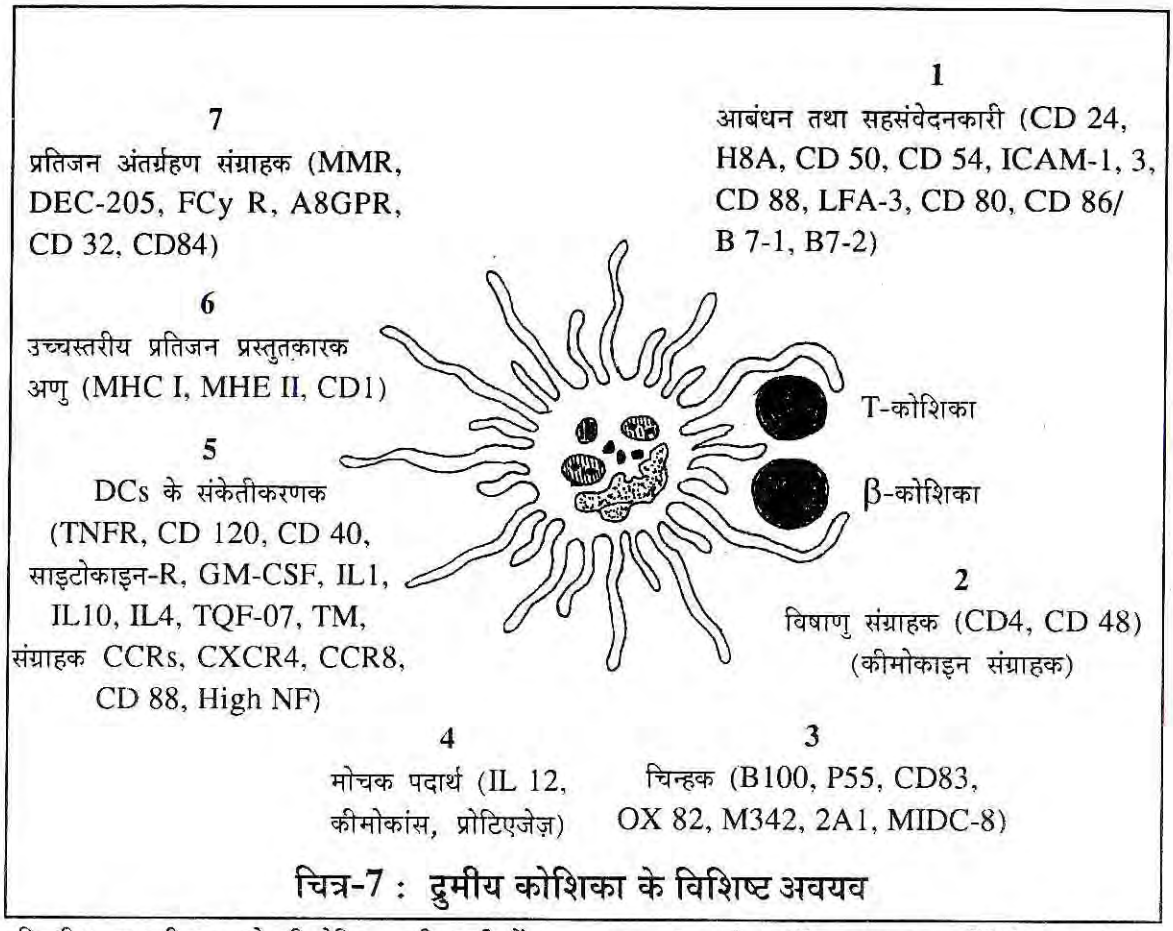

चित्र-7 : द्रुमीय कोशिका के विशिष्ट अवयव

परिवृत्तीय सहनशीलता को भी प्रेरित करती रहती हैं । DCs ऐसे प्रतिजनों को भी पकड़कर प्रस्तुत कर सकती हैं जो विशिष्ट ऊतकों में ही एकमात्र पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ, - अस्थिमज्जा से उत्पन्न APCs उन पेप्टाइडों को प्रस्तुत करती हैं जो इंसुलिन उत्पादक β– कोशिकाओं (पैंक्रीएस की) से सृजित होते हैं और इन्हें लसीका ग्रंथियों में स्थित T-कोशिकाओं को हस्तांतरित कर देती हैं परंतु अभी हाल में यह ज्ञात हुआ है कि DCs पेप्टाइडों का प्रस्तुतीकरण एपॉपटोपिक (Apoptotic) कोशिकाओं से प्राप्त करती हैं ।

द्रुमीय कोशिकाओं का व्याधि नियंत्रक योगदान :

कतिपय प्रकीर्ण व्याधियों से आक्रांत व्यक्तियों में अनेक स्वप्रतिरोधी व्यतिक्रम भी पाये जाते हैं, यथा- टाइप-I मधुमेह, तंत्रीय ल्यूपस इराइथीमेटोसस, संधिवात आदि । रक्त में विद्यमान DCs ल्यूपस के रोगियों में असाधारण रुप से क्रियाशील होती हैं क्योंकि ये उच्च मात्रा में α–इंटरफेरानों का मोचन करती हैं । α–इंटरफेरान एक प्रतिरोध सर्जक प्रोटीन होती हैं । इसके कारण रक्त में ही परिपक्व DCs के पूर्वजनकों का उद्भव संभव होता है । विकास प्रक्रिया के उपरांत परिपक्व DCs डी एन ए को अधिग्रहण करना प्रारंभ कर देती हैं, जो ल्यूपस रोगी के रक्त में असाधारण रुप से होता है। इसके परिणामस्वरुप स्वयं अपने ही डी एन ए के विरुद्ध व्यक्ति विशेष के प्रतिरोधी तंत्र को प्रतिकाय उत्पादन हेतु प्रेरणा प्रदान करता है । इस प्रकार से उत्पन्न प्रतिकाय रोगियों के जीवन को संकटग्रस्त तथा

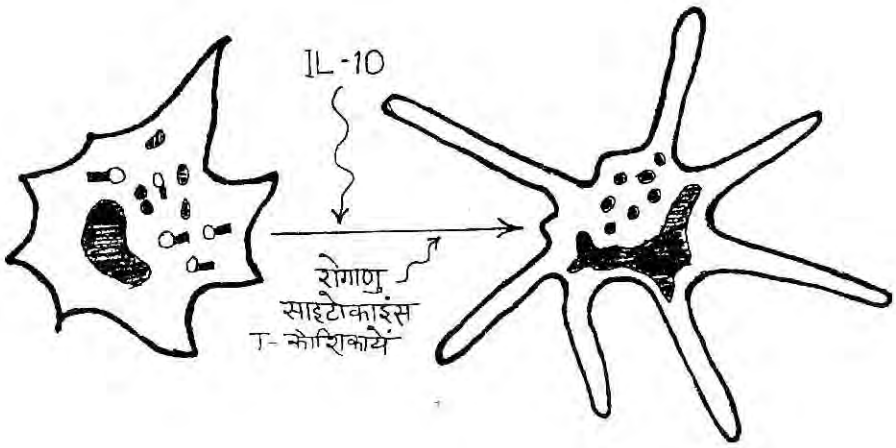

अपरिपक्व द्रुमीय कोशिका	परिपक्व द्रुमीय कोशिका
1. उच्च अंतर्कोशिकीय MHC II	1. उच्च धरातलीय MHC II
2. अंतर्कोशिकीयन FcR	2. निम्न अंतर्कोशिकीयन FcR
3. निम्न CD 54, 58, 80, 86	3. उच्च CD 54, 58, 80, 86
4. निम्न CD 40, CD 25, IL-12	4. उच्च CD 40. CD 25, IL-12
5. निम्न CD 83, p55	5. उच्च CD 83, p55
6. निम्न कणीय प्रतिजन	6. उच्च प्रतिजन M342, 2A1, MIDC-8
7. क्रियाशील तंतु विद्यमान	7. क्रियाशील तंतु अनुपलब्ध

चित्र-8 : द्रुमीय कोशिका के परिपक्वन के दौरान होने वाले अवयवीय परिवर्तन

जटिल बना सकते हैं यदि ये वृक्कों अथवा रक्तप्रवाही नलिकाओं में पहुंच जाते हैं। अत: α–इंटरफेरानों का उत्पादन बाधित करना वस्तुत: ल्यूपस के लिए एक उपचारी विधि के समतुल्य होती है। दूसरे शब्दों में इसे DCs की क्रियाशीलता को अवरुद्ध करना भी कहा जाता है। इसी प्रकार की उत्प्रेरक विधा का उपयोग अंग प्रत्यारोपण से उत्पन्न तिरस्कार को रोकने हेतु भी किया जा सकता है।

एड्स के नवीनतम उपचार में DCs की क्षमता का उपयोग भी संभव है। वर्ष 2000 में नीदरलैंड के वैज्ञानिकों ने DCs के एक उपवर्ग की पहचान की है जो DC-SIGN (HIV के बाह्यावरण का आबद्धकर्ता) अणुओं के निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है। ऐसी DCs HIV का चयनकर लिंफग्रंथियों में स्थित T-कोशिकाओं को देती रहती हैं क्योंकि HIV निरंतर श्लेष्मावरणों और गहराई पर स्थित ऊतकों में भ्रमण करती रहती हैं। ऐसी औषधियां जो HIV और DC-SIGN के बीच अंतर्क्रिया को अवरुद्ध करती हैं, एड्स की व्यापकता घटाने में प्रभावी सिद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त कई अन्य जटिल परिस्थितियों (प्रत्यूर्जा, स्वप्रतिरोधी व्याधियां, संक्रमण प्रतिरोधी शून्यता, अर्बुद विकास, प्रतिरोधी दक्षता अभाव, टीकौषधि निर्माण) में भी DCs ही आधारभूत नियामक होती हैं। कुछ अन्य स्वत: प्रतिरोधी व्याधियों में [सोरायसिस, RA (संधिवात)]। बृहत् मात्रा में DCs क्रियाशील होने लगती हैं। दमा, प्रत्यूर्जा संकट में DCs ही प्रमुख रूप से APCs के रूप में श्वासतंत्र में व्याधि शमन को प्रेरित करती हैं। चिकित्सा विज्ञान के अंतर्गत संप्रति, DCs के त्रिआयामी प्रभावों

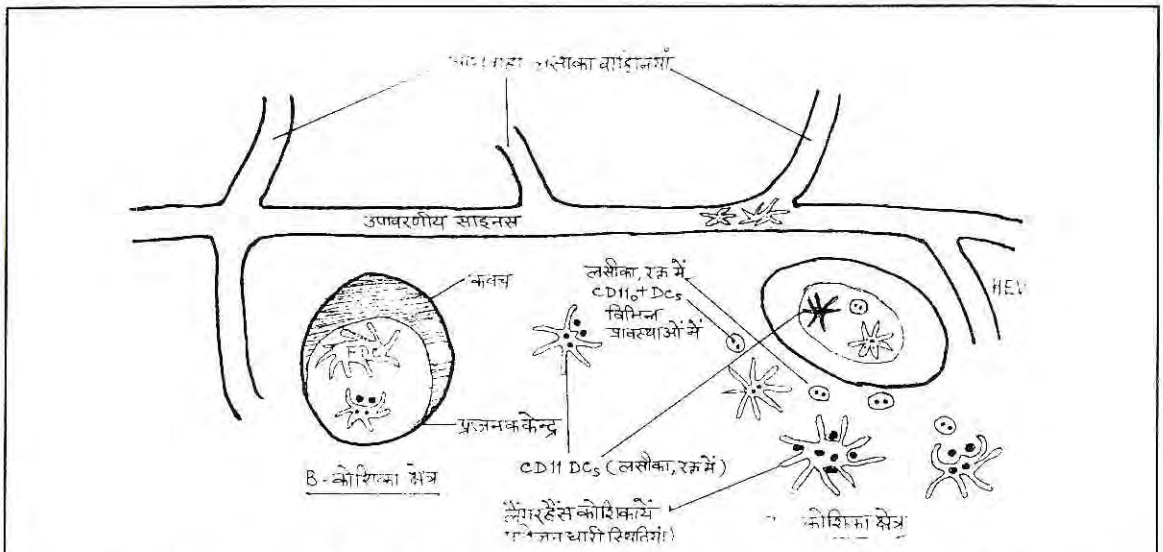

चित्र-9 : लसीका अंगों में विभिन्न विकासी प्रावस्थाओं में द्रुमीय कोशिकाओं के उपवर्ग

पर ध्यान दिया जा रहा है - प्रतिरोधी दक्षता शून्यता विषाणुओं के संक्रमण का विनाश, अर्बुद विकास का प्रतिरोध, रोग मुक्ति हेतु टीकौषधि निर्माण की क्षमता । कई संक्रामक व्याधियों - मलेरिया, खसरा, साइटोमिगैलो वायरस संक्रमण आदि में DCs का नियमन इनके नियंत्रण हेतु सकारात्मक सिद्ध हो रहा है । मलेरिया परजीवी से संक्रमित RBCs और DCs की संबद्धता के कारण परजीवी की परिपक्वता और विकास बाधित हो जाते हैं और रोगी के प्रतिरोधी तंत्र को समय पर चेतावनी भी प्रदान कर दी जाती है । वैज्ञानिक इन परजीवी सूक्ष्मजीवों के द्वारा DCs के अपहरण की प्रवृत्ति रोकने के उपाय खोजने में व्यस्त हैं । कुछ अन्य शोधकर्ता अत्यावेशित DCs की खोज में भी संलग्न हैं जो इन दुर्दांत संक्रमणों से लड़ सकें । शनैः शनैः हमारा ज्ञान DCs के नियामक अणुओं के विषय में बढ़ता जा रहा है और इस प्रकार इनकी व्याधि उपचार क्षमता के दोहन का मार्ग प्रशस्त होने लगा है । DCs की जैविकीय क्षमताओं में अभिवृद्धि करने की दिशा में भी प्रयास हो रहे हैं जो मानव मात्र को संकटाकीर्ण करने वाली अनेकानेक दुर्दांत और कष्टसाध्य व्याधियों से मुक्ति प्रदान करने में सहायक सिद्ध होंगे ।

भविष्य की चुनौतियां :

संप्रति, वैज्ञानिकों ने द्रुमीय कोशिकाओं के असाधारण जीवन और क्रियाकलापों के अध्ययन के अभिनव प्रयास करना प्रारंभ ही किया है तथापि, अनेक प्रश्न अनुत्तरीत हैं । आण्विक स्तर पर भी DCs के अनुक्रमण के प्रयत्न किये जा रहे हैं । मारक-संदमनक वर्गीय अणुओं तथा कीमोकाइंस तथा उनके ग्राहियों, प्रोटिनेजेज आदि की पहचान की जा चुकी है । भविष्य में नवीन लसीका कोशिकाओं को बांधनेवाले मोचित उत्पादों तथा प्रतिजन प्रसंस्कारी अणुओं तथा अनुलेखन घटकों पर शोधकार्य होने की आवश्यकता होती ताकि DCs के विशिष्ट लक्षणों का स्पष्टीकरण किया जा सके ।

कार्यिकी के संदर्भों में DCs के कई घटकों को विस्तार से समझना शेष है, तभी प्रतिरोधी तंत्र का सफल नियमन भी संभव हो सकेगा । DCs के प्रव्रजन और परिपक्वन के संकेतकों को दिशा निर्देशन, उचित समय और लसीका ग्रंथियों में उनके पहुंचने की प्रक्रियाएं अभी भी अज्ञात या अल्पज्ञात हैं । T-कोशिकाओं या कभी कभी β–कोशिकाओं के क्षेत्रों में भी इनके भ्रमण का विस्तृत अध्ययन करने की आवश्यकता है । DCs के विभिन्न उपवर्गों और उनके β–कोशिकाओं पर पड़ने वाले प्रभावों की भी गवेषणा की जानी चाहिए ।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

ट्रांसजेनिक बी. टी. कपास

डॉ. महेंद्र सिंह
केंद्रीय कपास अनुसंधान संस्थान,
(भा. कृ. अनु. प.), पोस्टबैग नं. 2,
शंकर नगर, नागपुर - 440 010

बी. टी. कपास आनुवंशिक रूप से परिवर्तित कपास का पौधा है, जिसमें बी. टी. नामक जीवाणु के एक ऐसे जीन को स्थानांतरित किया गया है, जो कीटों के लिए एक विषाक्त प्रोटीन का निर्माण करता है। पौधे में इस जीन की उपस्थिति से बॉलवर्म तथा अन्य कीट कपास के पौधे को क्षतिग्रस्त नहीं कर पायेंगे, जिससे फसल की रक्षा हो सकेगी। प्रस्तुत लेख में भारत तथा अन्य देशों में बी. टी. कपास की खेती की स्थिति का विवरण दिया गया है।

भारत सरकार द्वारा देश के मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्रों में वर्ष 2002-03 से ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास की व्यावसायिक खेती की मंजूरी देने से कपास के उत्पादन में वृद्धि की संभावना है। कपास अनुसंधान की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद भी पिछले कई वर्षों से भारत की कपास उत्पादकता लगभग 300 किग्रा. रुई/हैक्टर है जो कि विश्व की औसत उत्पादकता (640 किग्रा. रुई/हैक्टर) से काफी कम है। इसके अनेक कारणों में कपास की फसल में बढ़ती हुई कीट समस्या प्रमुख है। कीटों से बचाने के लिए कृषि में उपयोग कुल कीटनाशकों का 45% से अधिक का उपयोग इस फसल में होता है। हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा (अमरीकी बॉलवर्म) कपास का प्रमुख कीट है। इस कीट में अनेक कीटनाशकों के प्रति अवरोधकता उत्पन्न हो गयी है। वर्षों से भारतीय कपास उत्पादक किसानों के लिए बॉलवर्मों का नियंत्रण एक गहन चिंता का विषय बना हुआ है। इस कीट के नियंत्रण के लिए कोई कारगर उपाय सामने नहीं आया है।

किसानों की इस गंभीर समस्या को देखते हुए कृषि वैज्ञानिकों ने आनुवंशिकीय अभियांत्रिक तकनीक से ट्रांसजेनिक बी. टी. कपास का विकास किया है। ट्रांसजेनिक बी. टी. कपास में बॉलवर्म के लिए प्रतिकारक क्षमता होती है। इस प्रौद्योगिकी का विकास 1996 में सर्वप्रथम अमरीका में किया गया और इसके साथ ही ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास की व्यावसायिक खेती शुरू हुई। इस प्रौद्योगिकी से प्राप्त अच्छे परिणामों से विश्व के अन्य 7 देशों ने ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास का व्यावसायिक रूप से उत्पादन प्रारंभ कर दिया है। विश्व के अनेक देशों में ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास की सफलता को देखते हुए भारत ने भी तीन बी. टी. संकरों का विकास किया है तथा देश में इनके बहुस्थानीय परीक्षण किये गये हैं। इन परीक्षणों में इनके उत्कृष्ट प्रदर्शन के कारण 26 मार्च 2002 को इनकी खेती के लिए मंजूरी प्रदान की गयी है। वर्ष 2002-2003 में इन तीनों ट्रांसजेनिक संकरों की व्यावसायिक रूप से खेती की जा रही है। भारत में बी.टी. कपास व्यावसायिक खेती के लिए अनुमोदित पहली ट्रांसजेनिक फसल है। ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास की खेती शुरू होने से भारत इस प्रौद्योगिकी का उपयोग करने वाला विश्व का 8वां देश बन गया है।

आनुवंशिकीय अभियांत्रिकी तकनीक क्या है ?

पादप कोशिकाओं में जीन हस्तांतरण, डी एन ए को सीधे रोपित कर अथवा मृदा बैक्टीरियम (एग्रोबैक्टीरियम) एवं पादप विषाणुओं के जीनोम आधारित वाहकों की प्राकृतिक प्रक्रिया के माध्यम से किया जा सकता है।

बी. टी. कपास की खेती का एक दृश्य

पादप जैव-प्रौद्योगिकी तकनीकों का उपयोग कर, पौधे के अपने जीनों को बढ़ाकर तथा वर्गीकृत असंबद्ध पौधों एवं अन्य घटकों के जीनों को पहचान कर उन्हें आनुवंशिक रुप से परिष्कृत किया जाता है । जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्राप्त पौधों में असंबद्ध जीवों के एक जीन अथवा एक से अधिक जीन होते हैं जो कि ट्रांसजेनिक (पराजीनी) कहलाते हैं । अब ऊतक संवर्धन तथा जैव प्रौद्योगिकी तकनीक के साथ-साथ पारंपरिक अनुसंधान के तरीकों का उपयोग करके वैज्ञानिक ऐसे ट्रांसजेनिक पौधे तैयार कर रहे हैं जो आर्थिक दृष्टि से अत्यंत लाभकारी हैं । अब पादप जैव प्रौद्योगिकी जिसमें ऊतक संवर्धन तथा जीन हस्तांतरण जैसी अनेक तकनीकें शामिल हैं, के माध्यम से अनेक सस्य विज्ञानी एवं पर्यावरणीय समस्याओं का हल खोजा जा रहा है ।

आनुवंशिक रुप से परिष्कृत व्यावसायिक खेती वाली तथा कीट प्रतिरोधी मुख्य फसलें हैं - कपास, आलू तथा मक्का, जबकि शाकनाशी प्रतिरोधी फसलें हैं- सोयाबीन, कनोला तथा कपास । वर्तमान में, कपास में व्यावसायिक रुप से उत्पादन के लिए केवल दो प्रकार के ट्रांसजेनिक (बी. टी. एवं शाकनाशी) उपलब्ध हैं ।

ट्रांसजेनिक बी. टी. कपास :

बी. टी. जीन, बैसिलस थुरिंजैन्सिस मृदाजनित जीवाणु में पाया जाता है । यह जीन बॉलवर्म के लिए विषाक्त प्रोट्रीन का निर्माण करता है । बैसिलस थुरिंजैन्सिस (बी. टी.) लगभग 20 कीटनाशकीय क्रिस्टल (क्राई) प्रोटीन का निर्माण करता है जिनमें पौध-संरक्षण की क्षमता होती है । इसके जीवाणु के क्राई-1ए (सी) जीन (विषाक्तता के लिए) को क्लोनीकृत करके जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों द्वारा कपास के पौधे में डालकर बॉलवर्म प्रतिरोधी ट्रांसजेनिक बी. टी. कपास का विकास किया गया है । वर्तमान में क्राई-1ए (सी) जीन का उपयोग व्यावसायिक खेती की जाने वाली सभी ट्रांसजेनिक बी. टी. कपासों में किया गया है । क्राई-1ए (सी) जीन का कपास के पौधे में प्रत्यारोपण से एक विषाक्त प्रोटीन

का निर्माण होता है, जिसे डेल्टा इन्डोटॉक्सिन कहते हैं। अत: जब बॉलवर्म कपास के फलनअंगों को खाता है तब पौधे में उत्पन्न विषाक्त प्रोटीन लेपिडेप्टेरेन कीट (बॉलवर्म) के आहारनाल में पहुंचती है तो वहां क्षारीय वातावरण व एन्जाइम प्रोटीयेज की सहायता से विखंडित होकर इन कीटों के लिए विषाक्त बन जाती है और यह बॉलवर्म के उदर तथा जबड़े पर असर करती है। फलस्वरूप कीट मर जाता है। यह विशिष्ट कीटनाशी प्रोटीन केवल विशेष प्रकार के कीट को ही मारता है। इस तरह फसल में स्वत: ही इन बॉलवर्म का फैलना रुक जाता है। इस तरह बी. टी. कपास बॉलवर्म से अपनी रक्षा करती है।

ट्रांसजेनिक शाकनाशी कपास :

दो शाकनाशी सहिष्णु जीन्स, बी एक्स एन व राउंड अप रेडी, का कपास की फसल में उपयोग कर ट्रांसजेनिक शाकनाशी कपास का विकास किया जा चुका है। कपास के पौधे में प्रत्येक जीन चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार ब्रोमोक्सिनिल या ग्लाइफोसेट के प्रति अवरोधता प्रदान करते हैं। अमरीका तथा ऑस्ट्रेलिया में ट्रांसजेनिक शाकनाशी कपास की व्यावसायिक खेती की जा रही है। विश्व के अन्य देशों में ट्रांसजेनिक शाकनाशी कपास को खेती के लिए अनुमोदित नहीं किया गया है। अमरीका के अलावा अन्य देशों में ट्रांसजेनिक शाकनाशी कपास की तुलना में कीट प्रतिरोधी ट्रांसजेनिक बी. टी. कपास अधिक लोकप्रिय हैं। जैव प्रौद्योगिकी तकनीक से शाकनाशी सहिष्णु जीन व बॉलवर्म अवरोधी जीन दोनों को एक जीन प्रारूप में डालकर राशीकृत कपास की किस्मों का विकास किया है। इस प्रकार के जीन प्रारूपों की व्यावसायिक खेती अमरीका में वर्ष 1996 से हो रही है।

विश्व में ट्रांसजेनिक फसलें एवं बी.टी. कपास की स्थिति :

ट्रांसजेनिक फसलों की खेती : जैव प्रौद्योगिकी तकनीक से विभिन्न फसलों की प्रतिकूल स्थितियां (कीट, शाकनाशी, जल, ताप, सूखा व पाला) सहने के गुणों से युक्त नयी किस्मों का विकास किया गया है।

वर्ष 2001 में, विश्व में कुल 13 देशों में ट्रांसजेनिक फसलों की खेती की गयी। यद्यपि यूरोप के अधिकतर देश आनुवंशिकीय अभियांत्रिकी उत्पादों के प्रति चिंतित हैं, फिर भी आनुवंशिकीय अभियांत्रिकी फसलों का तीन-चौथाई हिस्सा विकसित देश, चीन में है। ट्रांसजेनिक फसलों की व्यावसायिक खेती को लगभग 10 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। विश्व में ट्रांसजेनिक फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल तथा ट्रांसजेनिक कपास का क्षेत्रफल व उसका प्रतिशत तालिका-1 में दर्शाया गया है।

तालिका-1 :
विश्व में ट्रांसजेनिक फसलों का क्षेत्र

वर्ष	सभी फसलें (मिलियन हैक्टर)	कपास (मिलियन हैक्टर)	प्रतिशत
1996-97	2.8	0.8	29
1997-98	12.8	1.3	11
1998-99	27.8	2.5	9
1999-00	39.9	3.7	9
2000-01	44.2	5.3	12
2001-02	52.6	6.8	13

पिछले 6 वर्षों में आनुवंशिकीय अभियांत्रिकी कपास का क्षेत्र बढ़कर 6.8 मिलियन हैक्टर हो गया जो विश्व के कुल कपास क्षेत्रफल का 20% है। वर्ष 2001 में अर्जेंटीना, कनाडा, चीन तथा अमरीका में विश्व के कुल ट्रांसजेनिक फसलों के क्षेत्र का 99% था। अमरीका में अकेले कुल ट्रांसजेनिक फसलों का 68% क्षेत्र है। कुल ट्रांसजेनिक फसलों का 90% क्षेत्र अमरीका व अर्जेंटीना के अंतर्गत है तथा 9% क्षेत्र चीन व कनाडा के अंतर्गत है तथा 1% क्षेत्र अन्य नौ देशों में है। वर्ष 2001 में आनुवंशिकीय अभियांत्रिकी फसलों के 52.6 मि. हैक्टर क्षेत्र का 77% क्षेत्र शाकनाशी अवरोधी ट्रांसजेनिक फसलों के अंतर्गत था, तथा 15% क्षेत्र बी. टी. किस्मों (सभी फसलों) के अंतर्गत था। कुल ट्रांसजेनिक फसलों के 8% क्षेत्र में राशीकृत किस्मों (शाकनाशी + बी. टी.) की खेती की गयी।

सर्वप्रथम वर्ष 1996 में अमरीका में ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास की व्यावसायिक रूप से खेती की गयी। वर्तमान में ट्रांसजेनिक कपास की खेती व्यावसायिक रूप से अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया, चीन, दक्षिणी अफ्रीका, अमरीका, इंडोनेशिया व मैक्सिको में की जा रही है।

अमरीका में आशा से अधिक तेज ट्रांसजेनिक कपास लोकप्रिय हुई है। वर्ष 2001-2002 में अमरीका में कुल कपास क्षेत्रफल के 75% क्षेत्र में ट्रांसजेनिक कपास लगायी गयी। यह ट्रांसजेनिक किस्मों की उत्कृष्टता को प्रमाणित करता है। अर्जेंटीना में ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास की खेती से उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष 1998-1999 में बी.टी. कपास का क्षेत्र 4,800 हेक्टर था जो 2000-2001 में बढ़कर 23,600 हेक्टर हो गया। अर्जेंटीना में किसानों द्वारा इस प्रौद्योगिकी को अपनाने से कपास की पैदावार में वृद्धि, कपास की लागत में कमी तथा कुल आर्थिक लाभ में बढ़ोत्तरी हुई। दक्षिणी अफ्रीका में ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास की खेती वर्ष 1998-1999 से प्रारंभ हुई तथा कुल ट्रांसजेनिक क्षेत्र का 12% इसके अंतर्गत था जो 2001-2002 में बढ़कर 74% हो गया। वर्ष 2001-2002 में कुल ट्रांसजेनिक कपास क्षेत्र के 63% क्षेत्र में बी.टी. कपास तथा 11% क्षेत्र ट्रांसजेनिक शाकनाशी कपास, राउंड रेडी लगायी गयी। इस देश में NuOpal बी.टी. कपास सबसे अधिक लोकप्रिय है तथा कुल ट्रांसजेनिक कपास क्षेत्र के 55% में इसकी खेती की गयी। एक हैक्टर कपास बोने के लिए 25 किग्रा. बी.टी. कपास के बीज की आवश्यकता होती है। इसकी कीमत 60 अमरीकी डॉलर है। इस प्रौद्योगिकी को अपनाने से एक हैक्टर खेत में 60 अमरीकी डॉलर से अधिक के कीटनाशकों की बचत होती है तथा अधिक पैदावार मिलती है। चीन ने दावा किया है कि जिस ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास का विकास किया है उसमें क्राई-1 ए (सी) जीन के अतिरिक्त अन्य जीन का भी उपयोग किया गया है। वर्ष 2000-01 में चीन में ट्रांसजेनिक कपास का क्षेत्र एक मिलियन हैक्टर से अधिक था। पहले ट्रांसजेनिक कपास 'यलो रिवर बेली' क्षेत्र के लिए अनुमोदित हुई किंतु इसकी सफलता के कारण अब इन्हें हेबई व शंडोगा सूबे के लिए भी अनुमोदित कर दिया गया है। ऑस्ट्रेलिया में ट्रांसजेनिक कपास की खेती कुल कपास के 30% क्षेत्र में होती है। भारत में बी. टी. कपास की खेती का पहला वर्ष है। इस वर्ष यहां पर 42,052 हैक्टर क्षेत्र में बी. टी. कपास लगायी गयी है।

बी. टी. कपास पर अमरीका व चीन के अनुभवों को देखें तो अच्छे नतीजे सामने आये हैं। अमरीका में बी. टी. कपास उगाने से बॉलवर्म के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों के छिड़काव में 22% की कमी आयी है। चीन में 1999-2000 में किये गये सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आया कि जो किसान बी. टी. कपास की खेती कर रहे हैं उनके द्वारा कीटनाशकों के उपयोग में 55 से 16 किग्रा. फार्मूलेटिड उत्पाद/हैक्टर और छिड़काव में 20 से 7 की कमी हुई है। इससे कीटनाशकों के उपयोग में 70% की कमी आयी है।

भारत में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग से बी. टी. संकर कपास का विकास किया गया, जबकि विश्व के अन्य देशों में बी. टी. किस्में विकसित की गयी हैं। पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार की आनुवंशिक अभियांत्रिकी अनुमोदन समिति (जीईएसी) ने 26 मार्च 2002 को महाराष्ट्र संकर बीज कंपनी (महिको) द्वारा विकसित बी. टी. एम ई सी एच 184 बी. टी. एम ई सी एच 162 व बी. टी. संकरों को देश के मध्य तथा दक्षिणी कपास क्षेत्रों में खेती के लिए कुछ शर्तों के साथ जारी किया है।

वर्ष 2002-03 में बी. टी. कपास की खेती के लिए महिको-मोनसंटों बायोटेक लिमिटेड ने 1,05,000 पैकेट (प्रत्येक पैकट में 450 ग्रा. बी. टी. बीज तथा 120 ग्रा. गैर बी. टी. बीज) बाजार में बेचे हैं।

भारत में बी. टी. कपास की खेती को मंजूरी देना एक महत्वपूर्ण निर्णय है। इस नयी प्रौद्योगिकी को अपनाने से कम से कम खर्च में कपास की फसल में बॉलवर्म नियंत्रण किया जा सकेगा और कपास की पैदावार को बढ़ाया जा सकेगा। सस्ते दाम पर अधिक कपास उत्पादन के लिए यह प्रौद्योगिकी कारगर है।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

जैविक क्रम विकास के आइने में आंखें

डॉ. राज किशोर
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विद्यालय,
फैजाबाद (उ. प्र.)

पृथ्वी के समस्त भू-भाग पर पाये जाने वाले जंतु एवं वनस्पति समूहों को प्राप्त होने वाली ऊर्जा का प्रमुख स्रोत प्रकाश है। खरबों वर्ष पहले प्रारंभ हुए जैविक विकास से लेकर आज तक प्रकाश ने सभी प्रकार के कार्बनिक जीवन को ऊर्जा से ओत-प्रोत किया है और पृथ्वी पर जैवीय समय को परिभाषित किया है। पृथ्वी पर प्रकाश के पड़ने से उत्पन्न होने वाले प्रभावों में सबसे विलक्षण है - आंखों का विकास, जिसके परिणामस्वरूप जीव-जगत में दृष्टि संभव हो सकी। जीवों के विकास पर आज तक हुए अनेकानेक शोधों के बावजूद भी हमें अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका है कि जीवों में आंखें एक ही बार में अपने वर्तमान स्वरूप में विकसित हुई हैं या अनेक विकासीय चरणों में। विविध प्राणियों में आंखों की संरचना, कार्यप्रणाली, प्रकाश, संवेदनशीलता आदि से संबंधित जानकारी इस लेख में दी गयी है।

प्रख्यात जीव-विज्ञानी चार्ल्स डार्विन ने जीवों के विकास संबंधी अपने शोध में आंखों के विकास के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि विकास की संपूर्ण प्रक्रिया में आंखें एक विशेष चुनौती प्रस्तुत करती हैं। वे अति जटिल एवं पूर्णता प्राप्त अंग हैं। डार्विन का स्पष्ट विचार था कि आंखें भी प्राकृतिक वरणवाद के फलस्वरूप ही अपनी वर्तमान स्थिति तक पहुंची हैं। डार्विन द्वारा प्रस्तुत 'जीवों की उत्पति एवं विकास' संबंधी भविष्यदर्शी विचारों के बाद भी आंखों की उत्पत्ति से लेकर उनके वर्तमान स्वरूप तक पहुंचने के विषय में हमें अभी भी ऐसा बहुत कुछ जानना शेष है जिसके फलस्वरूप समस्त जीवों को आंख रूपी अनमोल रत्न प्राप्त हुए हैं।

मानव जाति के साथ-साथ अनेक कशेरुकी जीवों की उत्तरजीविता के लिए आंखें अत्यंत ही महत्वपूर्ण अंग हैं। शरीर के अन्य अंगों की भांति आंखें भी विभिन्न प्रकार के बाह्य एवं आंतरिक रोगजनकों के प्रति भेद्य एवं संवेदी होती हैं, जिनके कारण आंखों का क्रांतिक कार्य आंशिक या पूर्णरूपेण समाप्त हो सकता है और जीव की उत्तरजीविता खतरे में पड़ सकती है। आंखें अपने आप में एक ऐसे अंग का सबसे अच्छा उदाहरण हैं जिनके अंदर क्षेत्रीय रोग-प्रतिरोध क्षमता मौजूद रहती है। किसी भी जीव, विशेष रूप से मानव की उत्तरजीविता के लिए किसी भी वस्तु का सटीक एवं बहुआयामी प्रतिबिंब प्राप्त होना अति आवश्यक है। इस कार्य के लिए आंखों के उन अंगों यथा, लेंस, पुतली, परितारिका, आंतरिक कोष्ठ, कॉर्निया एवं विटरस कैविटी का अपने सही स्थान पर होना अति आवश्यक है। क्योंकि किसी वस्तु से प्राप्त प्रकाश इन्हीं संरचनाओं से होकर ही आंख के भीतर प्रवेश करता है और प्रकाशीय प्रतिबिंब न्यूरोनल रेटिना पर फोकस होता है (चित्र-1) अणु जीव विज्ञानियों ने कुछ ऐसे वंशाणुओं (जीन) को खोज निकाला है जो आंखों के विकास से संबद्ध हैं और ये जीन विभिन्न जीवों में उनकी आंखों में ही संरक्षित हैं। विकासीय जीव वैज्ञानिक इस तथ्य को समझने में लगे हैं कि एक ही जाति वृत्तीय आधार के जीवों में, चाहे वे जीवाश्म रूप में हों या वर्तमान में जीवित स्वरूप में, भिन्न-भिन्न प्रकार की आंखों का विकास किस प्रकार संभव हो सका है।

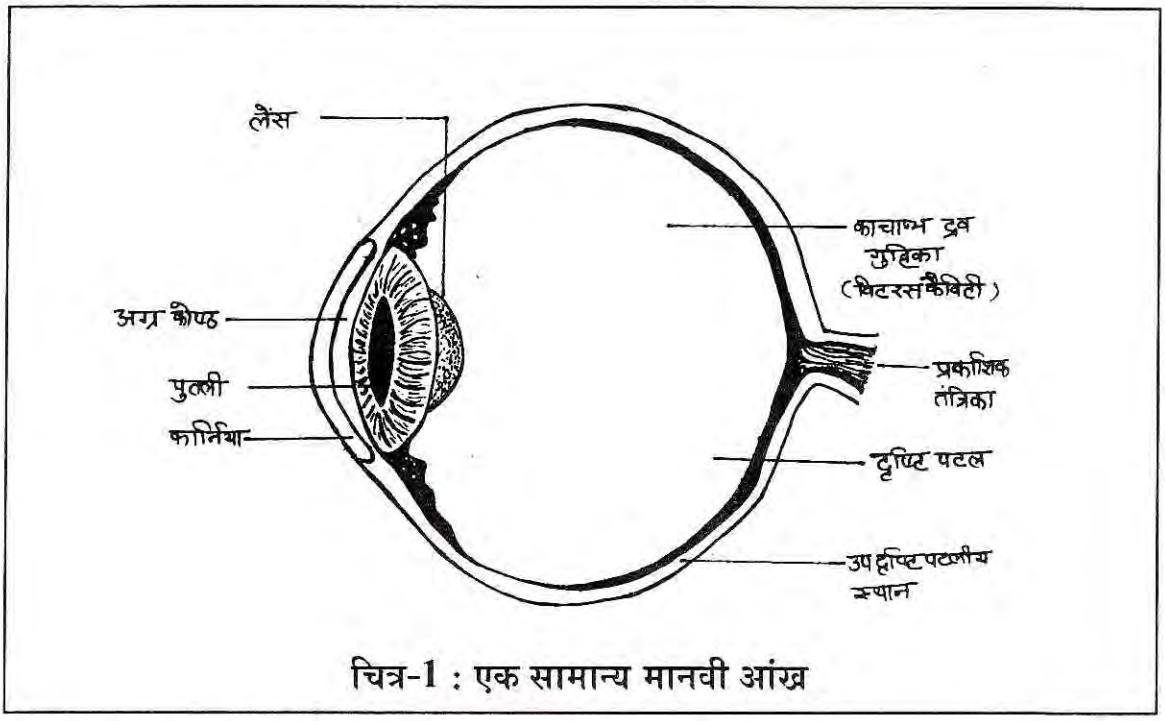

चित्र-1 : एक सामान्य मानवी आंख

हम क्या देखते हैं और क्यों देखते हैं ?

जीव जगत में मौजूद सभी प्रकार की आंखें सूर्य द्वारा उत्पन्न विस्तीर्ण स्पेक्ट्रम प्रकाशीय ऊर्जा की एक सामान्य और संकीर्ण परासवाली तरंगदैर्घ्य के प्रति सुग्राही होती हैं । ऐसा क्यों है ? हम सूर्य-स्पेक्ट्रम के अधिक भाग को क्यों नहीं देख पाते ? इस गुत्थी का सबसे संभाव्य उत्तर यह है कि जीवन का प्रादुर्भाव सबसे पहले जल में हुआ, एवं जल अपने मूलभूत प्रकृति के कारण प्रकाशीय विद्युत चुंबकीय उत्सर्जनों के दो संकीर्ण परासों को छोड़कर, शेष सभी को वापस कर देता है । चित्र-2 से स्पष्ट है कि अधिकांश जीवों के लिए दृश्य विद्युत चुंबकीय विकिरण की परास स्पष्ट रूप से निश्चित बैंड वाली होती है, जिसमें हमें संकीर्ण और कम तरंग-दैर्घ्य वाले बैंगनी रंग से लेकर बड़ी तरंगदैर्घ्य वाले लाल रंग तक मिलते हैं । सूर्य से उत्सर्जित होने वाले संपूर्ण विद्युत चुंबकीय विकिरणों से तुलनात्मक रूप से उपरोक्त तरंगदैर्घ्य काफी संकीर्ण होता है ।

जैसा कि चित्र में स्पष्ट है इस अत्यंत संकीर्ण बैंड में चुंबकीय विकिरण साथ की अन्य तरंगदैर्घ्य वाले विकिरणों की तुलना में अच्छी प्रकार जल का बेधन करता है । चूंकि पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव जल में हुआ है, और हमारे प्रारंभिक चरणों के पूर्वज भी जल से विकसित हुए माने जाते हैं, इसलिए हम पाते हैं कि उस समय के पूर्वजों द्वारा प्रकाश के लिए संकीर्ण स्पेक्ट्रम का चुनाव कर लेने से जैव-रासायनिक क्रियाओं के विकास को इन उपरोक्त रंगों के प्रति सुग्राही बना दिया । यह तथ्य सभी जंतुओं द्वारा प्रकाश के बोध एवं पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण क्रियाओं, दोनों के लिए ही सत्य है । पांच अरब वर्षों के बाद भी अब जबकि असंख्य जीव जलीय जीवन से थल जीवन को अपना चुके हैं, जहां कि सूर्य का पूर्ण स्पेक्ट्रम उपलब्ध रहता है, आंखें अब भी उसी संकीर्ण परास के प्रति सुग्राही बनी हुई हैं और थल जीवन पर यह सुग्राहिता किसी जलीय तत्त्व के कारण नहीं, बल्कि उन जैव-रासायनिक क्रियाओं के कारण है जो जीवों में एक लंबा जलीय जीवन बिताने के दौरान विकसित और सुदृढ़ हुआ और एक बार जब विकास की प्रक्रिया के दौरान किसी क्रिया विधि का

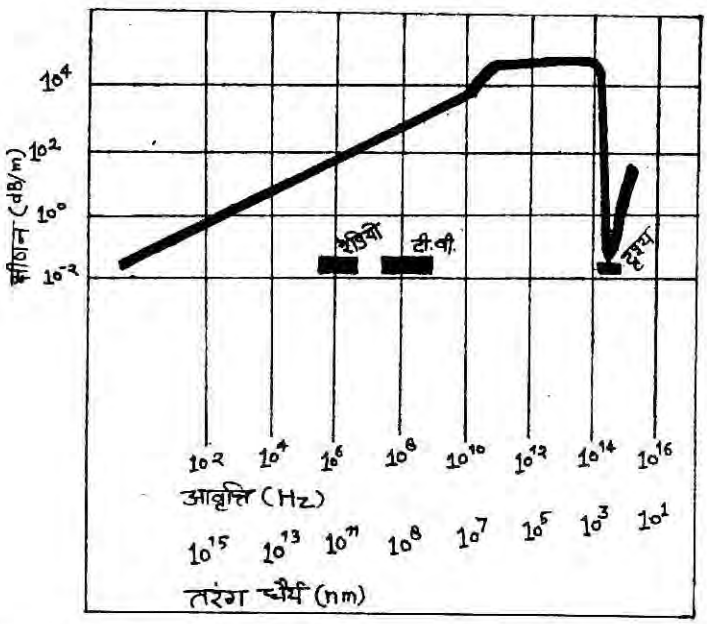

चित्र-2 : विद्युत विकिरण का समुद्री जल में क्षीणन (dB/m)

वरण हो गया तो उसने भविष्य के सारे विकल्पों पर रोक लगा दी ।

उपरोक्त प्रक्रियाओं के विपरीत यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि बहुत सी कीट-प्रजातियों, मछलियों की कुछ प्रजातियों एवं पक्षियों में पराबैगनी प्रकाश में देख सकने की क्षमता पायी जाती है । हालांकि, इन जीवों में मनुष्यों जैसी ही जैव-रासायनिक क्रियाएं होती हैं परंतु वे इन जैव-रासायनिक क्रियाओं में सूक्ष्म बदलाव लाकर ऐसा कर सकने में सक्षम हो जाते हैं जो कि हम मानव कर सकने में सक्षम नहीं हैं । एक पूर्व निर्धारित जैव-रासायनिक प्रक्रिया में कीटों, मछलियों एवं पक्षियों द्वारा अपनी सुविधानुसार यह बदलाव कर लेना अत्यंत ही महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि कम तरंगदैर्ध्य के फोटॉन में अत्यधिक ऊर्जा निहित होती है । जैसाकि चित्र-2 से स्पष्ट है विद्युत चुंबकीय विकिरण स्पेक्ट्रम के अत्यंत ही निम्न आवृति (10^3 हर्त्स) बिंदु पर जल में प्रवेश करती है जो कि अत्यंत घातक होती है । इस परास की तरंगदैर्ध्य वस्तुत: कुछ जीवों द्वारा संवेदी सूचनाएं एकत्र करने के लिए उपयोग में लायी जाती है, उदाहरणार्थ, यद्यपि अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका दोनों स्थानों में इलेक्ट्रिक फिश स्वतंत्र रूप से विकसित हुई हैं परंतु दोनों स्थानों पर पायी जाने वाली इलेक्ट्रिक फिश की प्रजातियां धुंधले पानी में, जहां सामान्यत: देखने की प्रक्रिया संभव नहीं हो पाती है, वहां अपनी प्रजातियों के बीच प्रजनन एवं अन्य महत्वपूर्ण दैनिक क्रियाओं के लिए कम आवृत्ति की विद्युत तरंगों का उपयोग करती हैं ।

आंखों का विकास और क्रियाविधि :

आंखों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने वातावरण (परिवेश) से प्रकाश प्राप्त करें, उसे चित्रों के रूप में स्थिर करें, तदुपरांत उन्हें संकलित करके मस्तिष्क को प्रेषित कर दें । आंखों के विकास की प्रक्रिया प्रकाश के भौतिक गुणों से काफी हद तक प्रभावित हुई है परंतु फिर भी आंखों के कार्य-संपादन के बारे में विज्ञान-जगत को काफी जानकारी प्राप्त हो चुकी है । प्रकाश एक सीधी रेखा में चलता है, परावर्तित हो सकता है और

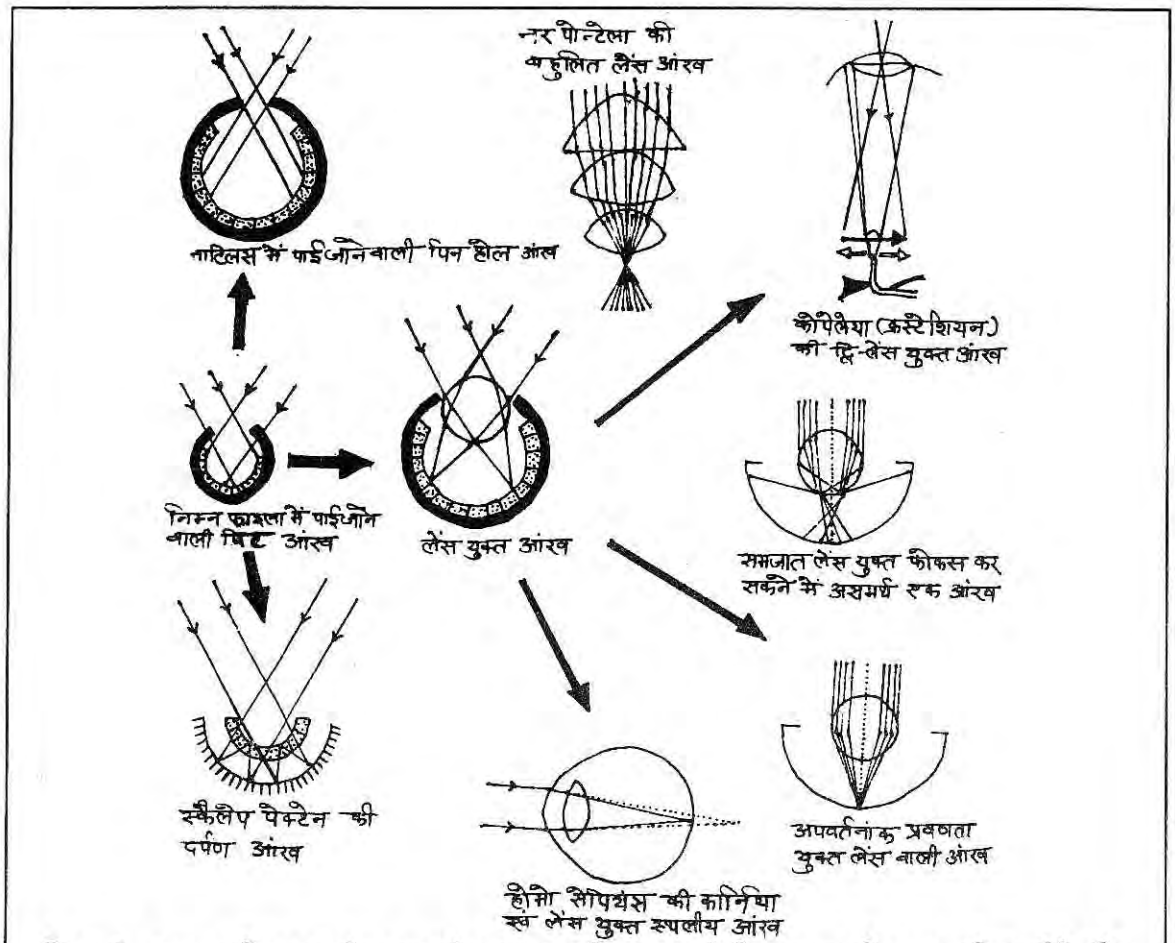

चित्र-3 : एक कक्षिका आंख का संभाव्य क्रम विकास एवं क्रियात्मक विकास को दर्शाते तीर

उसकी तरंगदैर्ध्य और तीव्रता बदलती रहती है। संरचनात्मक सिद्धांतों एवं दृष्टव्य खामियों में से बहुत सी कमियां हमें जीव-जगत में मौजूद वर्तमान आंखों में देखने को मिलती हैं और ये सभी कमियां प्रकाश के भौतिक गुणों के दबाव के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं।

कैंब्रियन युग (570-500 करोड़ वर्ष पूर्व) के जीवों में आंखें एक आई-कप के रूप में पायी जाती थीं जो प्रकाश का भान तो कर सकती थीं, परंतु वे दिशा संबंधी सूचनाओं को संसाधित कर सकने में असमर्थ थीं। क्रैंब्रियन युग के दौरान ही जीवों के विकास का 'बिग बैंग' घटित हुआ जिसके फलस्वरूप आंखों के उक्त स्वरूप में मौलिक परिवर्तन हुआ और वे मांसाहारी या परभक्षिता मूलक जीवों के बाह्य स्वरूप के अनुरूप विकसित हो गयीं। नेत्रिका संरचनाओं का विकास दो चरणों में आगे बढ़ा (चित्र-3)। प्रथम चरण में साधारण नेत्रिका बिंदुओं (आई स्पाट्स) की उत्पत्ति हुई, जिनमें वर्णकों को विश्लेषित करने वाले ग्राही कम संख्या में थे। ये संसूचक प्रकाश के प्रतिमान की पहचान करने में कोई भूमिका अदा कर सकने में सक्षम नहीं थे, परंतु उजाले और अंधेरे का भेद कर सकने में सक्षम एवं उपयोगी थे। आंखों के दूसरे चरण के विकास में इनमें प्रकाशिक तंत्र का विकास हुआ और विकसित होकर यह तंत्र नेत्रिका संरचनाओं में जुड़ गया, जिसके फलस्वरूप आंखें प्रतिबिंब बनाने में सक्षम हो गयीं। इस प्रकार

वर्तमान में छः फाइला के लगभग 96 प्रतिशत ज्ञात प्रजातियों में प्रतिबिंब बनाने के लिए कम से कम ग्यारह विभिन्न प्रकार की प्रकाशिक विधियां पायी गयी हैं और इनमें से वर्ष 1995 में खोजी गयी 'टेलीफोटोलेंस' विधि सबसे नवीनतम है, जो गिरगिट में पायी गयी है। इन सभी ग्यारह प्रकाशिक विधियों में से छः विधियां पिछले 25 वर्षों में खोजी गयी हैं।

चूंकि कैमरा-टाइप आंखें व्यावहारिक स्तर पर कई कारणों से श्रेष्ठ होती हैं, तो क्यों नहीं सभी ज्ञात प्राणियों में इस प्रकार की आंखों का विकास हो सका ? अनेक अन्वेषणों एवं अध्ययनों के बाद यह तथ्य सामने आया कि कैमरा-टाइप आंखों के लिए बड़े सिर युक्त, बड़े शरीर की आवश्कता होती है, और यदि सभी प्राणी इस विकासीय मार्ग का अनुसरण करते तो पृथ्वी पर प्राणियों की संख्या काफी कम रह जाती। इसी के साथ यह भी तथ्य महत्वपूर्ण है कि किसी प्राणी द्वारा किसी एक प्रकार की आंखों का विकास कर लेने के पश्चात् उस आंख को कैमरा-टाइप आंखों में परिवर्तित करने के लिए उस प्राणी को विकास के बीच के अन्य चरणों से गुजरना पड़ता, जो उस प्राणी के लिए और भी व्यर्थ या अनुपयोगी सिद्ध हो सकता था।

वर्ष 1994 में निलसन एवं मोडलिन वैज्ञानिकद्वय ने एक माइसिड श्रिम्प (डायप्टरोमाइसिस पासीस्पाइनस) की खोज की, जिसमें एक ऐसी आंख पायी गयी जो साधारण और संयुक्त आंख का एक संयुक्त रूप थी। श्रिम्प की यह आंख किसी कीड़े की आंख की भांति बहुआयामी फलक वाली आंशिक संयुक्त और आंशिक साधारण आंख थी। यह आंख आंशिक साधारण इस आधार पर है कि मनुष्य की आंख की भांति यह कोई भी प्रतिबिंब ग्राहिकाओं की एक शीट पर फोकस करती है। श्रिम्प लगभग पांच मिमी लंबे होते हैं जिनमें लगभग बेलनाकार आंखें पायी जाती हैं। श्रिम्प में साधारण और संयुक्त, दोनों प्रकार की आंखों के एक साथ पाये जाने की उक्त खोज से वैज्ञानिकों के समक्ष यह प्रश्न खड़ा हो गया कि विकास की किस प्रक्रिया या विकास के किस पथ द्वारा ऐसा संभव हो सका।

आंखें फोटॉनों को किस प्रकार ग्रहण करती हैं ?

वातावरण से दृष्टव्य सूचनाएं विशिष्ट प्रकाशग्राही कोशिकाओं द्वारा पहचानी एवं संग्रहीत की जाती हैं। ये प्रकाश ग्राहिकाएं एक शीट में स्थित होती हैं जो आंखों के पिछले भाग को ढके रहती हैं। ये कोशिकाएं रेटिना का एक हिस्सा होती हैं, जो दृष्टव्य सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाने के लिए जिम्मेदार होते हैं। इन प्रकाश ग्राहिकाओं में दो अणु होते हैं जो एक साथ क्रियाशील होकर फोटॉन को संकलित करते हैं, ये अणु 'आपसिन' के नाम से जाने जाते हैं। 'आपसिन' एक प्रोटीन होता है, जो एक झिल्ली में एक अन्य चाक्षुष वर्णक 'क्रोमोफोर' (11-सिस-रेटिनल) के साथ सटा हुआ स्थित होता है (चित्र-4)। जैसे ही क्रोमोफोर द्वारा कोई फोटॉन अवशोषित किया जाता है, यह एक डबल बॉन्ड के चारों ओर घूमता हुआ लंबाई में 5 आंग्स्ट्राम बढ़ जाता है। इस आंशिक रूपांतरण के द्वारा क्रोमोफोर आपसिन को एन्जाइमिक रूप से क्रियाशील कर देता है, जिसके परिणामस्वरूप बाह्य झिल्ली पर विद्युत प्रवाह में कमी आ जाती है। इस संपूर्ण पारस्परिक क्रिया का परिणाम यह होता है कि फोटॉन ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है जिसके फलस्वरूप तंत्रिका तंत्र उसकी व्याख्या कर सकने में सक्षम हो जाता है।

आपसिन सात ट्रांसमेंब्रेन हैलिक्स से बनी संरचनाएं होती हैं जिनके दोनों सिरों पर छोटे-छोटे लूप होते हैं। रेटिनल क्रोमोफोर आपसिन से सातवें ट्रांसमेंब्रेन से एक स्थान पर सहसंयोजक रूप से जुड़े होते हैं। कशेरुकी, कीटों और ऑक्टोपस, जिनकी पूर्वज परंपरा कैंब्रियन युग में विभक्त हो गयी थी, में पाये जाने वाले आपसिन अणुओं के कई विशेष क्षेत्रों में समजातता पायी जाती है। यह समजातता यह इंगित करती है कि फोटॉन के आरंभिक अवशोषण के लिए जिम्मेदार अणु के स्वरूप में क्रमिक विकास के दौरान विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप भी परिवर्तन हुए हैं।

जीवों की विभिन्न प्रजातियों की आंखों में विद्यमान आपसिन के अध्ययन से वैज्ञानिकों को उल्लेखनीय सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। विकासीय सूचना प्राप्त होने का

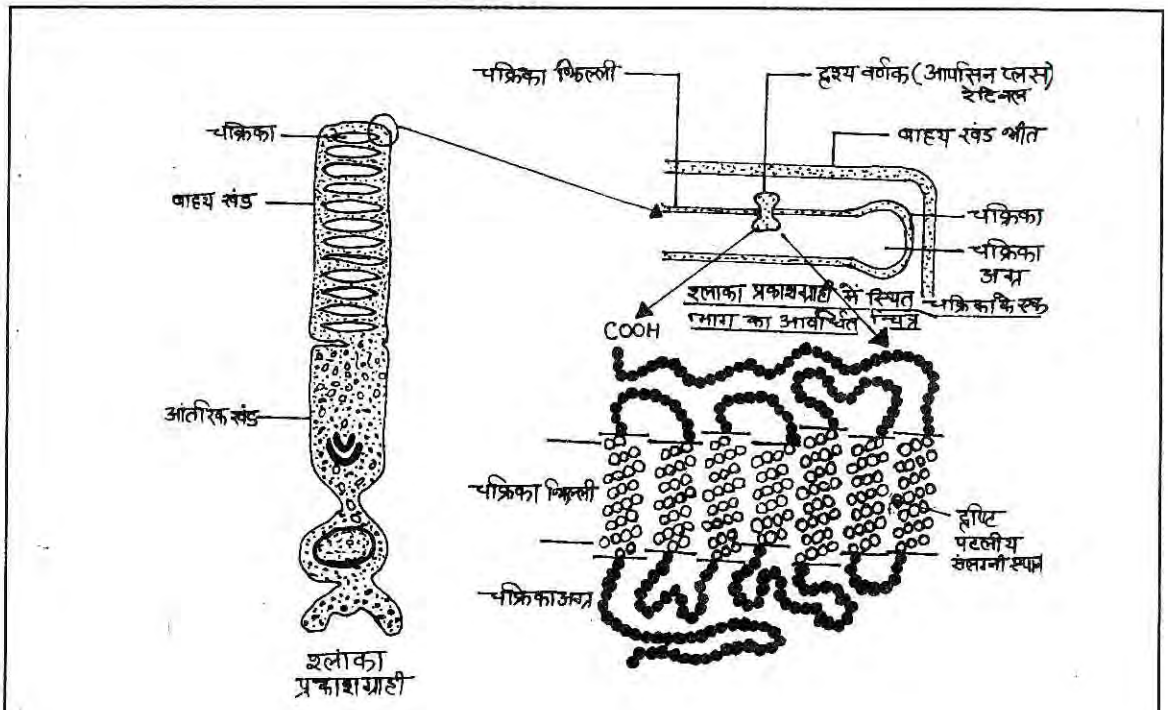

चित्र-4 : दृश्य वर्णक-आपसिन प्लस रेटिनल का एक व्यवस्था निदर्श-चित्र

एक स्रोत वर्ण दृष्टि का विकास है । जीव-जंतुओं में वर्ण-दृष्टि होने के कई लाभ हैं, यथा, भोज्य पदार्थों, जीवन-साथी एवं शत्रुओं की स्पष्ट एवं परिष्कृत पहचान । विभिन्न रंगों की पहचान के लिए जीव-जंतुओं में ऐसे प्रकाशग्राही होने आवश्यक थे, जो विभिन्न तरंगदैर्ध्य वाले प्रकाश के प्रति सुग्राही हों । यह आपसिन अणु के ऐसे आंशिक परिवर्तों के विकास से संभव था, जो एमीनो अम्लों के कुछ विशेष स्थानों में अंतर को अतिन्यून करके क्रोमोफोर को किसी विशेष तरंगदैर्ध्य को अवशोषित करने के योग्य तैयार कर सकें । क्रमिक विकास की ये घटनाएं विस्तृत जातिवृत्तीय तुलनाओं की अनुमति देती हैं और यह इंगित करती हैं कि कशेरुकी में विद्यमान विभिन्न दृश्य वर्णकों का विकास कम से कम पांच विभिन्न वंशक्रमों में हुआ ।

आंखों के लेंस की उत्पत्ति :

कशेरुकी आंखों का विकास विविध प्रकार के भ्रूणीय स्रोतों के संग्रह द्वारा अनुमानकारी घटनाओं के एक जटिल समुच्चय द्वारा हुआ, जबकि न्यूरल रेटिना डाईइनसिफेलान द्वारा व्युत्पन्न हुई है और मस्तिष्क का हिस्सा है । आंखों के लेंस सतह बाह्य त्वचा द्वारा निर्मित हैं और परितारिका तथा पलकों के बाल प्राथमिक रूप से तंत्रकीय शिखर द्वारा उत्पन्न हुए हैं । कशेरुकी प्राणियों की आंखों के लेंस ऐसी संशोधित उपकला कोशिकाओं से बने होते हैं, जिनमें क्रिस्टलीन नाम की एक घुलनशील, प्रोटीन अत्यधिक मात्रा में पायी जाती है और वह व्यवस्थित क्रम में भरी हुई होती है । कशेरुकी प्राणियों के लेंसों में परिधि से लेंस के केंद्र तक इन प्रोटीनों की आपेक्षित सांद्रता में होते रहने वाला परिवर्तन ही अपवर्तनांक प्रवणता उत्पन्न करता है, जो कि किसी जीव के लिए लेंस के उपयोगी बने रहने के लिए अति आवश्यक है । किसी लेंस के लिए उपयोगी एवं कार्यशील बने रहने के लिए रेडियस में प्रोटीन की सांद्रता का वितरण एक आवश्यक प्रक्रिया है । अत: लेंस के संपूर्ण क्रिया-कलापों को समझ सकने की चुनौती इस तथ्य में छुपी है कि

किसी लेंस प्रोटीन के वितरण की प्रक्रिया किस प्रकार स्थापित हुई और किस प्रकार इसकी निरंतरता को बनाये रखा जाता है ।

लेंस में पायी जाने वाली अब तक ज्ञात ग्यारह क्रिस्टलीन्स में से केवल तीन - α, β एवं γ क्रिस्टलीन्स ही सभी कशेरुकी में सार्वलौकिक होती हैं । वस्तुतः अभी हाल तक, उक्त सभी क्रिस्टलीन्स को अलग-अलग लेंस ऊतक के लिए विशिष्ट समझा जाता था और यह भी माना जाता था कि हर क्रिस्टलीन किसी कार्य-विशेष के लिए ही विकसित हुई है ।

हर क्रिस्टलीन के अलग-अलग विशिष्ट कार्य होने के बावजूद भी अधिकांश क्रिस्टलीन न तो किसी लेंस विशेष के लिए होती हैं और न ही संरचनात्मक प्रोटीन होते हैं । इन लेंस क्रिस्टलीन के दो मुख्य समूह होते हैं - प्रथम वे क्रिस्टलीन्स जो सभी कशेरुकियों में पायी जाती है और द्वितीय वे क्रिस्टलीन्स जो किसी टैक्सान के लिए विशिष्ट होती है । उदाहरणार्थ, मगर एवं पक्षियों की कुछ प्रजातियों में ग्लाकोलाइटिक एन्जाइम लैक्टेट डिहाड्रोजिनेज बी एक प्रमुख लेंस प्रोटीन है । तो भी, टैक्सान विशिष्ट आठ क्रिस्टलीन्स में से चार क्रिस्टलीन प्रोटीन उपापचयी एन्जाइम के सदृश होती हैं । और एक ही जीन द्वारा उत्पादित होती हैं ।

सभी कशेरुकी प्राणियों के लेंसों के निर्माण में एन्जाइम का उपयोग क्यों किया जाता है, यह प्रश्न वैज्ञानिकों को उलझन में डाले रहता है । एक मत के अनुसार संभवतः एन्जाइम उत्पादन का दृढ़ नियंत्रण लेंसों के निर्माण के लिए काम में आने वाले प्रोटीन के भरपूर उत्पादन में सहायक सिद्ध होता है । स्किवड की आंखों के लेंसों के निर्माण में पाया जाने वाला प्रोटीन लगभग पूर्णरुप से ग्लूटाथियोन एस-ट्रांसफरेज एन्जाइम होता है । विभिन्न प्रोटीनों की मदद से लेंसों के निर्माण के सार्वलौकिक कौशल का पालन करना एक अभिसारी विकासीय साधन प्रतीत होता है । हालांकि, अभी भी बहुत से कारण समझ से परे हैं ।

नेत्र : समाभिरूपता या समजातता :-

क्या विभिन्न जीवों में विद्यमान आंखों में संरचनात्मक एकरूपता विकासीय समाभिरूपता के कारण पायी जाती है जो कि किसी समजात पूर्वज में एक समान वरण के प्रभावों के कारण उत्पन्न हुई थी ? लेकिन विभिन्न जीवों के आंखों का यदि तुलनात्मक अध्ययन करें तो ऐसी कोई विशिष्टता मिल पाना कठिन होगा, क्योंकि प्रकाश को नियंत्रित करने वाले भौतिक नियमों ने नेत्रों के निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव डाला है । एक-दूसरे से किसी भी प्रकार से संबद्ध नहीं रहने वाले जीवों में भी एक समान नेत्र संरचनाओं का विकास केवल प्रकाश द्वारा डाले गये प्रभावों एवं दबावों के कारण ही संभव हो सका है ।

विकासीय समाभिरूपता का सबसे अच्छा एवं प्रचलित उदाहरण है स्किवड और मछलियों की आंखें । इन दोनों की आंखें 'कैमरा-टाइप' होती हैं जिनमें कोई भी प्रतिबिंब प्रकाश सुग्राही रेटिना पर बनता है । इसके साथ फोटॉन को तंत्रकीय ऊर्जा में परिवर्तित करने के लिए दोनों ही जंतुओं में आंखें समान रूप से प्रकाश सुग्राही अणु ऑपसिन का उपयोग करती हैं । मछलियों एवं स्किवड में रेटिना 'इनवर्स' टाइप होती है लेकिन मछलियों एवं स्किवड, दोनों में नेत्रों के विभिन्न भागों का बिल्कुल भिन्न-भिन्न स्रोतों से निर्माण होना यह दर्शाता है कि उक्त दोनों जीवों में नेत्रों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न है ।

काफी समय पूर्व से तीन मुख्य फाइला - कशेरुकी, आर्थोपोडा एवं मोलस्का में युग्मित आंखों (चित्र-5) का पाया जाना विकासीय समाभिरूपता का एक अत्युत्तम उदाहरण माना जाता था । सैद्धांतिक स्तर पर यह सत्य भी है, क्योंकि इन तीनों फाइला के जीवों में आंखों का विकास भिन्न-भिन्न ऊतकों द्वारा हुआ, परंतु उन्होंने प्राप्त होने वाले प्रकाश का संग्रह करना और उसे फोकस करने की समस्या को हल करने के लिए एक समान हल ढूंढा । इन सभी फाइला में आपसिन के डीएनए सीक्वेंस में विशिष्ट समजातता देखने को मिलती है । इस प्रकार इन फाइला के अंतर्गत आने वाले जीवों के नेत्रों में समान आणविक घटक पाये जाते हैं, चाहे वह आपसिन हो या पैक्स-6 (एक समजात 'मास्टर जीन') हो, या फिर अन्य कोई ।

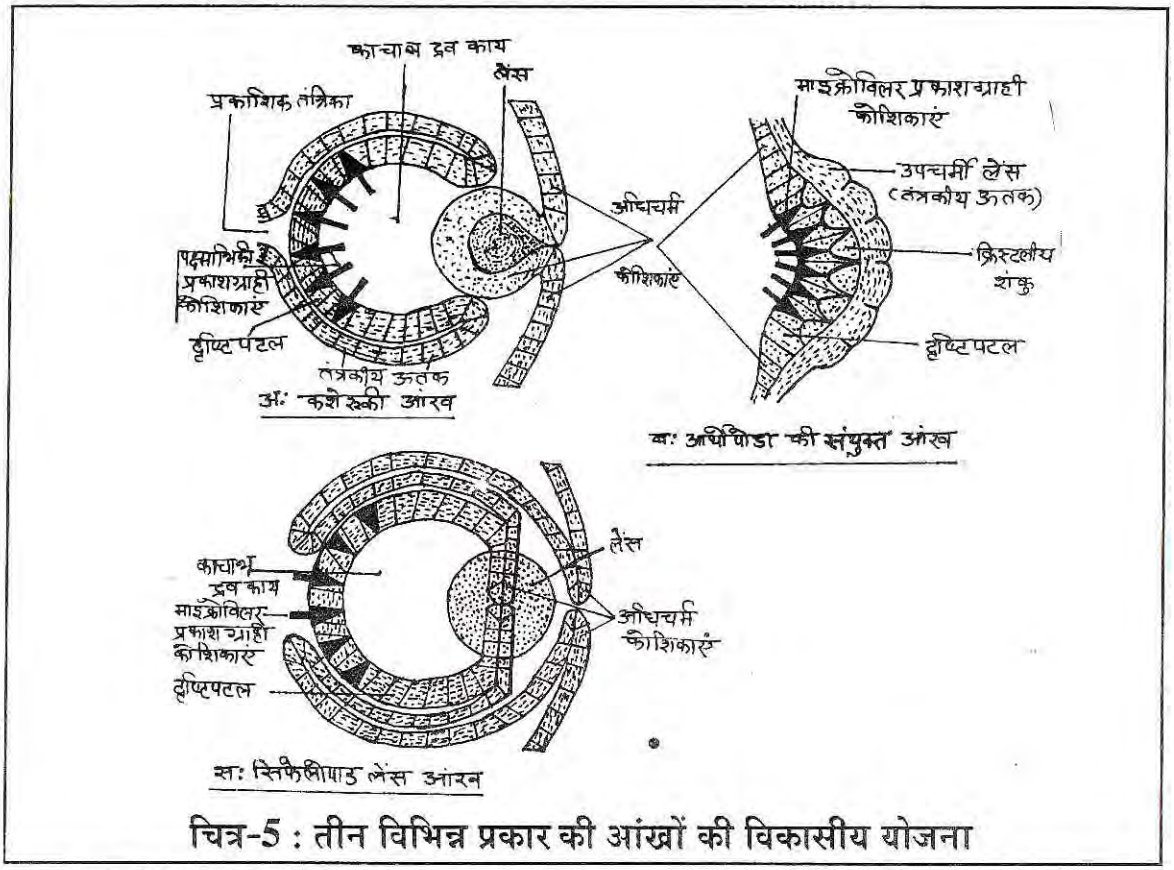

चित्र-5 : तीन विभिन्न प्रकार की आंखों की विकासीय योजना

आंखें विभिन्न आकृतियों, आकारों एवं विभिन्न प्रकाशिक अभिकल्पों में पायी जाती हैं और अलग-अलग प्राणियों की शारीरिक आवश्यकतानुसार शरीर में विभिन्न अवस्थितियों पर उनकी जगह निर्धारित होती है। परंतु सभी प्रकार की आंखों द्वारा अपने धारक प्राणी को प्रकाश के तरंगदैर्ध्य और उसकी तीव्रता के विषय में सूचना देने का कार्य समान रूप में एक होता है। भिन्न-भिन्न फाइला में लेंस और रेटिना के निर्माण के लिए यद्यपि अलग-अलग ऊतक का उपयोग किया जाता है परंतु सभी प्रकार की आंखें फोटॉनों का अवशोषण करने हेतु, एक समान क्रिया-विधि का सहारा लेती हैं। अति शक्तिशाली आणविक तकनीकों की सहायता से नवीनतम जानकारियां उपलब्ध होने के बावजूद भी अभी तक ज्ञात सभी तथ्य यही इंगित करते हैं कि आंखों की उत्पत्ति प्रोफाइलेटिक है और उनमें समजात अणु पाये जाते हैं जो उनकी संरचनात्मक, क्रियात्मक और यहां तक कि विकासात्मक लक्षणों के लिए जिम्मेदार हैं।

विभिन्न जातिवृत्तीय जीवों की आंखों के अणुओं में अनेक समजात जीन मौजूद रहने के बावजूद वैज्ञानिकों के सामने यह चुनौती एक यक्ष प्रश्न की भांति खड़ी है कि ड्रासोफिला, स्किवड एवं चूहों की आंखें परस्पर एक-दूसरे से इतनी भिन्न क्यों होती हैं। चूंकि समजात विकास प्रक्रम से समजात रचनाएं ही उत्पन्न होती हैं परंतु समजात विकास प्रक्रम से असमजात आंखें उत्पन्न होने के प्रक्रम का मुख्य कारक अभी तक अज्ञात है। वह कौन सा प्रक्रम या कौन सा कारक है जो विभिन्न जीवों की आंखों को एक-दूसरे से भिन्नता प्रदान करता है, यह समझ सकना वैज्ञानिकों के लिए वर्तमान में एक बड़ी चुनौती है।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टर की प्रचालन अवधि को बढ़ाने में सहायक "इन्टिग्रेटेड गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशिनिंग सिस्टम"

बॉबी सूर्यनारायण वेदुला गुरुमुर्ति शर्मा
रिएक्टर इंजीनियरी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - ४०० ०८५.

भारतीय प्रथम पीढ़ी के 220 मेगावाट (विद्युत) क्षमता वाले दाबित भारी-पानी रिएक्टरों (Pressurised Heavy Water Reactor) के केंद्रीय भाग में जिसको कि 'कोर' कहते हैं, जिर्कालॉय (Zircalloy) की बनी 306 शीतलक चैनल होती हैं। शीतलक चैनल में मुख्यत: दो नलिकाएं होती हैं। अंदर की नली को प्रैशर ट्यूब तथा बाहर की नली को कैलेंड्रिया ट्यूब (Calendria Tube) कहते हैं। इन दोनों नलियों के बीच चूड़ियों के आकार की जिर्कालॉय की बनी गार्टर स्प्रिंग पूर्व निर्धारित स्थानों पर प्रैशर ट्यूब के ऊपर रखी होती हैं, जो कि स्पेसर का काम करती है। इनका (गार्टर स्प्रिंग) काम प्रैशर ट्यूब एवं कैलेंड्रिया ट्यूब को एक दूसरे के संपर्क में आने से बचाना है। भारत के राजस्थान परमाणु बिजलीघर की इकाई-1 से लेकर काकरापार परमाणु बिजलीघर की इकाई-1 तक ये गार्टर स्प्रिंग ढीली वृति की हैं, जो कि रिएक्टर के परिचालन के समय शीतलक चैनल में उत्पन्न कंपन की वजह से अपनी निर्धारित जगहों से हटकर दूसरे स्थानों पर खिसक जाती हैं। इन गार्टर स्प्रिंगों को वापस अपनी जगहों पर लाना रिएक्टर के संचालन कार्यकाल की अवधि एवं सुरक्षा की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य हो जाता है। चूंकि शीतलक चैनल दोनों सिरे से बंद होती हैं, इन गार्टर स्प्रिंगों को अपनी जगहों पर वापस लाना बड़ा ही मुश्किल काम होता है। भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई के रिएक्टर इंजीनियरी प्रभाग ने विशेष अनुसंधान करके एक ऐसे औजार एवं तकनीक का विकास किया है, जिसकी सहायता से अपने निर्धारित स्थानों से हटी हुई गार्टर स्प्रिंग को पुन: अपनी जगहों पर प्रस्थापित किया जा सकता है, जिसकी वजह से रिएक्टर के संचालन कार्यकाल की अवधि बढ़ती है। इस विशेष औजार का नाम इंटिग्रेटेड गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशिनिंग सिस्टम (Integrated Garter Spring Repositioning System) है, जिसे संक्षेप में इंग्रेस (Ingres) कहते हैं। इंग्रेस का विकास अपने आप में एक विशेष उपलब्धि है, जिसका विवरण लेख में संक्षिप्त रूप में दिया गया है।

भारतीय प्रथम पीढ़ी के 220 मेगावाट (विद्युत) क्षमता वाले दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टरों में प्राकृतिक यूरेनियम ईंधन को बंडल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। रिएक्टर के संचालन के समय नियंत्रित नाभिकीय प्रतिक्रिया की वजह से ईंधन-बंडल में ऊष्मा निर्मित होती रहती है, जिसे दाबित भारी-पानी शीतलक की सहायता से लगातार निष्कासित किया जाता है। भारी-पानी शीतलक को प्राथमिक ऊष्मा प्रवाहक पंपों के द्वारा शीतलक चैनल एवं भाप जनित्र (स्टीम जनरेटर) में से लगातार प्रवाहित किया जाता है। इसके फलस्वरूप

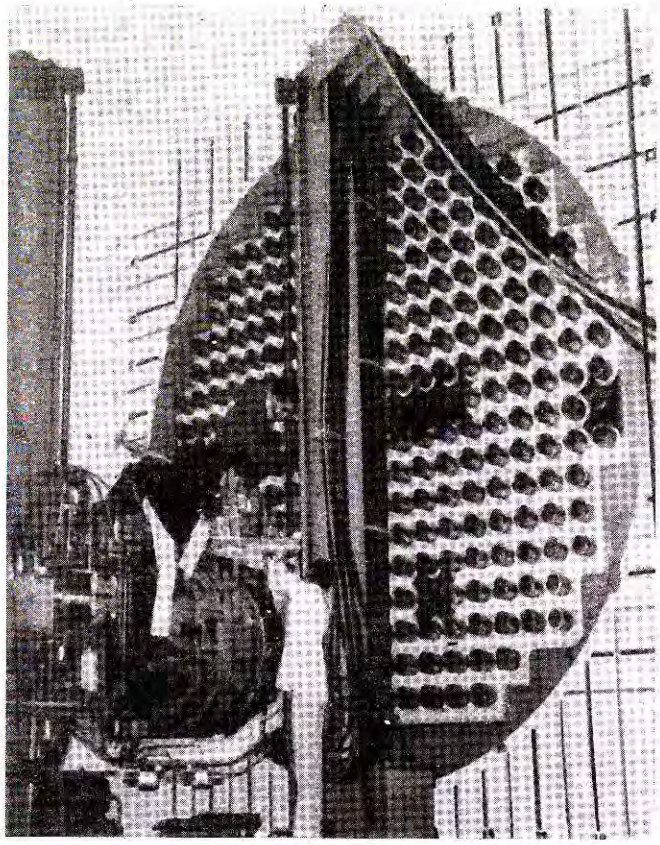

चित्र-1 : भारतीय दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टर के 'कोर' का चित्र

जब, दाबित भारी-पानी शीतलक ईंधन के बंडल पर से गुजरता है तब उसका तापक्रम बढ़ता है, तथा जब वह भाप जनित्र में से होते हुए गुजरता है, तब कम हो जाता है । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ईंधन बंडल अपनी ऊष्मा, दाबित भारी पानी शीतलक को देकर स्वयं को ठंडा रखता है । दाबित भारी-पानी इस प्रक्रिया में शीतलक की ऊष्मा बढ़ाता है । भाप जनित्र में जब यह गर्म दाबित भारी-पानी शीतलक पहुंचता है, तब भाप जनित्र के दूसरी ओर से आने वाला हल्का पानी शीतलक जो कि दाबित भारी-पानी शीतलक की तुलना में काफी ठंडा होता है, दाबित भारी-पानी शीतलक की ऊष्मा को शोषित कर के भाप में परिवर्तित हो जाता है । इस भाप से टरबाईन को चलाते हैं, तथा उससे लगे हुए विद्युत जनरेटर (Alternator) से बिजली पैदा हो जाती है । नाभिकीय रिएक्टर की नाभिकीय प्रतिक्रिया को रिएक्टिविटी मैकेनिज्म की सहायता से नियंत्रित किया जाता है । ईंधन मशीन (Fuelling machine) की सहायता से नवीन ईंधन-बंडलों को रिएक्टर की दाब नलिकाओं के अंदर प्रविष्ट किया जाता है, तथा पुरानों को बाहर निकाला जाता है । कैलेंड्रिया में कम तापमान का भारी-पानी होता है जिसे मंदक (मॉडरेटर) कहते हैं, जो नाभिकीय प्रतिक्रिया के दौरान निर्मित तीव्र न्यूट्रॉन की गति को धीमी कर नाभिकीय प्रतिक्रिया को बनाये रखने में सहायता करता है । चित्र-1 में दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टर के 'कोर' को दिखाया गया है जिसमें ईंधन मशीन भी दिखाई दे रही है ।

शीतलक चैनल की संरचना :

चित्र-2 में शीतलक चैनल को रेखा चित्र के रूप में दर्शाया गया है। 220 मेगावाट (विद्युत) क्षमता वाले दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टरों में शीतलक चैनल की लंबाई करीबन 9300 मिली मीटर होती है। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, दाबित नलिका (प्रैशर ट्यूब) में ईंधन-बंडल रखे होते हैं जिस पर दाबित भारी-पानी शीतलक का प्रवाह किया जाता है। शीतलक चैनल के दोनों ओर जहां से दाबित भारी-पानी शीतलक को भेजा तथा बाहर लाया जाता है एंड फिटिंग्स होती हैं, जो कि एंड शील्ड पर बिठाई होती हैं। एंड शील्ड का काम रिएक्टर में निर्मित रेडियोधर्मी किरणों को बाहर आने से रोकना तथा उनकी तीव्रता को कम करना है। ऐसी कुल 360 शीतलक चैनल, कैलेंड्रिया वैसल पर जो कि लगभग साढ़े तीन मीटर व्यास का धातु का बना पात्र है, लगी रहती हैं। इस कैलेंड्रिया वैसल में भारी-पानी जिसका कि तापमान रिएक्टर संचालन के समय लगभग 60 डिग्री सेंटीग्रेड से आसपास रहता है, मंदक कहलाता है। मंदक का काम नियंत्रित नाभिकीय प्रतिक्रिया को बनाये रखने में सहायता करना है। दाब नलिका के बाहरी ओर कैलेंड्रिया ट्यूब होती है, तथा इन दोनों नलियों (प्रैशर ट्यूब व कैलेंड्रिया ट्यूब) के बीच गार्टर स्प्रिंग पूर्व निर्धारित स्थानों पर रखी होती है। रिएक्टर के संचालन के दौरान ईंधन-बंडल में ऊष्मा उत्पादित होती है जिसे दाबित भारी-पानी शीतलक द्वारा निष्कासित किया जाता है।

शीतलक चैनल की संचालित कार्यविधि में कमी होने के कारण :

दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टर के संचालन के दौरान दाबित नलिकाओं में उच्च तापक्रम पर भारी-पानी एवं जिर्कोलॉय की प्रतिक्रिया होती रहती है तथा हाइड्रोजन गैस का निर्माण होता रहता है। इस हाइड्रोजन का दाबित नलिकाओं में अवशोषण होता रहता है, जिससे उनमें हाइड्रोजन के संकेद्रण में निरंतर बढ़ोत्तरी होती रहती है। जैसे-जैसे रिएक्टर पुराना होता जाता है दाबित नलिकाओं में हाइड्रोजन के संकेद्रण की मात्रा अधिकाधिक होती जाती है। दाबित नलिकाओं के हाइड्रोजन की अत्यधिक संकेद्रण की मात्रा शीतलक चैनल की आयुसीमा को कम करती है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो शीतलक चैनल की आयुसीमा दाबित नलिकाओं के हाइड्रोजन के संक्रेदण अथवा शोषण पर निर्भर करती है। अगर किसी कारणवश प्रैशर ट्यूब एवं कैलेंड्रिया ट्यूब में भौतिक संपर्क स्थापित होता है तब उस संपर्क जगह पर तापक्रम कम हो जाता है क्योंकि कैलेंड्रिया ट्यूब का तापक्रम प्रैशर ट्यूब के तापक्रम की तुलना में काफी कम होता है। संपर्क स्थान पर दाबित नलिका में शोषित हाइड्रोजन, उच्चतम तापक्रम से निम्न तापक्रम अर्थात कैलेंड्रिया ट्यूब की ओर से जाने लगती है। अगर यह संपर्क अधिक समय तक रहा तो प्रैशर ट्यूब में हाइड्रोजन फफोले (Blister) पड़ जाते हैं जिसे तकनीकी भाषा में हाइड्राईड ब्लिस्टर कहते हैं जो कि शीतलक चैनल में हानिकारक विसंगतियां निर्माण करते हैं एवं उसकी कार्यावधि को कम कर सकते हैं। इसी कारण से रिएक्टर के संचालन के दौरान प्रैशर ट्यूब एवं कैलेंड्रिया ट्यूब के भौतिक संपर्क को दीर्घ काल तक किसी भी अवस्था में नहीं होने दिया जाता।

प्रैशर ट्यूब में उच्चतम तापमान, ईंधन का बोझ, शीतलक का दबाव, एवं न्यूट्रॉन की बहुतायत होने से रिएक्टर के परिचालन के दौरान उसकी लंबाई में लगातार वृद्धि होती रहती है, तथा उसका झुकाव (Sag) बढ़ता जाता है। इस प्रक्रिया को रेडियेशन क्रीप (Radiation creep) कहते हैं। चूंकि कैलेंड्रिया ट्यूब में उच्चतम तापमान, ईंधन का बोझ, शीतलक का दबाव आदि नहीं होता इससे रेडियेशन क्रीप के कारण हुआ झुकाव प्रैशर ट्यूब में हुए झुकाव की अपेक्षा काफी कम होता है। परिणामस्वरूप प्रैशर ट्यूब-कैलेंड्रिया ट्यूब के संपर्क की संभावना (ज्यों-ज्यों रिएक्टर की अवधि बढ़ती जाती है) बढ़ती जाती है। गार्टर स्प्रिंग, प्रैशर ट्यूब एवं कैलेंड्रिया ट्यूब को एक दूसरे के संपर्क में आने से रोकती है बशर्ते वे अपने मूल निर्धारित स्थानों पर टिकी हों। लेकिन जैसा कि बताया गया है रिएक्टर परिचालन के दौरान शीतलक चैनल में पैदा हुए कंपन की वजह से

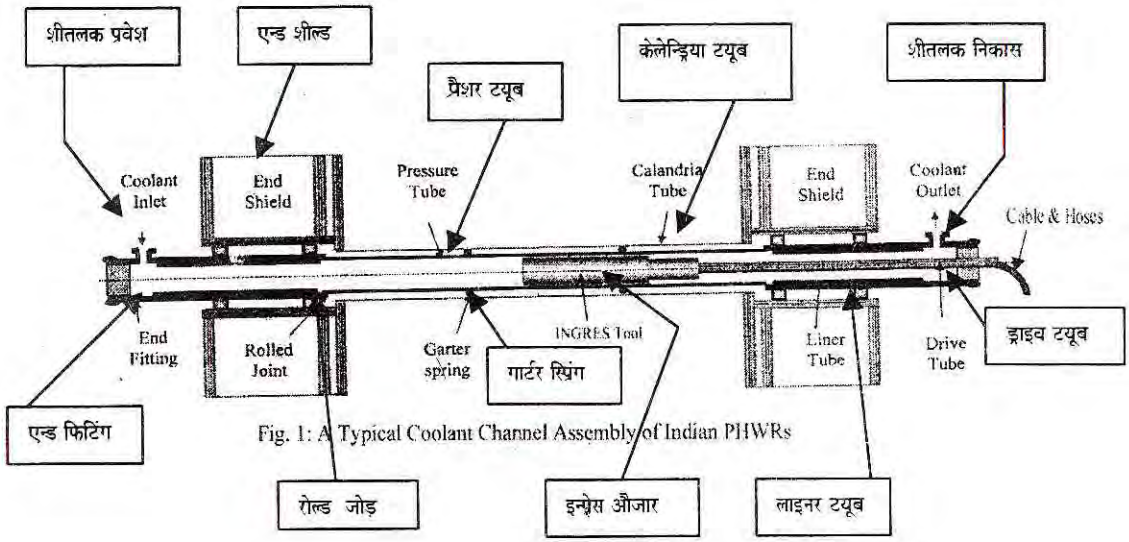

Fig. 1: A Typical Coolant Channel Assembly of Indian PHWRs

चित्र-2 : भारतीय दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टर शीतलक चैनल का रेखा चित्र

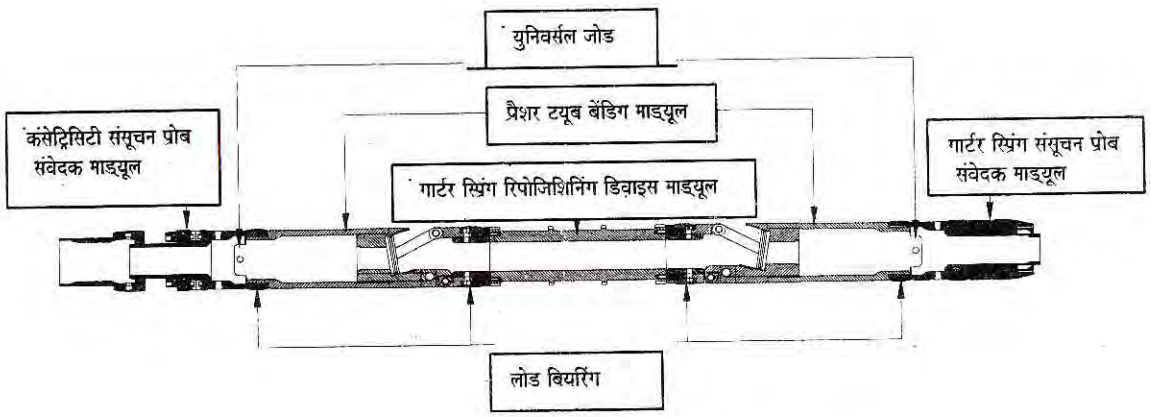

चित्र-3 : इन्टिग्रेटेड गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशनिंग सिस्टम औजार (Tool Head) का रेखा चित्र

गार्टर स्प्रिंग्स अपनी जगह से खिसक कर दूसरी जगहों पर पहुंच जाती हैं, तथा अपना कार्य, जो कि प्रैशर ट्यूब एवं कैलेंड्रिया ट्यूब को एक दूसरे के संपर्क में आने से रोकना है, वह कर नहीं पातीं । यह परिस्थिति शीतलक चैनल की संचालित कार्याविधि को कम करने का कारण बनती हैं ।

गार्टर स्प्रिंग्स का अपने निर्दिष्ट स्थान से खिसक जाने का दुष्परिणाम :

यदि गार्टर स्प्रिंग्स अपनी निर्धारित जगहों से खिसक कर दूसरी जगह पहुंच जाती हैं तो ऐसे में प्रैशर ट्यूब कैलेंड्रिया ट्यूब के संपर्क में आ जाती है । संपर्क हुए स्थान जिसे शीत बिंदु (Cold spot) कहते हैं पर कुछ अवधि के उपरांत प्रैशर ट्यूब में संकेंद्रित हाइड्रोजन एक गांठ अथवा फफोले के रूप में उभरती है । यह गांठ प्रैशर ट्यूब में हानिकारक विसंगतियां पैदा करती है । जिससे उसके विच्छेदन की स्थिति निर्माण हो सकती है तथा भयानक दुर्घटना घट सकती है । इसलिए भटकी हुई गार्टर स्प्रिंग्स को वापस निर्धारित स्थान पर लाना रिएक्टर के परिचालन सुरक्षा की दृष्टि से जरूरी हो जाता है । 'इंटिग्रेटेड गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशिनिंग सिस्टम' का उपयोग करके इन भटकी हुई गार्टर स्प्रिंग्स को वापस अपने निर्धारित स्थानों पर लाया जा सकता है ।

इंटिग्रेटेड गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशिनिंग सिस्टम :

इंग्रेस एक ऐसा बहुउद्देशीय औजार है, जिसके द्वारा संचालित रिएक्टर के अतिशय रेडियोधर्मी शीतलक चैनल के प्रैशर ट्यूब व कैलेंड्रिया ट्यूब के मध्य में रखी तथा अपने निर्धारित स्थानों से हटी हुई गार्टर स्प्रिंग को 100 मीटर की दूरी से वापस अपने निर्धारित स्थानों पर लाया जा सकता है । इस औजार को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है ।

1. इंग्रेस टूल हेड : यह इस औजार का मुख्य हिस्सा है (चित्र-3) । इसे रिएक्टर की प्रैशर ट्यूब में भेजा जाता है । इस पर विशेष प्रकार के संवेदक (Transducers), मोटर तथा अन्य यंत्र लगे होते हैं । गार्टर स्प्रिंग डिक्टेशन प्रोब संवेदक की सहायता से प्रैशर ट्यूब व कैलेंड्रिया ट्यूब के मध्य में रखी गार्टर स्प्रिंग्स का पता लगाया जाता है । कंसेट्रिसिटी डिक्टेशन प्रोब संवेदक की सहायता से प्रैशर ट्यूब व कैलेंड्रिया ट्यूब के बीच की दूरी का पता लगाया जाता है । गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशन युक्ति को चलाकर जो कि एक विशेष रूप की मोटर है, गार्टर स्प्रिंग को निर्धारित दिशा की ओर ढकेला जा सकता है । वेन्डिंग मॉड्यूल की सहायता से प्रैशर ट्यूब व कैलेंड्रिया ट्यूब के बीच की दूरी को नियंत्रित करते हैं, जिससे कि गार्टर स्प्रिंग को ढकेलने में सहायता मिले । चित्र-4 में इंग्रेस टूल हेड दिखाया गया है । इंग्रेस टूल हेड को एक विशेष प्लेटफार्म पर रख कर प्रैशर ट्यूब में डाला जाता है तथा उसे आगे अथवा पीछे सरकाया जाता है ।

2. इंग्रेस टूल उपकरण : इंग्रेस टूल का संपूर्ण नियंत्रण, इंग्रेस नियंत्रण कक्ष में रखे हुए संगणक की सहायता से होता है । जिस किसी शीतलक चैनल में गार्टर स्प्रिंग को निर्धारित दिशा की ओर ले जाना हो, उस चैनल में इंग्रेस टूल हेड डालकर इंग्रेस टूल उपकरणों द्वारा उसे चलाकर गार्टर स्प्रिंग को भटके हुए स्थानों से हटाकर अपने निर्धारित स्थानों पर रख दिया जाता है, जिससे कि शीतलक चैनल की कार्यावधि में वृद्धि हो सके ।

इंग्रेस का भारतीय दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टरों की परिचालन कार्यावधि बढ़ाने में योगदान :

इंग्रेस का उपयोग करके, प्रथम पीढ़ी के भारतीय दाबित भारी-पानी नाभिकीय रिएक्टरों की परिचालन कार्यावधि बढ़ाने में काफी मदद मिली है । इंग्रेस का प्रथम उपयोग 1995 में मद्रास परमाणु बिजलीघर की दूसरी इकाई के 5 शीतलक चैनलों की आयुसीमा बढ़ाने में हुआ । तत्पश्चात इसके प्रारूप में कुशल संचालन की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किया गया तथा उसका उपयोग 1998 में मद्रास परमाणु बिजलीघर की पहली इकाई के 8 शीतलक चैनलों की आयु सीमा बढ़ाने में किया गया ।

इंग्रेस का बड़े पैमाने पर उपयोग 2000 में मद्रास परमाणु बिजलीघर की पहली इकाई में किया गया । इसकी मदद से कुल 28 शीतलक चैनलों की आयुसीमा

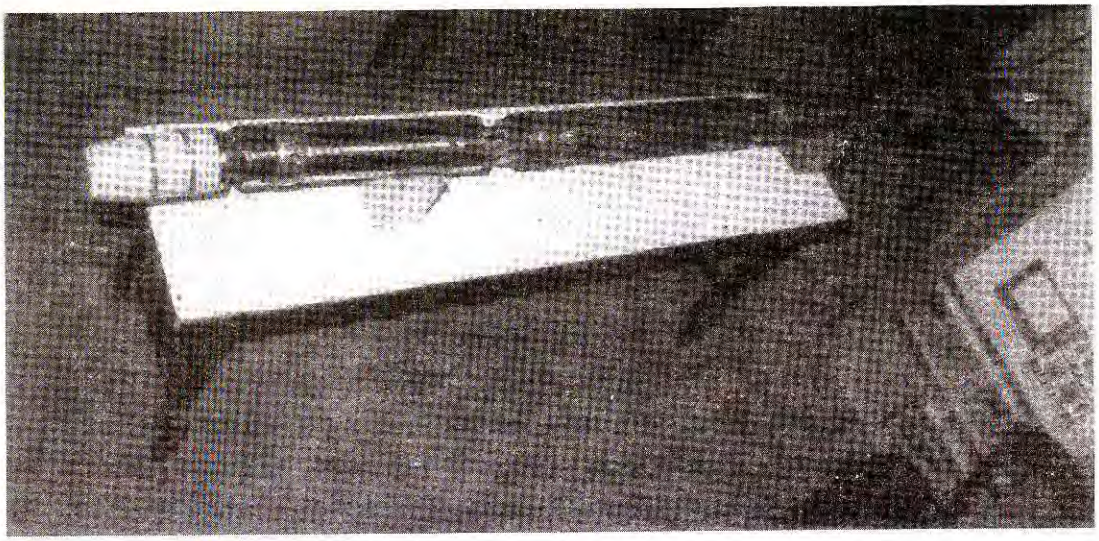

चित्र-4 : इन्टिग्रेटेड गार्टर स्प्रिंग रिपोजिशनिंग सिस्टम औजार (**Tool Head**) का आलोक चित्र

को सफलतापूर्वक लगभग 3 कैलेंडर वर्षों तक बढ़ाया गया । इससे हमारे देश को करोड़ों रुपयों का फायदा हुआ । अभी हाल ही में (2002 में) इंग्रेस का दुबारा बड़े पैमाने पर उपयोग मद्रास परमाणु बिजलघर की पहली इकाई में किया गया, तथा कुल 29 शीतलक चैनलों की आयुसीमा को सफलतापूर्वक लगभग 1.6 कैलेंडर वर्ष तक बढ़ाया गया । इससे भी देश की अर्थव्यवस्था में करोड़ों रुपयों का इजाफ़ा हुआ ।

फिलहाल इंग्रेस राजस्थान परमाणु बिजलीघर की पहली इकाई में कार्यरत है । ऐसा अनुमान है कि इस बार इसका उपयोग करीबन 60 से 80 शीतलक चैनलों की आयुसीमा बढ़ाने में होगा ।

इंग्रेस जैसे औजार का अनुसंधान एवं विकास कार्य अपने आप में एक विशेष उपलब्धि है । यह औजार आकार एवं लागत की दृष्टि से संसार में अद्वितीय है । विश्व में केवल कनाडा ही एकमात्र ऐसा देश है, जिसके पास इससे मेल खाता हुआ औजार है, जिसे कि स्लारेट (SLARETTE) कहते हैं । किंतु स्लारेट की रचना बड़ी व्यास वाली अर्थात 103 मिली मीटर व्यास वाली प्रेशर ट्यूब के लिए की गयी है । 103 मिली मीटर व्यास वाली प्रेशर ट्यूब का उपयोग 600 मेगावाट क्षमता वाली रिएक्टरों में होता है । स्लारेट की कीमत अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अरबों डॉलर है ।

हमारे देश में अब तक 220 अथवा 235 मेगावाट वाले (यद्यपि निकट भविष्य में 500 मेगावाट क्षमता के रिएक्टरों के परिचालन का कार्यक्रम है) रिएक्टरों का चलन है । इसमें 83 मिली मीटर व्यासवाली प्रेशर ट्यूब का उपयोग होता है । इस छोटे 83 मिली मीटर व्यास वाली प्रेशर ट्यूब के लिए इंग्रेस जैसे औजार तथा उसके सहयोगी उपकरण बनाना, 103 मिली मीटर व्यासवाली प्रेशर ट्यूब के लिए बनाये गये औजार की तुलना में एक चुनौती है, जिसे कि भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों ने एक निश्चित कालावधि में कर दिखाया ।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

जीन तकनीक

शुभा दाधीच
द्वारा- रीना दाधीच,
कमरा नं. 4, कार्यशील महिला आवास,
वनस्थली विद्यापीठ , वनस्थली-304 022 (राजस्थान)

महाभूताव्यात कारो बुद्धिर्व्यक्तमेव च ।
इंद्रियाणी दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचरा: ।।
इच्छा द्वेष: सुखं दुखं संघातश्चेतना धृति ।
एत क्षेत्र समासेन सविकार मुदाहृतं ।।

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, दस इंद्रियां, मन, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श रुप, रस, ग्रंथ और महत प्रकृति इन 24 तत्वों से आत्मस्वरुप का निर्माण हुआ है। वैज्ञानिकों ने जीवन की इस धारणा को अमीनो एसिड, फैटीएसिड, कार्बोहाइड्रेट आदि के रुप में स्वीकार किया है। इनमें जो तत्व शरीर के द्वारा प्राप्त होते हैं उनके उपयोग के लिए शरीर के अंदर अनगिनत रासायनिक प्रक्रियाएं चलती रहती हैं। ऐसी ही रासायनिक क्रियाएं, कोशिका के केंद्रक में पाये जाने वाले जीन में भी होती हैं। परंतु ये क्रियाएं भोजन से संबंधित नहीं हैं अपितु आनुवांशिकता से संबंधित हैं। किसी भी कोशिका की सारी क्रियाएं सूचना प्रणाली पर आधारित होती हैं। ये सूचनाएं मूलत: 'रासायनिक रूप' में होती हैं और डी.एन.ए. के रूप में कोशिकाओं में मौजूद होती हैं। इस विषय पर कुछ जानकारी इस लेख में दी गयी है।

आधुनिक जीन तकनीक यह स्पष्ट करने में समर्थ है कि कैसे जीव में आनुवांशिक पदार्थ बनाता है, कैसे आनुवांशिक सूचना का व्यक्तिकरण नियंत्रित किया जाता है और कैसे कभी-कभी किसी आनुवांशिक सूचना के प्रेक्षण में अनियमितता, आनुवांशिक रोग/कैंसर उत्पन्न कर देती है। इसी के साथ ही ये औषधि निर्माण में प्रयुक्त प्रोटीन के बृहत उत्पादन को संभव बना देते हैं। क्लोनिंग प्रक्रिया में एक डी.एन.ए. खंड की बहुत सी प्रतियां उत्पादित की जा सकती हैं। यह आधुनिक तकनीकी एक शोधित प्रोटीन को बृहत मात्रा में उपलब्ध करा देती है। जीन क्लोनिंग में दो प्रमुख पद हैं -

1. ऐसा जीन जो हम अलग करना चाहते हैं और उसे स्वयंप्रतिकृत होने वाले गुणसूत्र में संयुक्त करना चाहते हैं (ऐसे गुणसूत्र को 'वाहक' कहते हैं क्योंकि ये जीन को एक कोशिका से दूसरी कोशिका में ले जाते हैं)। यह जीन ई.कोली प्लाज्मिड् या वाइरस हो सकता है। जो वाहक संयुक्त जीन के साथ होता है रिकॉम्बीनेन्ट वाहक कहलाता है

2. इन रिकॉम्बीनेन्ट वाहक को बाद में उपयुक्त मेजबान कोशिका में प्रवेश कराया जाता है और जब वाहक प्रतिकृत होता है तो क्लोन हुई जीन की कई सारी समान प्रतियां उत्पादित हो जाती है।

जीन तकनीक में प्रयुक्त होने वाले कारक :

रेस्ट्रिक्शन एन्डोन्यूक्लिएज- (एक जैव उत्प्रेरक जो डी.एन.ए. को खंडित करने में प्रयुक्त होता है)।

तालिका-1 : रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम की विशिष्टता के कुछ उदाहरण

सूक्ष्मजीव जो रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम उत्पन्न करता है	एन्डोन्यूक्लिएज एन्जाइम	डी.एन.ए. पर लक्ष्य
बैसीलस एमाइलीलिक्विफेसिएन्स	Bam H I	G↓GATCC
ईश्चिरिश्चिया कोली Ry_{13}	Eco R I	G↓GATTC
हीमोफिलस एजिप्टीअस	Hae III	GG↓CC
हीमोफिलस इनफ्लुएन्जी	Hind III	A↓AGCTT
थरमस एक्वेटिकस	Taq I	T↓CGA
सिरेशिया मारसेन्स	Sma I	CCC↓GGG

↓ यह चिन्ह दर्शाता है कि विशिष्ट न्यूक्लिओटाइड क्रम में एन्जाइम किस जगह कट लगाता है ।

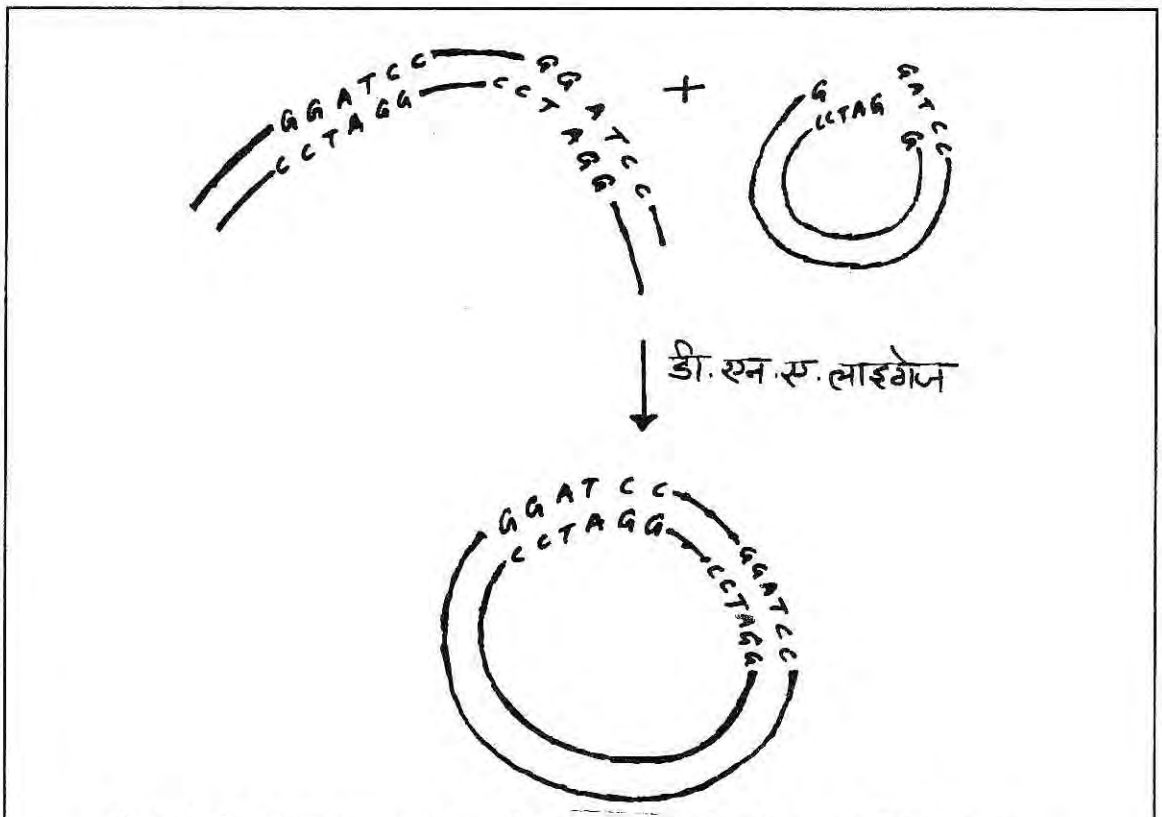

चित्र-1 : रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम से उपचारित जीनोमिक DNA और वाहक DNA के पूरक, संसंजित सिरों का DNA लाइगेज द्वारा बंधित होकर एक वृत्तीय रिकॉम्बीनेन्ट DNA का निर्माण ।

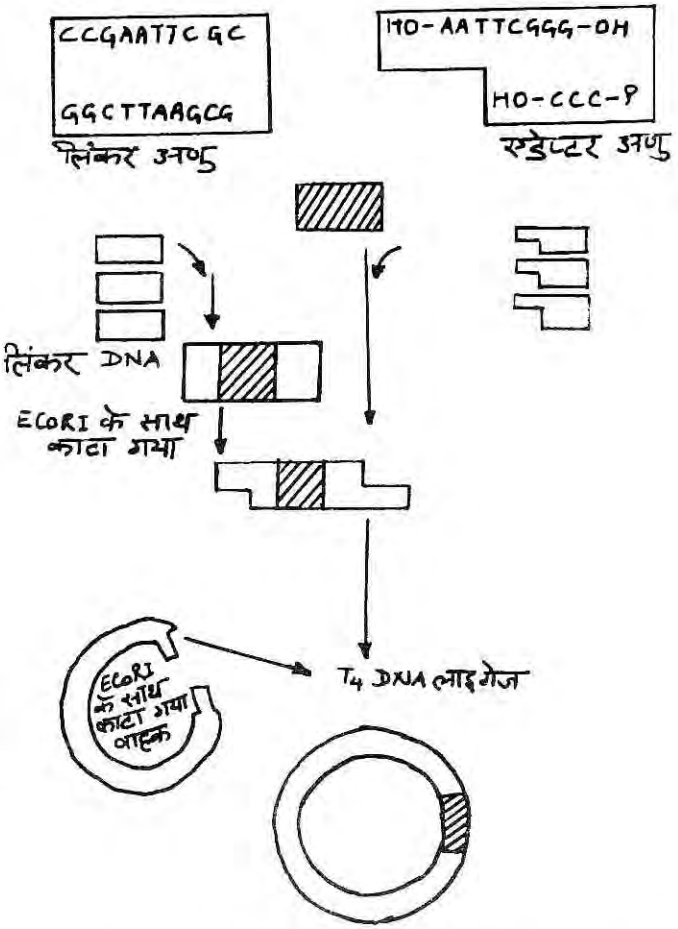

चित्र-2 : रिकॉम्बीनेन्ट प्लाज्मिड बनाने में लिंकर व एडेप्टर अणुओं का उपयोग

कोई डी. एन. ए. क्रम जो आवश्यक जीन उत्पाद को कोड करता हो, को क्लोन करने के लिए उसे मेजबान जीव से निकालना होता है और दूसरे प्रबंधित जीव, जैसे कि जीवाणु, में प्रवेश कराना होता है। इस प्रकार किसी जीन को मेजबान जीन से दूसरे सूक्ष्म जीव में स्थानांतरित करने के लिए पहले जीन का उपयुक्त वाहक के डी. एन. ए. अणु के साथ संयुक्त करवाना आवश्यक है।

रेस्ट्रिक्शन एन्डोन्यूक्लिएज ऐसे जैव उत्प्रेरक हैं जो डी.एन.ए. को विशिष्ट स्थान पर से काटते हैं। अभी तक कई रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम खोज लिये गये हैं। पहला रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम 1970 में हिमोफीलिस एन्फ्लुएंजी से पृथक किया गया था। विभिन्न रेस्ट्रिक्शन एन्डोन्यूक्लिएज विभिन्न जीवाणु से पृथक किये गये हैं जो न्यूक्लिओटाइड क्रम को पहचानते हैं। जब डी. एन. ए. अणु काटा जाता है तो रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम से काटे हुए DNA खंड के सिरे एन्जाइम की प्रकृति के आधार पर विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं।

उदाहरण-1 : Eco RI से कटना -

5'.....G↓AATTC.... 3'
3'.....CTTAA↓G.... 5'
5'.....G AATTC.... 3'
8'.....CCTAA G.... 5'

रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम की सहायता से संसंजित सिरे उत्पन्न करना -

उदाहरण-2 : Sma I द्वारा कटना -

5'.....CCC↓GGG.... 3'
3'.....GGG↓CCC.... 5'
5'.....CCC GGG.... 3'
3'.....GGG CCC.... 5'

रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम की सहायता से ब्लंट सिरे उत्पन्न करना :

जब वाहक DNA और बाह्य DNA दोनों में समान रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम (Eco RT) से काटा जा सके तो वाहक व बाह्य DNA के अतिव्यापित सिरे एक दूसरे के पूरक होंगे । जब परिणामित DNA खंडों को आपस में संयुक्त किया जाता है वे अतिव्यापन के बीच क्षार युग्म तथा अंतिम एकल लड़ वाला DNA क्रम और दोनों DNA खंडों के बीज *फोस्टो डाईएस्टर बंध* DNA लाइगेज की सहायता से पुनः बन जाता है ।

DNA लाइगेज को ई. कोली या बैक्टीरियोफेज T_4 से पृथक किया जाता है । ई. कोली का DNA लाइगेज एन. ए. डी. पर निर्भर करता है जबकि T_4 फेज से अलग किया गया DNA लाइगेज ए. टी. पी. पर निर्भर करता है । पहले वाला DNA लाइगेज ब्लंट सिरे वाले DNA खंड को जोड़ने में अप्रभावित रहता है जबकि बाद वाला अधिक मात्रा में उपलब्ध होने पर प्रभावित रहता है ।

लिंकर व एडेप्टर :

रिकॉम्बीनेन्ट DNA और जीन क्लोनिंग के प्रयोग यह बताते हैं कि रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम एक विशिष्ट स्थान पर से काटने की ही प्रवृति रखते हैं । यदि उपयुक्त रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम का स्थान उस पर उपलब्ध न हो जिसको क्लोन करना हो तो DNA को खंडित करने का स्थान लिंकर या एडेप्टर को जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है ।

लिंकर :

छोटे दोहरी लड़ वाले DNA अणु होते हैं जिनमें रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम के द्वारा खंडित होने का स्थान पाया जाता है ये न्यूक्लिओटाइड DNA खंड के ब्लंट सिरे से जोड़े जाते हैं और DNA खंड के संसंजित सिरे उत्पन्न करने के लिए विशिष्ट रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम से काटे जा सकते हैं ।

ऐडेप्टर अणु रासायनिक रूप से निर्मित DNA अणु होते हैं जिनमें पहले से बने कोहेसिव सिरे होते हैं । जब लक्षित DNA स्थान, जहां से रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम को काम करना है तब ऐडेप्टर अणुओं की आवश्यकता है । किसी समबहुलक क्रिया में *ओलिगो* A (AAAA.....AA) और *ओलिगो* T (TTTT.....TT) बाह्य DNA व वाहक DNA अणुओं के सिरे पर *टर्मिनल ट्रांसफरेज एन्जाइम* की मदद से क्रमशः जोड़ दिये जाते हैं । जब इन दो DNA अणुओं को जोड़ा जाता है तो पहले इन्हें ठंडा किया जाता है और बंद वृत्तीय रिकॉम्बीनेन्ट DNA अणु बनाते हैं ।

वाहक का उपयोग क्लोनिंग वाहन के रूप में :

वाहक को उपयुक्त मेजबान कोशिका में प्रवेश करवाया जा सकता है और वहां वे मेजबान के एन्जाइम प्रयोग करते हैं और प्रतिकृत हो जाते हैं । DNA बाह्य का खंड जिसे वाहक DNA के साथ संयुक्त किया जाता है वह वाहक DNA के साथ मेजबान कोशिका में प्रवेश कर जाता है और उसी के साथ प्रतिकृत हो जाता है । इस प्रकार ऐच्छिक बाह्य DNA को अधिक मात्रा में उत्पादित किया जा सकता है । वाहक जो अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं वे प्लाज्मिड कहलाते हैं । इसके अतिरिक्त वाहक बेक्टीरियोफेज व M_{13} हैं ।

सभी वाहकों की प्रमुख आवश्यकता प्रतिकरण के उत्पत्ति स्थान हैं जो दिये गये मेजबान कोशिका को स्वयं

प्रतिकृत करवाती है (अर्थात मेजबान कोशिका से स्वतंत्र)। विभिन्न प्रकार के वाहक निम्न हैं -

(अ) प्लाज्मिड - प्लाज्मिड गुण सूत्रीय DNA से पृथक दोहरी लड़ वाले वृत्तीय DNA अणु हैं जो स्वयं ही प्रतिकृत होते हैं। प्लाज्मिड के विभिन्न प्रकार हैं -

1. स्वयं स्थानांतरित होने वाले प्लाज्मिड जो tra जीन का स्थानांतरण करते हैं।
2. प्लाज्मिड जो tra जीन का स्थानांतरण नहीं करते तथा स्वयं प्रतिकृत हो जाते हैं।

(ब) बेक्टीरियोफेज वाहक - दोहरी लड़ वाला DNA बेक्टीरियोफेज λ में जाता है जो रेखीय अणु होता है। यद्यपि λ तंत्र में DNA का संयुग्मन केवल तभी संभव है जब परिणामित जीनोम का आकार 78% व 105% के बीच हो। बहुत बड़े जीनोम ही संयुग्मन में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। DNA के बड़े खंड λ DNA में प्रवेश करवाये जाते हैं और अनावश्यक λ जीन हटा दिये जाते हैं।

एकल लड़ DNA बैक्टीरियोफेज वाहक तंतुमय कोलिफेज M_{13} fd व f1 पर निर्भर करता है। ये वाहक DNA की क्लोनिंग में उपयोगी होते हैं। ये क्लोन हुए DNA खंड, DNA क्रम का विश्लेषण करने में, इनविट्रोम्यूटाजिनेसिस और एक लड़ DNA प्रोब बनाने में काम आते हैं।

(स) कॉस्मिड वाहक - कॉस्मिड वाहक में प्रतिकरण के लिए उत्पत्ति केंद्र होता है जो एक चयनित आनुवांशिक सूचक (एन्टीबायोटिक प्रतिरोधी) और क्लोनिंग के लिए उपयुक्त साइट होती है। इनमें भी संसंजित सिरों का क्रम, जो बैक्टीरियोकाज में पाया जाता है, होता है (जो कोज साइट कहलाता है) यह क्रम λ DNA को मेजबान कोशिकीय DNA से संयुक्त करने में आवश्यक होता है। कॉस्मिड यूकैरियोटिक DNA के बड़े भागों को क्लोन कराने में सहायक होता है।

(ड) शटल वाहक - ये सभी प्लाज्मिड ही हैं। इन्हें विभिन्न मेजबान कोशिकाओं में प्रतिकृत करने के लिए विशेष रुप से बनाया जाता है।

जीव तकनीकों के उपयोग :

रिकॉम्बीनेन्ट कोशिका से औषधि निर्माण

(क) रिकॉम्बिनेन्ट इन्सुलिन - अग्नाशय के लैंगरहैंस द्वीप समूह की β कोशिका से इन्सुलिन हार्मोन का स्रवण होता है। यह शरीर में शर्करा के उपापचय को नियंत्रित करता है। कम मात्रा में इन्सुलिन के स्रवण से रुधिर में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है जिससे कि लोग मधुमेह नामक बीमारी के शिकार हो जाते हैं। यह रोग विश्व की एक बड़ी जनसंख्या को प्रभावित करता है तथा इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को प्रतिदिन इन्सुलिन के इंजेक्शन दिये जाते हैं ताकि इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सके। इन्सुलिन को पहले सुअर व गाय के अग्नाशय से पृथक किया जाता है, परंतु कुछ रोगियों में इस इन्सुलिन के विरुद्ध एन्टीबॉडीज उत्पन्न हो जाते हैं।

इन्सुलिन की संरचना - इन्सुलिन में दो छोटी पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला A व B होती हैं जो क्रमशः 21 व 30 अमीनो एसिड की बनी होती हैं। ये दोनों श्रृंखलाएं आपस में डाई-सल्फाइड लिंकेज से जुड़ी रहती हैं। स्तनधारियों में इन्सुलिन के निर्माण के लिए अतिरिक्त 35 अमीनो एसिड होते हैं जो C पेप्टाइड श्रृंखला कहलाती है। इस प्रकार 'C पेप्टाइड + इन्सुलिन - प्रोहार्मोन' बनता है। परंतु यह सक्रिय हार्मोन नहीं होता क्योंकि परिपक्व हार्मोन में पेप्टाइड नहीं होता है। प्रोहार्मोन का 'पोस्ट ट्रांसलेशनल प्रोटीन ओलाइसिस' आवश्यक होता है। ई. कोली में इन्सुलिन उत्पादन में विभिन्न पद प्रयुक्त किये जाते हैं -

1. प्रयोगशाला में A, B श्रृंखला के लिए जीन को बनाया जाता है।
2. फिर उनको अलग से β–गेलेक्टोसाइडेज जीन में क्लोन किया जाता है और उन्हें β–गेलेक्टोसाइडेज फ्यूजन प्रोटीन के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।
3. एक मिथिओनिन कोडोन को β–गेलेक्टोसाइडेज जीन व इन्सुलिन जीन के बीच प्रवेश करवा दिया जाता है और इन्सुलिन श्रृंखला को CNB (सायनोज़न ब्रोमाइड) के उपचार से हटा दिया जाता है। ये विशेषकर पेप्टाइड बंध को इस मिथिओनिन रेजिड्यू सिरे से ही तोड़ देती

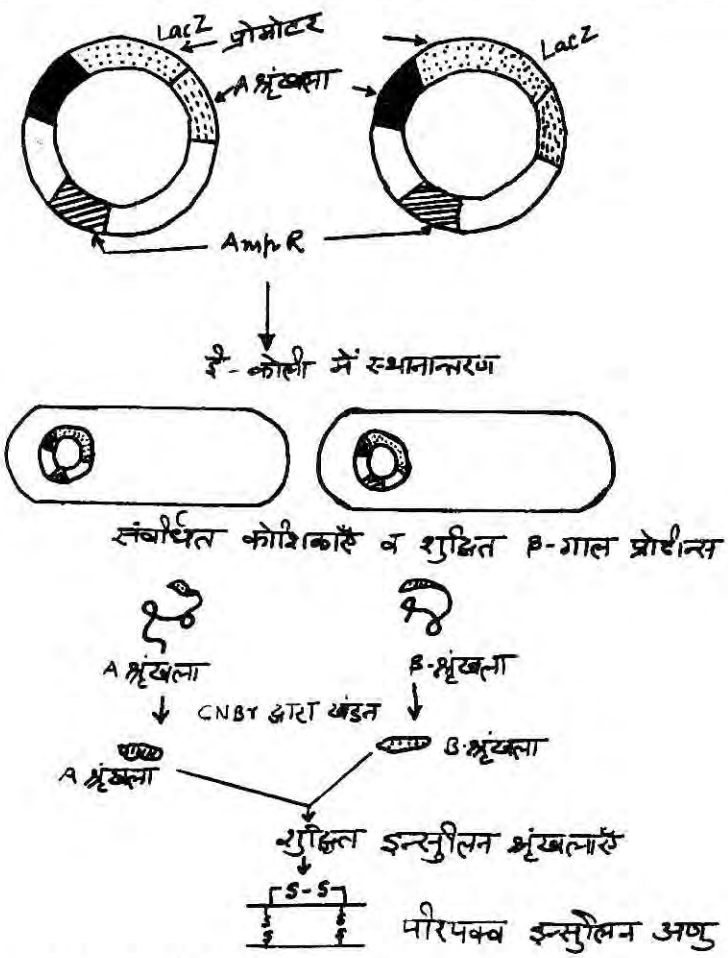

चित्र-3 : रिकॉम्बीनेन्ट इन्सुलिन का निर्माण

है तथा इन्सुलिन श्रृंखला ऐसे स्वतंत्र हो जाती है जैसे वहां कोई आंतरिक मिथिओनिन रेजिड्यू नहीं हो ।

4. शुद्धित A व B श्रृंखला के मध्य रासायनिक क्रॉस लिंकेज द्वारा क्रियाशील इन्सुलिन अणु बनाता है ।

इन्सुलिन उत्पादन का दूसरा तरीका - पूरे प्रोइन्सुलिन अणु (जिसमें पेप्टाइड है) को ई. कोली में ओवर एक्सप्रेस कराना व फिर प्रोटीन के शुद्धिकरण के लिए C- पेप्टाइड को विशेष प्रोटीओलाइसिस क्रिया से रासायनिक जल-अपघटन से तोड़ा जाता है । अपघटन की प्रक्रिया में एक 6 पेप्टाइड वाली श्रृंखला को C-पेप्टाइड के स्थान पर निवेशित कर दिया जाता है । इस प्रकार रिकॉम्बीनेन्ट इन्सुलिन का निर्माण किया जाता है ।

(ख) रिकॉम्बीनेन्ट वृद्धि हार्मोन - मस्तिष्क में स्थित पिट्यूटरी ग्रंथि द्वारा वृद्धि हार्मोन का स्रवण होता है जो वृद्धि व विकास में काम आता है । इस हार्मोन की कमी बच्चों में अल्पविकास करती है जिसे पिट्यूटरी बौनापन कहते हैं । ऐसे रोग से पीड़ित बच्चों को नियमित रूप से मनुष्य की पिट्यूटरी से पृथक किये हार्मोन के इंजेक्शन दिये जाते हैं । केवल मनुष्य की पिट्यूटरी से पृथक हार्मोन ही पिट्यूटरी बौनेपन को प्रभावित करता है ।

ह्यूमन वृद्धि हार्मोन को एक बड़े कृत्रिम रूप से निर्मित प्रिकर्सर (Precursor) अणु के रूप में बनाया

जाता है जो एक पॉलीपेप्टाइड क्रम रखता है । यह सिग्नल पेप्टाइड कहलाता है जो झिल्ली के पार स्रवण में भाग लेता है । ह्यूमन वृद्धि हार्मोन अब रिकॉम्बीनेन्ट प्रोटीन के रूप में मिलता है, यह ई. कोली में बनाया जाता है । ह्यूमन वृद्धि हार्मोन को कोड करने वाला क्रम व बेक्टीयल सिग्नल क्रम को जोड़कर ह्यूमन वृद्धि हार्मोन बनता है । यह रिकॉम्बीनेन्ट वृद्धि हार्मोन मांस व दुग्ध निर्माण में प्रयुक्त होता है ।

(ग) **रिकॉम्बीनेन्ट वैक्सीन** - वैक्सीन को प्रभावी बनाने के लिए प्रतिरोधी तंत्र में एन्टीजेनिक डेटरमिनेंट्स होना आवश्यक है । एन्टीजेनिक डिटरमिनेंट्स के लिए जीन एक उपयुक्त वाहक में क्लोन करवायी जाती है और मेजबान कोशिका में प्रदर्शित होती है । रिकॉम्बीनेन्ट हेपेटाइटिस-बी वैक्सीन जीन की क्लोनिंग से बनायी जाती है ।

हेपेटाइटिट 'बी' की वैक्सीन - हेपेटाइटिस-बी वाइरस 42 एनएम का कण है, इसमें एक क्रोड (वाइरल जीनोम) होता है जो फॉस्फोलिपिड द्वारा घिरा रहता है, इस कवर में HBsAg एन्टीजन डेटरमिनेंट्स होते हैं । हेपेटाइटिस के वाइरस के संक्रमण से डेन कणों का उत्पादन होता है व कवर में 22 एनएम के बड़े कण व तंतु उत्पन्न हो जाते हैं । रिकॉम्बीनेन्ट हेपेटाइटिस-बी का उत्पादन यीस्ट कोशिका में वाइरस की सतह से एन्टीजन के लिए जीन की क्लोनिंग द्वारा होता है ।

पैर व मुंह पका रोग (FAD) - पैर व मुंह पका रोग खुरों वाले प्राणियों विशेषकर मवेशी, भेड़ व सुअर में होता है । यह रोग आर. एन. ए. (RNA) वाइरस द्वारा होता है जो पिकरोना ग्रुप का सदस्य है । इन वाइरस कणों को काम में लेकर बहुत सी वैक्सीन बनायी जाती हैं ।

एड्स - यह एकल छड़ आर. एन. ए. वाइरस द्वारा होता है । इस वाइरस का नाम एक्वायर्ड इम्यूनों डेफिसिएन्सी वाइरस (HIV) है । HIV शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को तोड़ देता है फलस्वरूप कई तरह के संक्रमण शरीर को हानि पंहुचाते हैं । कुछ साल बाद इस रोग में अधिक वृद्धि हो जाती है । इस दौरान वाइरस का जीनोम ह्यूमन जीनोम से संयोग कर लेता है । इसके लिए वैक्सीन बनायी जा रही है जिसमें वाइरस वाहक तकनीक कम में ली जा रही है । वैक्सीनिया वाइरस के जीन में HIV के कवर के ग्लाइकोप्रोटीन को कोड करने वाले HIV जीनोम को संयुक्त कर दिया जाता है । जब इस वैक्सीन वाहक वाइरस को मेजबान में इंजेक्ट किया जाता है तो HIV कवर प्रोटीन बनता है जिसके प्रति मेजबान संवेदनशील होता है ।

DNA प्रोब द्वारा रोग निदान :

DNA प्रोब ओलिगो न्यूक्लिओटाइड क्रम हैं जो DNA क्रम के पूरक होते हैं और रेडियोन्यूक्लिड, एन्जाइम या फ्लोरोसेंट अणु से लेबल रहते हैं । ये सभी DNA क्रम को देखने में काम आते हैं । रेडियोन्यूक्लिआइड को देखने के लिए ऑटोरेडियोग्राफी तकनीक उपयोग में लाते हैं । इसमें परीक्षण हेतु नमूने को एक्स-रे विकिरण द्वारा देखा जाता है । इन्जाइम को देखने के लिए उस एन्जाइम से बनने वाले उत्पादों को देखा जाता है तथा फ्लोरोसेंट अणु को पराबैगनी विकिरण या लेजर द्वारा देखा जाता है । कई प्रकार के विशिष्ट DNA प्रोब्स जिनमें DNA क्रम होता है, प्रोकेरियोट व यूकेरियोट में पाये जाते हैं । इसे मलेरिया, फाइलेरिया व तपैदिक (TB) जैसे परजीवियों में देखा गया है ।

कीट नियंत्रण :

जैव प्रौद्योगिकी ने दिन प्रतिदिन बहुत प्रगति की है । मच्छर, जो कि मलेरिया फाइलेरिया व एनसिफेलाटिस फैलाते हैं को नियंत्रित रखना आवश्यक है । कृषि क्षेत्र में हरित क्रांति लाने के लिए फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीटों - जैसे टिड्डी आदि को मारने के लिए कुछ कीटनाशक उपयोग में लाये गये । 1970 के दशक में डीडीटी का उपयोग किया गया था, परंतु यह देखा गया कि डीडीटी कार्सिनोजेनिक (कैन्सर पैदा करने वाला) है । अतः कुछ अन्य कीटनाशियों पर विचार किया गया । अंततः जैवकीटनाशी ऐसे कारक हैं जो बैक्टीरिया या वाइरस जैसे सूक्ष्मजीवों से बनाये जाते हैं । ऐसे रोगजनक बैक्टीरिया व वाइरस जो कीटों के अलावा लार्वा को नष्ट करते हैं व जैव कीटनाशी बनाने में प्रयुक्त होते हैं ।

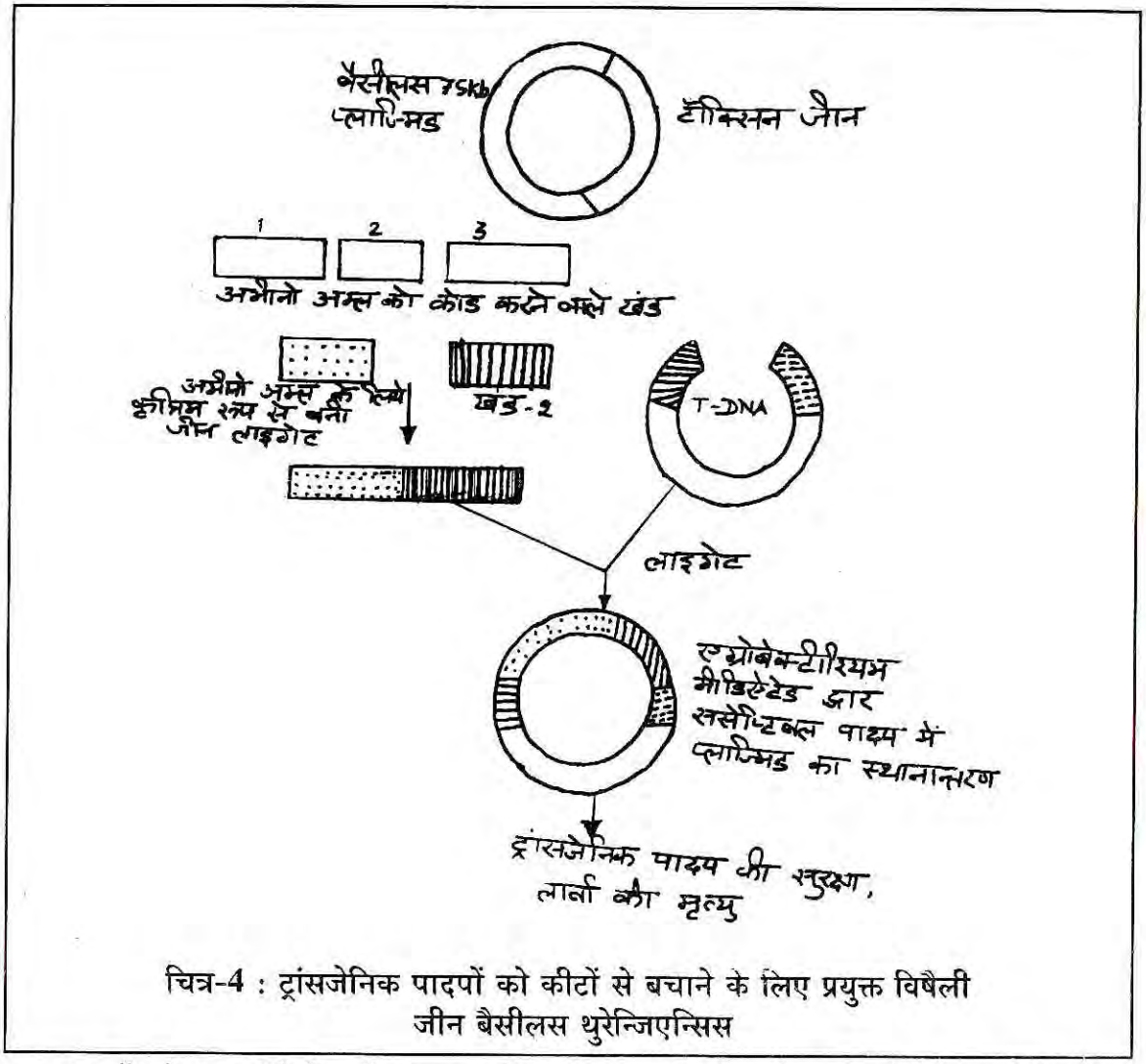

चित्र-4 : ट्रांसजेनिक पादपों को कीटों से बचाने के लिए प्रयुक्त विषैली जीन बैसीलस थुरेन्जिएन्सिस

मच्छरों व बैल्क फ्लाई के लिए दो प्रमुख सूक्ष्मजीव *बैसीलस स्फैरिकस* तथा *बैसीलस थुरेन्जिएन्सिस* जब बैसीलस मच्छर लार्वा द्वारा भक्षित किये जाते हैं तो बैसिलाई आहार नाल की क्षारीय pH में घुल जाता है और *एन्डोटॉक्सिन* बनाता है। इन एन्डोटॉक्सिन में कई विषैले पेप्टाइड्स होते हैं, जो लार्वा की आहार नाल कोशिका से बंध जाते हैं और कैल्सियम आयन के विसरण से आहर नाल की झिल्ली को घोल देते हैं। इससे कीटों को पायरोलिसिस हो जाता है और अंत में उनकी मृत्यु हो जाती है।

अन्य जैव कीटनाशी भी बैसीलस थुरेन्जिएन्सिस से व्युत्पन्न किये जाते हैं। जैव कीटनाशी की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं -

1. ये कीटनाशी कीट विशिष्ट होते हैं और अन्य कीटों पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं।
2. ये बायोडिग्रेडेबल होते हैं।
3. कीटों में इनके प्रति प्रतिरोधी क्षमता धीरे-धीरे उत्पन्न होती हैं क्योंकि इनमें बाइपिरामिडिल क्रिस्टल रूपी कीटनाशी प्रोटीन पाये जाते हैं।

बै. थुरेएन्जिएन्सिसक प्रमुख लक्षित कीट निम्न हैं -

ऑर्डर	सामान्य नाम	पादप
लेपिडोप्टरा	डायमंड बेक मॉथ	पत्तागोभी
	आर्मी वर्म	पत्तागोभी
	कॉटन बॉल वर्म	पत्तागोभी
	कैबेज लूपर	पत्तागोभी
कोलिन्टेरा	कालारेडो पोटेटो बीटल	आलू
	आल्डर लीफ बीटल	आल्डर
डिप्टेरा	मच्छर ब्लैक फ्लाई	मनुष्य के रोगकारी वाहक

जीन थैरेपी -

एडनोसिन डी एमीनेज प्यूरीन उपापचय का एक एन्जाइम है जो एडनोजिसन व डीऑक्सी एडिनोसिन का इनोसिन व डी-ऑक्सीइनोसिन में क्रमशः वि-अमोनीकरण कर देता है। मनुष्यों में ADA की सक्रियता में कमी सीवियर कंबाइंड इम्यूनोडेफीसिएन्सी (SCID) कहलाती है। बच्चों में ADA डेलीसिएन्सी होने पर पहले बोवाइन ADA दिया जाता था या अस्थिमज्जा का ट्रांसप्लान्टेशन किया जाता था। अब रिकॉम्बीनेन्ट DNA तकनीक के विकास के साथ, जीन थैरेपी द्वारा अस्थिमज्जा से लिंफोहीमोपोएटिक ऊतक प्राप्त किये जाते हैं तथा उनकी परखनली में ही वृद्धि की जाती है। इस प्रक्रिया में रेट्रोवाइरस की प्रमुख भूमिका रहती है। रेट्रोवाइरस आनुवांशिक सूचनाओं का प्रेषण यूकेरियोटिक कोशिका में करने में समर्थ होते हैं। इसी के साथ वाइरस वाहक का कार्य करने में सक्रिय रहते हैं, इनमें रिवर्सट्रांसक्रिप्टेज पाया जाता है जो आर. एन. ए. की सूचनाओं को डी. एन. ए. में भेजते हैं व मेजबान कोशिका के जीनोम के साथ जुड़ जाते हैं।

ADA जीन को अस्थिमज्जा कोशिका या लिंफोसाइट के साथ जोड़ने में प्रमुख पद काम में लिये जाते हैं। रेट्रोवाइरस के प्रोवाइटल DNA को प्लाज्मिड के साथ क्लोन किया जाता है और कुछ प्रोवाइसल DNA को ADA जीन द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इस ADA जीन के प्रतिस्थापनार्थ ADA जीन के साथ G418 एन्टीबायोटीक प्रतिरोधी को कोड करने वाला जीन भी क्लोन किया जाता है। रिकॉम्बीनेन्ट ऊतक कल्चर के दौरान फाइब्रोब्लास्ट जीन शुद्ध नहीं रह गया, ये रिकॉम्बीनेन्ट बन गया है अतः इसमें जो वाइरल जीन हैं वे फाइब्रोब्लास्ट कोशिका में प्रवेश कर परिपक्व, वाइरल कण ही बनाते हैं। जब कल्चर माध्यम में अस्थि मज्जा मिलायी जाती है तब वाइरल कण पृथक हो जाते हैं और ये वाइरल कण लिंफोसाइट या अस्थिमज्जा कोशिकाओं को संक्रमित कर देते हैं, उन कोशिकाओं को अलग कर लिया जाता है। परंतु वे जीन जिनमें एन्टीबायोटिक प्रतिरोधी जीन होती है इसकी वृद्धि करते रहते हैं। इस प्रकार रिकॉम्बीनेन्ट जीन को चूहे में इंजेक्ट करके पता लगाया जा सकता है कि इस रिकॉम्बीनेन्ट तकनीक के प्रयोग से डेफीसिएन्सी जैसे रोगों का उपचार किया जा सकता है या नहीं।

वर्तमान में इस प्रगतिशील जीन तकनीकी द्वारा आनुवांशिक तंत्र की कार्यप्रणाली और उसकी संरचना के बारे में हमारी समझ बढ़ी है। मनुष्यों के लिए इसका प्रमुख लाभ कृषि, स्वास्थ्य, एनीमल हसबेंड्री, जैव रसायन/जैव ईंधन निर्माण, वातावरणीय सुरक्षा, खाद्य उत्पादन/उपचार आदि क्षेत्रों में हो सकता है। इस तकनीकी का विकास कई तथ्य सामने लाता है। क्या यह तकनीकी सुरक्षित व लाभकारी है ? इस पर नियंत्रण कौन करेगा ? किसको नियंत्रण करना चाहिए ? जीन प्रौद्योगिकी के परिणाम जो अभी सही लग रहे हैं आगे चलकर हानिकारी तो नहीं होंगे ? रिकॉम्बीनेन्ट और प्राणी की निरंतर वृद्धि को हम रोक सकेंगे ? रिकॉम्बीनेन्ट हार्मोन का अत्यधिक प्रयोग क्या नुकसानदायी नहीं होगा ? क्या जीन थैरेपी से लाइलाज आनुवांशिक रोगों का इलाज होगा ? क्या हमें कई नयी कठिनाइयां नहीं होंगी ? ये सभी प्रश्न ध्यान देने योग्य हैं। कई देशों में रिकॉम्बीनेन्ट DNA प्रयोगों को जांचने के लिए जांच समितियां बनायी गयी हैं और रिकॉम्बीनेन्ट प्राणियों के प्रयोग पर सख्त नियम बना दिये गये हैं।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी वर्ग)

जीवन का अतिसूक्ष्म रूप-जीवाणु : कितना घातक ? कितना सहायक ?

कुमारी मिता चॅटर्जी (रिसर्च स्कॉलर)
एवं गीता चॅटर्जी, आई.सी.एस.एस. आर फैलो.
रेबा निवास, 68/138, नेहरूमार्ग,
आशुतोष नगर, ऋषिकेश-249 201

यह तथ्य आज सर्वमान्य है कि - जीवन की उत्पत्ति प्रागैतिहासिक युग में ही हो गयी थी । 'जीवन' शब्द से अभिप्राय है उन वस्तु विशेषों का, जिनमें जीवद्रव्य अर्थात प्रोटोप्लाज़्म का समावेश हो । जीवाणु का अध्ययन सर्वप्रथम हॉलैंड निवासी एण्टोनी वॉन ल्यूवेन हॉक ने 1983 में किया । उन्होंने स्वनिर्मित सूक्ष्मदर्शी की सहायता से पानी एवं मैलयुक्त वस्तुओं का अध्ययन करने पर उनमें अतिसूक्ष्म जीव देखे, जो अंततः जीवाणु कहलाये । ए. एन. बर्ग ने इन्हें 'बैक्टीरिया' कहकर संबोधित किया । अनेक वैज्ञानिकों ने जीवाणु पर अपने-अपने शोधकार्य किये एवं उनके संबंध में कई तथ्यों का स्पष्टीकरण भी किया; परंतु जीवाणु-विज्ञान के पिता एण्टोनी वॉन ल्यूवेन हॉक ही कहलाये । इस लेख में जीवन के आण्विक रुप - जीवाणु के संदर्भ में कुछ विशिष्ट तथ्यों की जानकारी दी गयी है ।

यद्यपि जीवाणु एक अतिसूक्ष्म जीव है, तथापि समय के प्रवाह के साथ ही साथ इसका अध्ययन इतना विस्तृत होता गया कि उसके अध्ययन की एक अलग शाखा बनायी गयी, जिसे 'जीवाणु-विज्ञान' (Bacteriology) की संज्ञा दी गयी । जीवाणुओं के संदर्भ में अनेक वैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये, परंतु सभी को सर्वमान्यता उपलब्ध नहीं हो पायी । कुछ विशिष्ट शोधकार्यों को ही स्वीकृत किया गया ।

लुई पाश्चर (Louis Pasteur) ने किण्वन पर अपना अनुसंधान करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि उक्त प्रक्रिया जीवाणुओं के योगदान से ही होती है । उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि जीवाणुओं के संक्रमण के कारण ही पदार्थ सड़ते हैं, तथा एक स्वस्थ प्राणी रोगग्रस्त होता है । इसी तथ्य को उजागर करने के उद्देश्य से उन्होंने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया, वह था - 'जीवाणुओं द्वारा रोगों की उत्पत्ति' । उनके द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत को चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में निर्विरोध एवं अतिशीघ्र ही स्वीकृत किया गया । पाश्चर के पश्चात रौबर्ट कौश (Robert Koch) ने पहली बार जीवाणुओं का कृत्रिम संवर्धन किया, और यह सिद्ध किया कि - मनुष्यों में होने वाली घातक बीमारियां - जैसे हैजा तथा क्षयरोग एवं चौपायों में होने वाली बीमारी कालस्फोट (Anthrax) भी जीवाणुओं के संक्रमण का ही परिणाम हैं । जीवाणुओं के संबंध में 'प्रतिरोधी मत' (Antiseptic Theory) जोसेफ लिस्टर ने प्रस्तुत किया ।

जीवाणुओं की चारित्रिक विशिष्टताएं :

जीवन का आण्विक रुप जीवाणु सर्वव्यापी जीव है । यह अतिसरल, अतिसूक्ष्म तथा एक कोशिकीय आद्य-जीव है । इनकी गणना पादप जगत में होती है । इनकी कोशिका के बाहरी सतह पर कोशिका-भित्ति पायी जाती है । यद्यपि जीवाणु एक कोशिकीय जीव हैं,

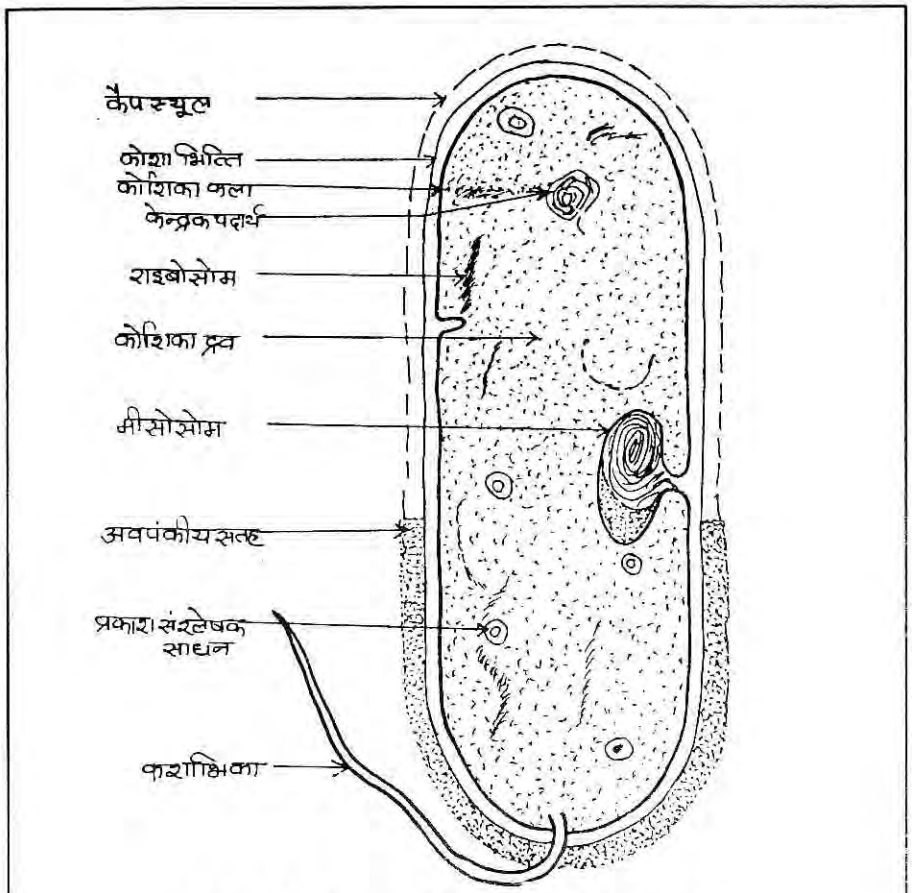

चित्र-1 : जीवाणु की कोशिका की संरचना

तथापि इनमें माइटोकौन्ड्रिया, प्लास्टिड्स, अंतःद्रव्यी जालिका (Endoplasmic Reticulum) तथा गॉल्जीकाय (Golgi complex) जैसे कोशिकांगों (Cell organelles) का पूर्ण रूप से अभाव होता है। इनकी विशिष्टता यह भी है कि इनमें उपस्थित केंद्रक, केंद्रक झिल्ली द्वारा घिरा हुआ नहीं होता। इनमें 70 S प्रकार के राइबोसोम पाये जाते हैं, जो जीवद्रव्य में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रहते हैं। जीवाणुओं के शरीर, अर्थात जीवाणु कोशिकाओं की प्रतिरोधी क्षमता अन्य कोशिकाओं की प्रतिरोधी क्षमता की तुलना में अत्यंत अधिक है, और इनकी यही क्षमता इन्हें सर्वव्यापी बनाने में सहायता प्रदान करती है।

जीवाणु की कोशा की बाह्य सतह एक पॉली-सैकेराइड, लिपिड और प्रोटीन के समन्वय से बनी कोशाभित्ति द्वारा घिरी रहती है। इस भित्ति के अंदर जीवद्रव्य विद्यमान होता है, जो जीवद्रव्य कला द्वारा घिरा रहता है। जीवाणुओं का अभिरंजन (staining) उनके जीवद्रव्य कला तथा जीवद्रव्य के भौतिक तथा रासायनिक गुणों पर आश्रित होता है। जीवाणु की कोशाभित्ति में म्यूकोपेप्टाइड पदार्थ होता है, जिसमें दो प्रकार के अणु - ऐसिटिल ग्लूकोसेमीन और एसिटिल म्यूरेमिक ऐसिड एक दूसरे के बाद जुड़े रहते हैं। कुछ जीवाणुओं की कोशाभित्ति काइटिन की बनी होती है और कुछ में सेल्यूलोज़ भी होता है। जीवाणुओं की

कोशाभित्ति को घेरकर एक परत पायी जाती है जो अवपंक (slime) की बनी हुई होती है । यह परत जीवाणु की वृद्धि के समय फूलकर कड़ी बन जाती है और एक कैपसूल का निर्माण करती है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवाणुओं के लिए रक्षाकवच का कार्य करता है । इतना ही नहीं, यह कैपसूल जीवाणुओं के संचित खाद्य पदार्थों के संग्रहालय का रूप भी धारण करता है । इसी के भीतर जीवाणुओं के उत्सर्जी पदार्थ भी संग्रहित रहते हैं । कैपसूल के बनने में जिन तत्वों का योगदान रहता है, वे हैं - सेल्यूलोज़, लीवान, डेक्सट्रॉन, डेक्सट्रिन तथा पॉलीसैकेराइड । कैपसूल सृजन के कारण जीवाणुओं की रोग फैलाने वाली क्षमता बढ़ जाती है । इसका मूल कारण यह है कि जिन तंतुओं के भीतर इनका निवास होता है, उनके रक्त में उपस्थित श्वेत रक्त कणिकाएं जीवाणुओं का विनाश करने में अक्षम सिद्ध हो जाती हैं । जीवाणुओं की गतिशीलता उनमें उपस्थित कशाभिका (flagellum) के कारण होती है, परंतु कुछ जीवाणु अचल भी होते हैं क्योंकि यह कशाभिका से वंचित होते हैं ।

जीवाणुओं का जीवद्रव्य कणिकामय अथवा पारदर्शक तरल पदार्थ के रूप में होता है । किशोर आयु के जीवाणुओं में रिक्तिकाओं का अभाव होता है, जबकि परिपक्व अवस्था के जीवाणुओं में इनका विकास होने लगता है । वयस्क जीवाणुओं में पायी जानेवाली रिक्तिकाओं का प्रमुख कार्य है - कोशारस व भोजन को संग्रहित करना । इनके जीवद्रव्य में वसा, ग्लाइकोजन तथा वाल्यूटिन-कण पाये जाते हैं । कुछ विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं के जीवद्रव्य में गंधक के कण भी विद्यमान होते हैं ।

जीवाणु वैज्ञानिक डॉ. ग्राम ने 1884 में जीवाणुओं के अभिरंजन की एक विशिष्ट क्रिया का आविष्कार किया । इस क्रिया के अंतर्गत जीवाणु को एक स्लाइड अर्थात कांच की एक छोटी पट्टी पर रखकर, उस पर क्रिस्टल बैंगनी, रंजक तथा ईथाइल ऐल्कोहॉल के घोल का लेप लगाकर अभिरंजन किया गया । तत्पश्चात् आयोडीन के जलीय घोल में इसका पुनः अभिरंजन किया गया । इस क्रिया के फलस्वरूप सभी जीवाणु बैंगनी रंग में रंगे हुए दिखाई पड़ने लगे । अब इस आलेप को 95% ईथाइल ऐल्कोहॉल में धोया गया, जिससे कुछ जीवाणुओं ने अपना बैंगनी रंग छोड़ दिया । परंतु कुछ तब भी बैंगनी ही रह गये । इन बैंगनी रंग में रंगे जीवाणुओं को ग्राम पॉजीटिव की संज्ञा दी गयी और जिन जीवाणुओं ने बैंगनी रंग को छोड़ दिया था, उन्हें सैफ्रेनिन (safranin) से पुनः अभिरंजित किया गया, जिससे वे लाल रंग के हो गये । इन लाल रंग में रंगे जीवाणुओं को ग्राम नेगेटिव जीवाणु कहा गया ।

ग्राम पॉजीटिव तथा ग्राम नेगेटिव जीवाणुओं में कई अंतर भी दृष्टिगोचर हुए । ग्राम निगेटिव (10-25 नैमी) की अपेक्षा ग्राम पॉजीटिव जीवाणुओं की कोशिका भित्ति मोटी (25-30 नैमी) पायी गयी । ग्राम निगेटिव जीवाणुओं की कोशाभित्ति का शुष्क भार कोशा के पूर्ण भार के 10-20 प्रतिशत पाया गया जो ग्राम पॉजीटिव में लगभग 20-45 प्रतिशत था । ग्राम निगेटिव जीवाणुओं की कोशाभित्ति में लिपिड्स की मात्रा अत्यंत अधिक (10-25 प्रतिशत) होती है, जबकि ग्राम पॉजिटिव जीवाणुओं की कोशाभित्ति में लिपिड की मात्रा ग्राम नेगेटिव जीवाणुओं की कोशाभित्ति की तुलना में अपेक्षाकृत अत्यंत कम (1-4%) होती है । महत्वपूर्ण बात यह है कि ग्राम निगेटिव जीवाणुओं की रोगजनक क्षमता ग्राम पॉजिटिव जीवाणुओं की तुलना में अधिक होती है, इन्हें पेनीसिलिन से नष्ट कर पाना संभव नहीं होता है । जबकि ग्राम पॉजिटिव जीवाणु पेनिसिलिन से नष्ट किये जा सकते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि ग्राम निगेटिव जीवाणुओं की प्रतिजैविकों के प्रभाव के प्रति प्रतिरोधी क्षमता ग्राम पॉजीटिव जीवाणुओं की तुलना में अधिक है । इसी कारण आज तक इनका समूल विनाश संभव नहीं हो पाया है । कुछ अत्यंत शक्तिशाली प्रतिजैविकों के प्रभाव से ग्राम निगेटिव जीवाणु सुप्त अवस्था को तो प्राप्त कर सकते हैं परंतु अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होने पर सक्रीय हो जाते हैं ।

जीवाणु के घातक रूप :

विभिन्न प्रकार के जीवाणु अपने-अपने गुणों के

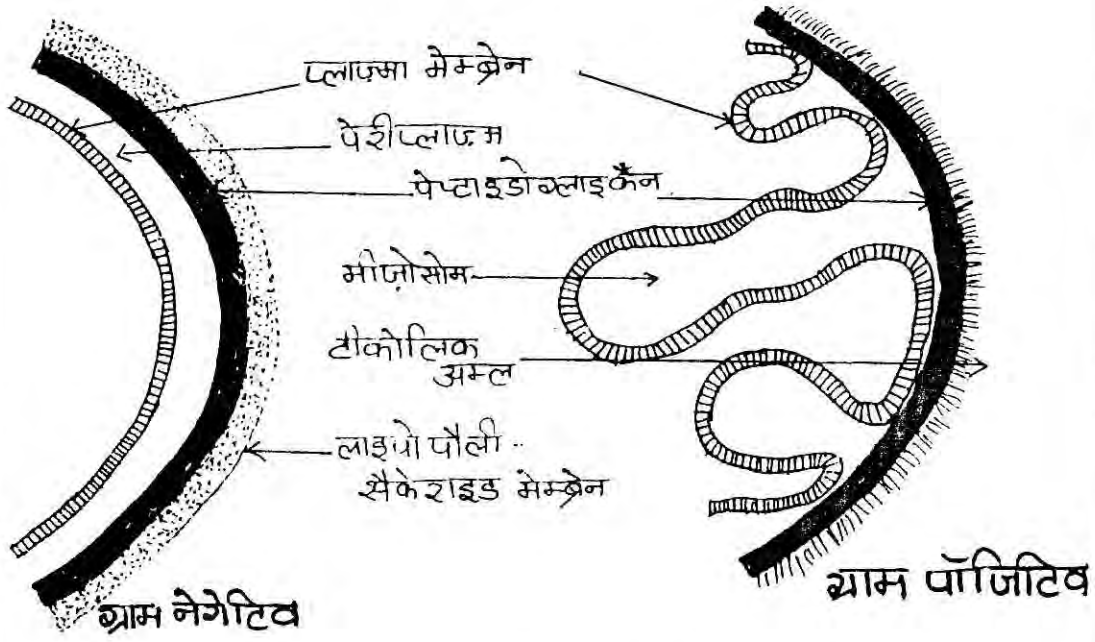

चित्र-2 : ग्राम निगेटिव व पॉजीटिव जीवाणुओं की कोशा-भित्ति रचना में अंतर

अनुसार हमें क्षतिग्रस्त करते हैं । कुछ हमारे शरीर पर सीधा प्रहार करते हैं तो कुछ हमारे अत्यंत उपयोगी साधनों का समूल विनाश कर देते हैं । जीवाणु की कई जातियां हमारे भोज्य पदार्थों को दूषित कर उन्हें विषैला बना देती हैं । ये फल, शाक, मक्खन, मांस, व मछली पर सीधा आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर देते हैं । इन जीवाणुओं से निकला विषैला स्रवण खाद्य वस्तुओं को दूषित कर देता है । कुछ जीवाणुओं में भूमि अर्थात मृदा में उपस्थित नाइट्रेट को स्वतंत्र नाइट्रोजन व अमोनिया में बदलने की शक्ति होती है । उनके इस गुण के कारण भूमि की उर्वरकता को क्षति पहुंचती है । जीवाणुओं की इस प्रक्रिया को विनाइट्रीकरण कहते हैं और उन जीवाणुओं को विनाइट्रीकारक जीवाणु कहा जाता है । स्पाईरोकीट साईटोफेज जीवाणु रुई के रेशों का नाश कर उन्हें मुलायम से कड़े रुप में बदल देता है ।

मवेशियों में ऐन्थ्रैक्स एक घातक रोग है, जो बेसीलस ऐन्थ्रैसिस जीवाणु द्वारा फैलाया जाता है । पशुओं में ब्लैक लेग रोग भी क्लौस्ट्रिडियम जीवाणु के संक्रमण का परिणाम है । जहां तक बीमारियों की गिनती है, मनुष्यों में जीवाणु अनेक जानलेवा घातक बीमारियों को जन्म देते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख बीमारियां एवं उनको जन्म देनेवाले जीवाणु का नाम तालिका-1 में दिया गया है । कुछ जीवाणु पौधों में अनेक रोग उत्पन्न करते हैं । इनका विवरण तालिका-2 में दिया गया है ।

कृषि उद्योग में जीवाणुओं का योगदान :

कृषि के क्षेत्र में कुछ जीवाणुओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । ये जीवाणु अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण भूमि की उर्वरकता को बढ़ाते हैं । जीवाणु

लेग्यूमनस पौधों की जड़ों की गांठों में उपस्थित होते हैं। इनका कार्य होता है वायुमंडल की स्वतंत्र नाइट्रोजन को ग्रहण कर उनको उनके यौगिकों के रूप में परिवर्तित करना। नाइट्रोसोमोनास जीवाणु, अमोनिया को आत्मसात कर पहले उसके नाइट्रोजन को नाइट्राइट में बदलते हैं, जिसे नाइट्रोबैक्टर द्वारा नाइट्रेट में बदल दिया जाता है। कुछ और जीवाणु मृत पौधों तथा जंतुओं के शरीर पर आक्रमण कर उनमें उपस्थित जटिल अवयवों को सरल अवयवों, जैसे - नाइट्रेट सल्फेट, जल तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड में रूपांतरित कर देते हैं, जो भूमि में विलीन होकर उसकी उर्वरकता बढ़ाते हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में जीवाणुओं का योगदान :

जीवाणुओं का औद्योगिक क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहता है, जिनमें से कुछ प्रमुख हैं -

(i) तंबाकू उद्योग - बेसिलस मेगाथेरियम माइकोकौकस किण्वन प्रक्रिया द्वारा तंबाकू की पत्तियों में स्वाद एवं सुगंध की सृष्टि करता है जो उसके मूल्य में वृद्धि करता है।

(ii) सिरका उद्योग - ऐसिटोबैक्टर ऐसिटी नामक जीवाणु द्वारा चीनी के घोल से सिरका बनता है।

(iii) चाय उद्योग - चाय की पत्तियों में विशेष स्वाद लाने के लिए कुछ विशिष्ट प्रकार के जीवाणु, जैसे - माइकोकौकस कौन्डिसैन्स का सहारा लिया जाता है जो किण्वन की प्रक्रिया द्वारा चाय की पत्तियों पर क्यूरिंग कर उसमें एक खास स्वाद पैदा करते हैं।

(iv) रेशे की रैटिंग - इस विधि के अंतर्गत जूट सन (Flax) तथा पटसन (Hemp) के रेशों का सृजन होता है। इस प्रक्रिया में निर्धारित तनों को कुछ दिनों के लिए पानी में डुबोकर, उन्हें सड़ने दिया जाता है, और बाद में इन्हें पीट-पीटकर इनसे रेशों को अलग किया जाता है। तनों से रेशों को अलग करने की विधि को ही रैटिंग कहा जाता है। इस क्रिया को सार्थक रूप प्रदान करने का श्रेय जाता है, पानी में पाये जाने वाले जीवाणु क्लॉस्ट्रीडियम एसिटोब्यूटाइलिकम को। सन बनाने के लिए लाइनम यूसिटैटीसिमम्, पटसन बनाने के लिए कैनाबिस सैटाइवा तथा जूट बनाने के लिए कौरकोरस कैपस्यूलैरिस के तनों का प्रयोग किया जाता है।

(v) चमड़ा उद्योग - कुछ जीवाणुओं में जंतुओं की त्वचा में उपस्थित वसा को विघटित करने की अपार क्षमता होती है। चमड़े को प्रयोग योग्य बनाने के लिए उन सहायक जीवाणुओं को उपयोग में लाया जाता है, जो विघटन की क्रिया द्वारा त्वचा पर उपस्थित बाल को उससे अलग कर उसे प्रयोग योग्य बना देते हैं।

(v) ऐल्कोहॉल उद्योग - क्लौस्ट्रीडियम ऐसिटोब्यूटाइलिकम जीवाणु की सहायता से चीनी के घोल से ऐल्कोहॉल तैयार किया जाता है।

औषधियों के क्षेत्र में :

जीवाणु जहां एक ओर रोगों की उत्पत्ति का कारण हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ जीवाणुओं के महत्वपूर्ण सहयोग द्वारा रोगों का उपचार भी संभव होता जा रहा है। जीवाणुओं के सार्थक प्रयोग से ही अनेक प्रतिजैविकों का निर्माण किया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख प्रतिजैविक तथा उनके स्रोत जीवाणु का नाम इस प्रकार है -

स्ट्रेप्टोमाइसीन - स्ट्रेप्टोमाइसिस ग्रीसस; *नीयोमाइसीन* - स्ट्रेप्टोमाइसिस फ्रेडी; *टेरामाइसीन* - स्ट्रेप्टोमाइसिस राइमोसस; *एरिथ्रोमाइसीन* - स्ट्रेप्टोमाइसिस इरिथ्रियस; *बेसिट्रासिन* - बेसलस सबटिलिस; *थाइरोथ्रिन* - बेसिलस ब्रेविस; *पॉलीमिक्सिन बी* - बेसिलस पॉलीमिक्सा जीवाणुओं से प्रतिजैविक गुण प्राप्त करते हैं।

इसी प्रकार स्ट्रेप्टोमाइसिस जीवाणु की अन्य अनेक जातियां और भी अनेक प्रतिजैविकों के निर्माण में अपना योगदान प्रदान करती हैं। विटामिन बी-2 जीवाणु क्लौस्ट्रिडियम ऐसिटोब्यूटाइलिकम के किण्वन की क्रिया द्वारा निर्मित होता है। कुछ विशिष्ट जीवाणु - जैसे एसचेरिशिया कोलाई मनुष्य एवं अन्य जंतुओं की अंतड़ियों में निवास कर विटामिनों का सृजन करते हैं, और इस प्रकार, उन्हें बिना जताये उनके शरीर की प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाकर उनका उपकार करते हैं।

मल (Sewage) व्यवस्था में :

कृत्रिम जलाशयों में मल, मूत्र आदि एकत्रित कर जीवाणु द्वारा उनका ऑक्सीकरण किया जाता है।

तालिका-1 : मनुष्यों में होनेवाले रोग तथा उनके लिए जिम्मेदार जीवाणुओं के नाम

रोग	जीवाणु
यक्ष्मा / तपेदिक	माइको बैक्टीरियम ट्यूबरक्लॉसिस
न्यूमोनिया	स्ट्रेप्टोकोकस न्यूमोनी
हैजा	विब्रियो कौलोरी
महामारी (प्लेग)	पाश्चुरैला पेस्टीस
अतिसार	बैसीलस कोलाई
पीलिया	लेप्टोस्पाइरा इक्टेरो-हीमोरेजी
कुष्ठ रोग (कोढ़)	माइकोबैक्टीरियम लेप्री
काली खांसी	बोर्डेटेला पर्टासिस
धनुष्टंकार (Tetanus)	क्लास्ट्रिडियम टिटैनी
टाइफॉयड	सैलमोनेला टाइफी
डिप्थैरिया	कौरेनी बैक्टीरियम डिप्थीरी
सूजाक (Gonorrhoea)	नाइजीरिया मोनोरही

तालिका-2 : पौधों में होनेवाले रोग तथा उनके लिए जिम्मेदार जीवाणु

रोग	पौधा	जीवाणु
लालधारी	गन्ना	स्यूडोमोनास सूब्री
चावल की अंगमारी (Blight of Paddy)	चावल	जैन्थोमोनास ओराइजी
टूण्डू (Bactarial Vat)	गेहूं	कॉर्नीबैक्टेरियम ट्रिटिसाई
कोणीयपर्ण चित्ति	कपास	जैन्थोमोनास मालवेसिएरम
कैंकर	नींबू,	फाइटोमोनास सीट्री
म्लानि (Wilt)	संतरा	स्यूडोमोनास सोलेनेसिएरम
दग्ध अंगमारी (Fire blight)	सेब	इर्वीनिया एमाइलोवोरा

दुग्धशाला (डेयरी) में :

कुछ जीवाणु दूध में पायी जाने वाली शर्करा - लैक्टोज को लैक्टिक अम्ल में बदलने की क्षमता रखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप दूध खट्टा हो जाता है। दूध का खट्टा बनना जीवाणुओं की किण्वन प्रक्रिया का परिणाम है। खट्टे दूध से बनने वाले कुछ पदार्थ हैं :- **दही** - स्ट्रेप्टोकौकस लैक्टिस, **पनीर** - लैक्टोबेसिलस लैक्टिस, **योघर्ट** - लैक्टोबेसिलस बल्गैरिकस एवं स्ट्रेप्टोकौकस थर्मोफिलस, **मक्खन** - स्ट्रेप्टोकौकस लैक्टिस नामक जीवाणुओं के सहयोग से बनते हैं।

हानिकारक जीवाणुओं से मुक्ति के उपाय :

हमारे शरीर में प्रवेश हेतु जीवाणुओं के लिए जो सबसे सरल मार्ग है, वह है हमारे खाद्य पदार्थों का माध्यम। जिन खाद्य पदार्थों को हम खुला छोड़ देते हैं उन पर वातावरण में उपस्थित जीवाणु अपनी रासायनिक क्रियाओं का प्रभाव उत्पन्न कर उन्हें विषाक्त बना देते हैं। इस प्रकार के भोजन के सेवन मात्र से हम अस्वस्थ हो जाते हैं। अतः खाद्य वस्तुओं को परिरक्षित करना आवश्यक है, जो कुछ विधियों द्वारा संभव है, जैसे -

1. हिमीकरण - कुछ खाद्य पदार्थों जैसे - मांस, मछली, सब्जियों तथा फलों को हिमीकरण यंत्रों अथवा रेफ्रिजरेटरों में रखकर उन्हें परिरक्षित किया जाता है। इस विधि द्वारा खाद्य पदार्थों को -10^0 से -18^0 सें. तक के तापमान में रखा जाता है। यह ऐसा तापमान है जिसमें सभी प्रकार के जीवों की जैविक गतिविधियों की सक्रियता नष्ट हो जाती है, जिसके कारण वे किसी भी वस्तु पर अपना प्रभाव छोड़ पाने में अक्षम हो जाते हैं।

2. डिब्बाबंदी - यह वह प्रक्रिया है जिसमें खाद्य पदार्थों को उच्च दाब तथा उच्च ताप पर (दाब लगभग 15 पौंड तथा ताप लगभग 125^0 से.) 60 से 90 मिनट तक गरम किया जाता है। ऐसा करने पर उनमें उपस्थित सभी सूक्ष्म प्राणी नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था से भोज्य पदार्थों को पार कराने के पश्चात उन्हें हवा बंद डिब्बों में भरकर बंद कर दिया जाता है, जो लंबे समय तक परिरक्षित रखता है।

3. परिरक्षकों के प्रयोग द्वारा - हम अपने खाद्य पदार्थों को परिरक्षकों के प्रयोग द्वारा भी जीवाणु-संक्रमण से नष्ट होने से बचा सकते हैं। कुछ मृतोपजीवी जीवाणु हमारे कुछ खाद्य पदार्थों, जैसे - फल, सब्जियां, मांस, मछली, शाक, मक्खन आदि को प्रभावित कर उन्हें नष्ट कर देते हैं। नमक अथवा चीनी मिलाकर यदि इन पदार्थों को रखा जाय, तो इन्हें सड़ने से बचाया जा सकता है। अत्यधिक मात्रा में नमक अथवा चीनी की मात्रा का प्रयोग, खाद्य पदार्थों में उपस्थित जीवाणुओं के जीवद्रव्य को कुंचित कर देता है, जिसके परिणामस्वरूप वे अपनी सक्रियता को खो बैठते हैं, जो अंततः उनकी वृद्धि को रोक खाद्य पदार्थों को परिरक्षित रखने में सहायता प्रदान करता है। इसी बात को ध्यान में रखकर अचार में अधिक नमक एवं मुरब्बों में अधिक चीनी मिलाकर उन्हें लंबी अवधि तक परिरक्षित रखा जाता है।

4. निर्जलीकरण - जिन खाद्य पदार्थों में पानी की मात्रा अधिक होती है, उन्हें यदि हम सुखा दें तो इनमें उपस्थित जीवाणु निष्क्रिय हो जाते हैं और वृद्धि क्षमता को खो बैठते हैं। ऐसा करने पर खाद्य पदार्थ कुछ अवधि के लिए खाने योग्य रह पाते हैं। फलों तथा सब्जियों में 20 प्रतिशत जल यदि रहने दिया जाय तब जीवाणुओं का इन पर संक्रमण नहीं होता।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2002) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी वर्ग)

सतह रूपांतरित झिल्लियों द्वारा उद्योग निर्गमित प्रदूषित जल समस्या का निराकरण

डी. जगमोहन
केंद्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान,
भावनगर (गुजरात)

पॉलीसल्फोन आधार झिल्ली का सतह रूपांतरण सल्फोप्रोपाईल अक्रलेट और अक्रायल अमायड से मुक्त मूलक बहुलकीकरण प्रक्रिया द्वारा चार विभिन्न प्रकार की झिल्लियां विकसित की गयीं। इनका प्रयोग उद्योगों द्वारा प्रदूषित रंजक द्रव, अकार्बनिक लवण, कार्बनिक लवण आदि को अस्वीकृत करने के लिए किया गया। इन परीक्षणों के लिए अत्योच्च छनन (अल्ट्राफिलट्रेशन) तकनीक का प्रयोग किया गया। जब रंजक द्रव इन झिल्लियों से प्रवाहित किया गया तो वह बहुत हद तक रंगविहीन हो गया। विभिन्न समयांतराल पर इनकी अस्वीकृति क्षमता और पारग्यमता का परीक्षण किया गया। इनका प्रयोग अकार्बनिक लवण अस्वीकृति के लिए भी देखा गया। इन झिल्लियों में 20-30 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड तथा 60-70 प्रतिशत सोडियम सल्फेट दूर करने की क्षमता पायी गयी। ढलाई की विभिन्न परिस्थितियों में विकसित इन झिल्लियों का लक्षणचित्रण अनेक प्रकार से किया गया, जैसे झिल्ली को पानी की पारग्यमता (फ्लक्स) और अणु-भार छेदक (MWCO) अलग अलग अणुभार के पॉलीइथीलीन ग्लाईकॉल का जी.पी.सी. (जेल परमियेशन क्रोमेटोग्राफी) द्वारा मूल्यांकन किया गया। अधिकाधिक औद्योगीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के फलस्वरूप पर्यावरणीय प्रदूषण में नित नयी वृद्धि हो रही है। इस लेख में जल प्रदूषण निवारण के लिए किये गये प्रयासों का उल्लेख किया गया है।

आज के इस वैज्ञानिक युग में जहां एक ओर नये -नये अनुसंधान और अन्वेषण हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर दिनोंदिन बढ़ते भौतिकतावाद और समय की मांग के साथ बढ़ते औद्योगीकरण से पर्यावरण पर अत्यंत घातक प्रभाव पड़ रहा है। जल, वायु एवं जमीन हमारे पर्यावरण के तीन महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनका मनुष्यों, पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवों के साथ सीधा संबंध है। मानव जीवन सुखमय तभी है जब पर्यावरण या प्राकृतिक वातावरण प्रदूषण रहित हो। इस प्रदूषण का कारण है - बढ़ती हुई आबादी और औद्योगीकरण में आयी तेजी। औद्योगीकरण ने आज मानव के लिए सुविधाओं का अंबार लगा दिया है। इन सब भौतिक साधनों के साथ-साथ औद्योगीकरण ने हमें जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और मृदा प्रदूषण का उपहार भी प्रदान किया है। अधिकाधिक औद्योगीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के फलस्वरूप पर्यावरणीय प्रदूषण में नित्य नयी वृद्धि हो रही है।

आज हमारे देश की विशाल आबादी के एक बड़े हिस्से को पीने का साफ पानी भी उपलब्ध नहीं है। जल प्रदूषण पर्यावरण संरक्षण के लिए एक बड़ी चुनौती है। क्या हमारे पूर्वजों ने सोचा था कि पीने का शुद्ध पानी बोतलों में बिका करेगा। आज शुद्ध मिनरल पानी की

बोतलें कई नामों से बाजार में बिक रही हैं। इसका एक मात्र कारण पानी का अशुद्ध व प्रदूषित होना है। ज्यादातर बीमारियां अशुद्ध जल के पीने से ही होती हैं।

प्राकृतिक पर्यावरण में जल प्रदूषण का मुख्य कारण रासायनिक गंदगी और कारखानों का कूड़ा-करकट, नदियों तथा अन्य जल स्रोतों में बहा देना है। उद्योग केवल दूषित जल ही नहीं छोड़ते बल्कि यंत्रों को ठंडा रखने के लिए भी ये काफी जल का प्रयोग करते हैं। इससे विविध उपयोग में आनेवाले जल की गुणवत्ता के साथ-साथ मछलियों एवं अन्य जल जीवों के अस्तित्व पर भी एक प्रश्न चिन्ह लग गया है। नदी-नालों में बहता औद्योगिक अम्लीय जल आसपास की मृदा को भी प्रभावित करता है। इस प्रदूषित वातावरण के बीच मानव की स्थिति ऐसी है कि व्यक्ति पानी के बीच रहकर भी प्यासा है। लोगों का यह भी मानना है कि अगर कोई तीसरा विश्व युद्ध हुआ तो वह जल के लिए ही होगा, अर्थात हम कह सकते हैं कि जल की महत्ता पूर्व की अपेक्षा वर्तमान में कहीं अधिक हो गयी है।

केंद्रीय नमक व समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर, इस झिल्ली तकनीक पर बहुत समय से कार्य कर रहा है। सी. एस. एम. सी. आर. आई. ने स्वचालित ढलाई एवं लेपन मशीन द्वारा विभिन्न प्रकार की पतली फिल्म झिल्लियां निर्मित की हैं। प्रतिदिन निम्न दाब पर 40,000 लीटर की क्षमतावाला प्रतिवर्ती रसाकर्षण अपक्षारीकरण यंत्र तैयार किया गया और एम. आर. एल., चैनई (अब सी. पी. सी. एल) में स्थापित किया गया। इस संयंत्र का उपयोग मलीय पानी को संशोधित करने के लिए किया जा रहा है। संस्थान द्वारा द्वि-ध्रुवीय झिल्लियां विकसित की गयीं, जो घुले हुए ऋणायन और धनायन को क्रमशः उनके अम्ल तथा क्षार में परिवर्तित करती हैं, जिनका फिर से उपयोग किया जा सकता है।

नवंबर 1999 में महासमुद्री तूफान के दौरान उड़ीसा के प्रभावग्रस्त लोगों के लिए पतली झिल्लियों पर आधारित 2 संयंत्र स्थापित करके सुरक्षित पेय जल उपलब्ध कराने का कार्य युद्धस्तरीय गति से किया गया। इस संयंत्र से प्रतिदिन 15,000 लीटर अच्छी गुणवत्ता वाला पेय जल उत्पन्न होता है जो नवंबर 1999 के बाद आज तक उक्त तथा आसपास के गांवों में टैंकर द्वारा लोगों तक पहुंचाया जाता है।

इसी श्रृंखला में हमने झिल्लियों की सतह को रूपांतरित करके संशोधन कार्य शुरू किया है। इस कार्य में हमारा प्रयत्न रहा कि उद्योगों से निकाला गया प्रदूषित द्रव्य (जिसमें पानी के अलावा रंजक द्रव, अकार्बनिक लवण, कार्बनिक पदार्थ आदि शामिल होते हैं) को झिल्ली प्रौद्योगिकी द्वारा अलग करके कुछ हद तक उपयोगशील बनाया जा सके। इन प्रयोगों के लिए अत्योच्च छनन (अल्ट्राफिल्टरेशन) तकनीक का इस्तेमाल किया गया। आधार झिल्लिका, पॉलीसल्फोन प्रबलित सूक्ष्म निस्पंदन झिल्ली तैयार की गयी और मुक्त मूलक बहुलीकरण प्रक्रिया (Free radical polymerization) द्वारा इस पर सतह रूपांतरण किया गया। इस तरह हमने चार विभिन्न प्रकार की झिल्लियां SPA1, SPA2, AM1 और AM2 तैयार की हैं।

SPA झिल्लियों का सल्फोप्रोपायल अक्रलेट और AM झिल्लियों को एक्रायलअमायड से क्रॉसलिंक्ड पॉलीमरिक संरचना के आधार पर परिवर्तित उपचारित किया गया। इसकी निर्माण विधि में भी विविधता बरती गयी। SPA1, AM1 को हमने कक्ष तापमान के आधार पर तथा SPA2, AM2, को 55^0C पर 30 मिनिट के लिए उष्मांकित कर परिवर्तन की जांच की।

विभिन्न परिस्थितियों में निर्मित इन झिल्लियों का परीक्षण प्रदूषित रंजक द्रव के लिए किया गया। रंजक द्रव झिल्लियों में से प्रवाहित करके अस्वीकृत क्षमता और पारगम्यता के लिए परखा गया। इसका लक्षणचित्रण विभिन्न प्रकार से किया गया, जैसे पानी की पारगम्यता, अणु-भार छेदक तथा अकार्बनिक लवण अलग करने की क्षमता आदि।

इस कार्य के लिए एल्ड्रिच तथा एस. डी. फाइन कैमिकल्स कंपनियों के रसायनों को प्रयोग में लाया गया, जैसे सल्फोप्रोपाइल एक्रलेट (एल्ड्रिच) और एक्रायल-अमाइड (एस. डी. फाइन कैमिकल्स), अलग-अलग

अणु-भार वाले पॉलीइथीलन ग्लाइकोल (एल्ड्रिच) सोडियम क्लोराइड, सोडियम सल्फेट, कैल्शियम क्लोराइड, मैग्नीशियम सल्फेट (एस. डी. फाइन कैमिकल्स)। इन सब परीक्षणों के लिए अतिसूक्ष्म निस्पंदन का प्रयोग किया गया। इन झिल्लियों की अणुभार छेदक क्षमता को जी. पी. सी. तकनीक द्वारा नापा गया और अकार्बनिक लवण पृथक्कीकरण का मूल्यांकन विद्युत चालकता के माप से किया गया।

इस सब प्रयोगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है ।

(क) रंजक द्रव अस्वीकृति क्षमता :

उपयुक्त झिल्लियों को पानी की पारग्यमता के पश्चात उनके द्वारा (200 मिली.) रंजक द्रव को प्रवाहित कर विभिन्न समयांतराल पर परीक्षण किया गया। हमारा प्रथम प्रयास यह रहा कि रंजक द्रव का रंग किस हद तक हम कम कर सकते हैं। हमने देखा कि जब यह द्रव अत्योच्च छनन (अल्ट्राफिल्ट्रेशन) यूनिट में स्थित झिल्ली से प्रवाहित होता है तो रंगविहीन हो जाता है। हमने इस रंजक द्रव को समयांतरल पर उसकी पारग्यमता और पराबैंगनी विकिरणों द्वारा अस्वीकृति क्षमता को मापा। SPA1 और SPA2 झिल्लियां जो प्रारंभ में 20-24 जी. एफ. डी. प्रवाहण दिखाते थे, 60 मिनट बाद 10-11 जी. एफ. डी. दिखाने लगे। इसका कारण हम यह कह सकते हैं जो छिद्र शुरुआत में खुले हुए थे, कुछ समय बाद रंजक द्रव का सांद्रण बढ़ने से पूरी तरह से बंद होने लगे और पारग्यमता में कमी पायी गयी। AM1 और AM2 झिल्लियां बहुत संघनित थीं, जो इनकी निम्न पारगम्यता से ज्ञात होता है। समय की गति से इन झिल्लियों की अस्वीकृति क्षमता और पारग्यमता में कोई फर्क नहीं पाया गया।

परीक्षण के दौरान इन झिल्लियों में उच्च रंजक द्रव अस्वीकृति पायी जाने पर इन्हीं झिल्लियों का पुन: तीन बाद परीक्षण किया गया। आश्चर्यजनक बात देखने को यह मिली की उनकी अस्वीकृति क्षमता में थोड़ी वृद्धि हुई और पारग्यमता में कोई परिवर्तन नहीं था। इससे हम यह कह सकते हैं कि झिल्लियां जल्दी खराब नहीं होती हैं। अधिकतर झिल्लियों में देखा गया है कि कुछ समय पश्चात् अस्वीकृति क्षमता और पारग्यमता में निरंतर अवरोध होता है और इनका पुन: इस्तेमाल भी संभव नहीं है। पर संस्थान द्वारा विकसित झिल्लियां इन सब परेशानियों का कुछ हद तक निवारण करने में सक्षम हैं।

(ख) अणुभार छेदन (मॉलीक्यूलर वेट कट ऑफ) :

झिल्लियों का अणुभार छेदन पता करने के लिए अलग-अलग अणुभार वाले पॉलीइथीलीन ग्लाईकोल 500 पी.पी.एम. को इनके द्वारा प्रवाहित किया गया। इसका निर्णय 90 प्रतिशत अस्वीकृत क्षमता के आधार पर दिया गया है। SPA1, SPA2, AM1, AM2 झिल्लियों का आण्विक भार विलंगन मान 9K, 6K, 4K और 1K देखा गया। उच्च आण्विक भार झिल्लियां अर्थात SPA1 और SPA2 ने 4 किग्रा./सेमी^{2} के परिचालक दाब पर 38 और 30 जी. एफ. डी. पानी का प्रवाह दिखाया। जबकि AM1 और AM2 कम अणुभार के कार्बनिक लवण अस्वीकृत करने के लिए उपयुक्त हैं। परंतु इनकी अप्रवाह पारगम्यता बहुत कम देखी गयी जबकि SPA1 और SPA2 में फ्लक्स उपयुक्त है, लेकिन यह 5K से उच्च अणुभार वाले लवणों के लिए उपयुक्त है।

(ग) कार्बनिक लवण अस्वीकृति क्षमता :

हमने इन झिल्लियों का परीक्षण अकार्बनिक लवण अलग करने के लिए भी किया। 500 पी.पी.एम. वाले जलीय द्रावण के परीक्षण में 4 किग्रा./सेमी^{2} के परिचालक दाब पर सतह परिवर्तित झिल्लियों ने सोडियम सल्फेट के लिए 70 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड के लिए 15-20 प्रतिशत, मैग्नेशियम सल्फेट के लिए 20-25 प्रतिशत और कैल्शियम क्लोराइड के लिए 3-5 प्रतिशत, अस्वीकृत (वियोजन) क्षमता देखी गयी। इसका विवरण तालिका-1 में दिया गया है।

इन प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि सतह रूपांतरण करने पर इन झिल्लियों में रंजक द्रव का रंग कम करने की क्षमता बढ़ाई जा सकती है और अकार्बनिक लवण जैसे

तालिका-1 : विभिन्न विकसित झिल्लियों की अकार्बनिक लवणों के लिए पृथक्कीकरण क्षमता एवं पारगम्यता

म. न.	पानी की पारगम्यता (जी.एफ.डी.)	फ्लक्स (जी.एफ.डी.)	पृथक्कीकरण (%)				पानी की पारगम्यता (जी.एफ.डी.)
			सोडियम क्लोराइड	सोडियम सल्फेट	कैल्शियम क्लोराइड	मैग्नेशियम सल्फेट	
SPA1	48	44	14.04	69.20	3.97	21.10	4
SPA2	42	38	10.20	75.51	8.68	19.23	32
AM1	9	7	21.00	68.23	2.48	26.20	8
AM2	9	6	25.96	71.59	3.40	28.50	7

सोडियम क्लोराइड, सोडियम सल्फेट की मात्रा को भी काफी हद तक कम किया जा सकता है । इस तरह से निर्गमित पानी को रंग, गंध विहीन करने में हम सफल रहे हैं और अब इसे संपूर्ण जीवाणुरहित बनाने की दिशा में संशोधन कार्य जारी है, और हमें आशा है कि इस कार्य द्वारा पानी की अशुद्धता, पानी की कमी, पर्याप्त मात्रा में पीने योग्य पानी की उपलब्धि आदि मामलों में हम सहायता कर सकेंगे । ❑ ❑ ❑

हिं. वि. सा. परिषद के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं सचिव सम्मानित

अगस्त 29 - 30, 2003 को विशाखापट्टनम में आयोजित 'तृतीय राष्ट्रीय विज्ञान संचरण सम्मेलन' में हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा. प. अ. केंद्र के पूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर (डॉ.) आर. चिदंबरम (प्रधानमंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार, होमी भाभा प्रोफेसर तथा पूर्व अध्यक्ष, परमाणु ऊर्जा आयोग) को विज्ञान संचरण में उल्लेखनीय योगदान हेतु 'ऑनरेरी फैलोशिप' से सम्मानित किया गया ।

इसी सम्मेलन में परिषद के भूतपूर्व सचिव डॉ. लूथरा को विज्ञान लोकप्रियकरण एवं संचरण हेतु इस्वा (ISWA) सम्मान भी भेंट किया गया ।

'वैज्ञानिक' की ओर से दोनों महानुभावों को बधाई एवं शुभकामनाएं । **- संपादक**

हिं. वि. सा. परिषद की कार्यकारिणी (2003 - 2005)

अध्यक्ष : **डॉ. के. बी. सैनिस**
उपाध्यक्ष : **श्री स्वराज कुमार अग्रवाल**
सचिव : **श्री जय प्रकाश त्रिपाठी**
सह-सचिव : **डॉ. सुधाकर कोकाटे**
कोषाध्यक्ष : **श्री राम नरेश शर्मा**

सदस्य : **श्री रमेश चंद्र पंत**
श्री डी. वी. एच. राव
श्री विपुल सेन
श्री बी. पी. बडगुजर
श्री मनीष कुमार
श्री सत्य प्रकाश प्रभाकर

विज्ञान-संचारकों के लिए आयोजित द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (ICSC-2003)* में द्वितीय 'पोस्टर पुरस्कार

वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास हेतु कुछ प्रयास

डॉ. राज नारायण पांडेय एवं डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

संपादक - 'वैज्ञानिक',
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085.

वैज्ञानिक मनोवृत्ति (दृष्टिकोण) या 'साइंटिफिक टेंपर' जीवन तथा आस-पास घट रही घटनाओं को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति कुछ लोगों में बचपन से ही देखी जाती है, और कुछ में वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने तथा वैज्ञानिक सिद्धांतों को समझने के बाद विकसित होती है। आज विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में हुई प्रगति से कोई भी व्यक्ति अछूता नहीं है। अतः आवश्यक है कि सभी में वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकसित की जाय। प्राकृतिक घटनाओं के पीछे निहित वैज्ञानिक सिद्धांतों की जानकारी लोगों को दी जाय। विज्ञान का सामान्य ज्ञान सभी को प्रदान किया जाय। संचार माध्यमों से वैज्ञानिक जानकारियों/सूचनाओं को जन सामान्य तक पहुंचाया जाय। इस कार्य में वैज्ञानिक समुदाय ही महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है, यह उसकी व्यावसायिक जिम्मेदारी भी है। इस संदर्भ में 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद', भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई गत तीन-दशकों से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद (हिं.वि.सा.प.) की स्थापना हिंदी भाषा के माध्यम से विज्ञान को लोकप्रिय बनाने, वैज्ञानिक साहित्य सृजन करने तथा लोगों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति उत्पन्न करने के उद्देश्य से वर्ष 1968 में की गयी। तब से यह संस्था विज्ञान के प्रचार-प्रसार के कार्यों में जुटी हुई है। विविध वैज्ञानिक विषयों पर संगोष्ठियां आयोजित करना, छात्रों के लिए वैज्ञानिक प्रश्नमंच, विज्ञान-वार्ताएं, 'वैज्ञानिक' पत्रिका का प्रकाशन आदि कार्य हि.वि.सा.प. द्वारा नियमित रूप से किये जा रहे हैं।

1. संगोष्ठियां, सेमिनार तथा कार्यशालाएं

विगत तीन दशकों के दौरान हि.वि.सा.प. ने 38 से भी अधिक संगोष्ठियां, 9 सेमिनार तथा 4 कार्यशालाएं आयोजित की हैं। अधिकांश संगोष्ठियों का आयोजन मुंबई में किया गया। 12 संगोष्ठियां मुंबई से बाहर भोपाल (1989), इंदौर (1990), पटना (1992), हैदराबाद (1994), मैसूर (2002), पुणे (1995), बडोदरा (1996), नैनीताल (2001), जोधपुर (1998), शिमला (2001) तथा भुवनेश्वर (2003) में आयोजित की गयीं। जहां मुंबई में आयोजित संगोष्ठियों में भा. प. अ. केंद्र में कार्यरत वैज्ञानिकों तथा अन्य कर्मचारियों ने भाग लिया, वहीं मुंबई से बाहर की संगोष्ठियों में विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा विज्ञानकर्मियों की प्रतिभागिता अधिक रही। बाहर की संगोष्ठियों में विषयों का चुनाव स्थानीय महत्व को ध्यान में रखकर किया गया, तथापि इनमें परमाणु ऊर्जा की भूमिका के बारे में चर्चा अवश्य की गयी।

वर्ष 1992 से प्रतिवर्ष 'नोबल पुरस्कार किसे और क्यों' विषय पर मुंबई में सेमिनार का आयोजन होता रहा है। इन सेमिनारों में प्रख्यात वैज्ञानिकों तथा विषय-विशेषज्ञों द्वारा व्याख्यान दिये जाते हैं। समय-समय पर आयोजित कार्यशालाओं के अंतर्गत तकनीकी शब्दावली, संचार माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन, स्वस्थ जीवन शैली, कंप्यूटर में हिंदी का प्रयोग आदि विषयों पर चर्चा की गयी।

परमाणु ऊर्जा विभाग के परिवारों के सदस्यों के लिए अणुशक्तिनगर, मुंबई में पिछले 7 - 8 वर्षों से एक-दिवसीय संगोष्ठी का विशेष आयोजन किया जा रहा है।

** इस संगोष्ठी की जानकारी संगोष्ठी समाचार के अंतर्गत दी गयी है।*

हृदय रोग, कैंसर, उच्चरक्त दाब, नेत्र, मन आदि विषयों पर अभी तक गोष्ठियां की जा चुकी हैं। इन गोष्ठियों के दौरान सदस्यों के साथ साथ परिवार के अन्य सदस्य भी सक्रिय रुप से भाग लेते हैं तथा बीमारियों के बारे में सुप्रसिद्ध डॉक्टर तथा विशेषज्ञों से वैज्ञानिक दृष्टिकोण जानने का भरसक प्रयास करते हैं।

2. विज्ञान प्रश्न मंच

गत 15 वर्षों से मुंबई में परमाणु ऊर्जा केंद्रीय विद्यालय के छात्रों के लिए विज्ञान प्रश्न मंच का आयोजन किया जाता रहा है। इन प्रश्नमंचों में परमाणु ऊर्जा केंद्रीय विद्यालयों से चुने गये 10 वीं कक्षा के विद्यार्थियों की चार प्रतियोगी टीमें भाग लेती हैं। इन टीमों का नाम सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों यथा भाभा, रमन, बोस तथा भटनागर के नाम पर रख कर विद्यार्थियों में नयी जागृति लाने का प्रयास होता है। प्रश्ममंच के अवसरों पर नवीं कक्षा के लगभग 500 विद्यार्थी तथा शिक्षक, दर्शक श्रोताओं के रुप में उपस्थित रहते हैं। प्रतियोगियों से विविध विषयों - जैसे भौतिकी, रसायनिकी, जैविकी, खगोलिकी आदि से संबंधित प्रश्न पूछे जाते हैं। प्रश्नों के चयन में केंद्र के वैज्ञानिकों ने इस बात पर ध्यान रखा कि प्रश्नों से विद्यार्थियों में उत्सुकता अवश्य जगे। हाल के वर्षों में प्रश्नमंच के संचालन में कंप्यूटरों का भी प्रयोग किया गया। कार्यक्रमों के बाद प्रतियोगियों तथा शिक्षकों को भा. प. अ. केंद्र में स्थित रिएक्टरों तथा अन्य संयंत्रों को देखने के लिए ले जाया जाता है जहां प्रतियोगी वैज्ञानिकों से बातचीत कर अपनी जिज्ञासा शांत करते हैं और उनका दृष्टिकोण बृहत बनता है।

3. सहकर्मियों के लिए वैज्ञानिक विषयों पर संगोष्ठी

लगभग 10 वर्षों से हि.वि.सा.प. हर वर्ष सितंबर माह में हिंदी दिवस के अवसर पर भा.प.अ. केंद्र में सहकर्मियों के लिए एक-दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन करती आ रही है। संगोष्ठी में केंद्र के तकनीकी तथा प्रशासनिक वर्ग के कर्मचारी भाग लेते हैं। इन संगोष्ठियों में जनरुचि के विषयों को शामिल किया जाता है। अब तक इनमें पर्यावरण-प्रदूषण, खाद्य-उत्पादन एवं परिरक्षण, परमाणु ऊर्जा के शांतिमय प्रयोग, सूचना तकनीकी, स्वास्थ्य-रक्षा जैसे जनहित कि विषयों पर चर्चा की जा चुकी है। इन संगोष्ठियों में केंद्र के वैज्ञानिकों तथा बाहर की संस्थाओं से आमंत्रित विशेषज्ञों द्वारा व्याख्यान दिये गये। प्रतिभागियों को शंकाएं दूर करने हेतु प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इन कार्यक्रमों से सहकर्मियों में वैज्ञानिक मनोदशा के निर्माण में सहायता मिली है।

4. विज्ञान पत्रिका 'वैज्ञानिक' का प्रकाशन

'वैज्ञानिक' का प्रथम अंक वर्ष 1969 में प्रकाशित हुआ, तब से यह पत्रिका त्रैमासिक पत्रिका के रुप में लगातार प्रकाशित होती आ रही है। इस पत्रिका में विज्ञान के प्रगत विषयों तथा लोकप्रिय विषयों पर लेख प्रकाशित किये जाते रहे हैं। विज्ञान की नयी जानकारियों को 'विज्ञान के बढ़ते कदम', 'विज्ञान समाचार' आदि स्तंभों के अंतर्गत प्रकाशित किया जाता है। समय-समय पर बालकों की जिज्ञासा बढ़ाने हेतु विशेष लेख प्रकाशित किये जाते रहे हैं। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक महत्व के विशिष्ट विषयों पर 'विशेषांक' प्रकाशित किये जाते रहे हैं। अब तक करीब 42 विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता के पुरस्कृत लेखों को भी 'प्रतियोगिता विशेषांक' के रुप में प्रकाशित किया जाता है। संपादकीय के माध्यम से विज्ञान संबंधी विभिन्न पहलुओं को भी प्रस्तुत किया जाता है। पाठकों की प्रतिक्रियाएं भी नियमित रुप से पत्रिका में छापी जाती हैं।

इस तरह 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' हिंदी के माध्यम से वैज्ञानिक सूचनाओं के प्रसार तथा लोगों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकसित करने का कार्य तीन दशकों से भी अधिक समय से करती आ रही है। परिषद द्वारा आयोजित 'स्वास्थ्य-श्रृंखला संगोष्ठियां' अत्याधिक लोकप्रिय हुई हैं। संगोष्ठियों से 'किरणित खाद्य' संबंधी भ्रांतियां दूर हुई हैं। अब किरणित प्याज, आलू, मसालों आदि के प्रति कोई दुराग्रह नहीं रहा। 'वैज्ञानिक' पत्रिका के माध्यम से लोगों को विज्ञान की आधुनिक जानकारी प्राप्त करने में मदद मिल रही है। अब जनसामान्य भी दैनिक जीवन की घटनाओं में निहित वैज्ञानिक सिद्धांतों से कमोवेश परिचित होने लगा है।

विज्ञान-कथा

अंतरिक्ष यात्राएं और मानवीय प्रयास

इरफान ह्यूमन
रिसर्च, 67 अंटा निकट मोहनी स्कूल,
शाहजहांपुर - 242 001.

मनुष्य आदिकाल से ही अंतरिक्ष को निहारता आया है। दिन में सूर्य तो रात के आकाश में बिखरे अनगिनत सितारों और चंद्रमा के साथ कभी धूमकेतु तो कभी उल्काओं की आतिशबाजी जैसी खगोलीय घटनाओं ने उसे सदैव आकर्षित और रोमांचित किया है। आकाश में उड़ने की इच्छा के साथ वह सदैव अंतरिक्ष में पहुंच कर चांद-तारों की सैर करने को लालायित रहा है। अब ज़रूरत थी किसी ऐसे साधन की जिससे अंतरिक्ष में पहुंचा जा सके। इसके लिए जिस साधन की कल्पना की गयी वह रॉकेट के रूप में हमारे सामने साकार हुई। वर्ष 1044 में चीन में बारूद (अग्निचूर्ण) का आविष्कार हुआ था, जिसका विवरण एक चीनी पुस्तक 'वु-त्युड्-याओं' में एक सूत्र के माध्यम से मिला। सन 1250 से 1280 के आसपास यूरोप के कई देशों को बारूद की जानकारी मिली। वहीं एक अरबी पुस्तक में बारूद और रॉकेटों की जानकारी मिली। इस श्रृखंला में अमरीकी वैज्ञानिक रॉबर्ट गोडार्ड द्वारा द्रव ईंधन युक्त रॉकेट से संबंधित आरंभिक शोधकार्य प्रारंभ किये और सन 1926 में उनके द्वारा पहली बार द्रव ईंधन युक्त रॉकेट का परीक्षण किया गया।

तत्कालीन सोवियत संघ ने, अब स्वतंत्र हो चुके कज़ाकिस्तान के बैकानूर लांच पैड से, अंतरिक्ष की दौड़ शुरू की थी, जहां से रूस ने दुनिया का पहला उपग्रह अंतरिक्ष में भेजा। मानवयुक्त अंतरिक्ष यानों से पहले काफ़ी मानवहीन अंतरिक्षयान भेजे गये। 4 अक्तूबर 1955 को रूस ने अपना स्पूतनिक-1 अंतरिक्ष में छोड़ा जो एक महिने तक पृथ्वी का चक्कार लगाने के बाद अंतरिक्ष में ही नष्ट हो गया। 3 नवंबर, 1957 को आधा टन वजन वाला स्पूतनिक छोड़ा गया। इसकी विशेषता यह थी कि इसके साथ लाइका नाम की एक कुतिया भी भेजी गयी थी, यह देखने के लिए की इतनी ऊंचाई पर अंतरिक्ष में जीवित प्राणी पर क्या-क्या प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं।

अमरीका का अंतरिक्ष सफ़र रूस के बाद शुरू हुआ। रूस के दो उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे जाने के बाद अमेरिका ने 1 फरवरी, 1958 को अपना कृत्रिम उपग्रह एक रॉकेट द्वारा अंतरिक्ष में छोड़ा। वैसे रूस के यूरी गागरिन को पहली बार अंतरिक्ष में जाने का गौरव प्राप्त हुआ जहां से वैज्ञानिकों के अंतरिक्ष में जाने और वहां अध्ययन-अनुसंधान करने की शुरूआत हुई। बीती शताब्दी तक किसी गैर वैज्ञानिक का अंतरिक्ष में पहुंचना एक सपना ही था। लोग मात्र अंतरिक्ष यात्रियों के अनुभव सुनकर या विज्ञान कथाओं के माध्यम से अंतरिक्ष की सैर का आनंद ले लिया करते थे। लेकिन तीसरी सहस्त्राब्दी और इक्कीसवीं सदी में पहुंचते ही अंतरिक्ष के रास्ते भी आम आदमी के लिए खोल दिये गये। अब कोई व्यक्ति पैसे की सीढ़ी से अंतरिक्ष तक पहुंच सकता है अर्थात फ़िलहाल अगर आप धनवान हैं तो अंतरिक्ष का मज़ा ले सकते हैं।

विश्व में अमरीका और रूस ब्रह्मांड के विशेषज्ञ माने जाते हैं और अंतरिक्ष आधिपत्य को लेकर दोनों में पिछले सालों से प्रतिस्पर्धा सी छिड़ी हुई है। इसमें कोई शक नहीं कि आरंभ में इस क्षेत्र में रूस का दबदबा रहा मगर सोवियत संघ के विघटन के बाद धीरे-धीरे अमरीका ने भी इस क्षेत्र में अपना सिक्का जमा लिया। लेकिन एक बार फिर रूस ने डेनियल टीटो को अंतरिक्ष में भेज कर अंतरिक्ष में पहला पर्यटक भेजने का रिकॉर्ड अपने नाम कर लिया है। डेनियल टीटो अन्य दो अंतरिक्ष यात्रियों, तलगट मुसाबयेव और यूरी बतुरिन के साथ उसी पैड से अंतरिक्ष के लिए रवाना हुए जहां से चालीस

साल पहले अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन अंतरिक्ष गये थे। गागरिन के अभियान की तरह ही टीटो के इस प्रस्थान से एक नये युग की शुरुआत हुई और अंतरिक्ष पर्यटन का मार्ग प्रशस्त हुआ। टीटो ने इस यात्रा के लिए दो करोड़ डॉलर चुका कर चालीस वर्ष पुराना अंतरिक्ष में जाने का अपना सपना पूरा कर लिया।

अतंरिक्ष में पर्यटन की पहल करने वाले रूस की इस योजना में कई रोड़े अटकाये गये। अपनी आदत के मुताबिक अमरीका ने इस योजना का विरोध किया, लेकिन रूस अपने निर्णय के समर्थन में पूरी तैयारी से खड़ा रहा और अंततः टीटो को रूसी सोयूज़-टी.एम. 32 में अंतरिक्ष में भेजा गया। टीटो को इससे पहले मीर अंतरिक्ष स्टेशन में भेजने की योजना थी लेकिन 15 वर्ष पुराने मीर को मार्च, 2001 में नष्ट कर दिये जाने के बाद रूसी अंतरिक्ष एजेंसी रोसावियाकास्मॉन ने टीटो को अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (आई.एस.एस.) के अपने हिस्से पर भेजने का निर्णय लिया और वहीं से अमरीकी अंतरिक्ष एजेंसी, 'नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन' यानी नासा के अधिकारियों ने इस योजना का विरोध शुरू कर दिया। रूस ने नासा की सुरक्षा संबंधी चिंताओं को खारिज करते हुए कहा कि मीर अंतरिक्ष स्टेशन को 15 वर्षों तक कार्यरत रखकर उसने विश्व के किसी दूसरे राष्ट्र से अधिक जानकारी हासिल कर ली है। अंततः टीटो को नासा के इस विरोध को शांत करने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर करने पड़े, जिसमें कहा गया था कि वह बिना किसी मार्गरक्षक के स्टेशन के अमरीकी खंड में नहीं जायेगा और यदि उससे कुछ नुकसान हुआ तो उसकी भरपाई भी वही करेगा। नासा में रॉकेट वैज्ञानिक रह चुके टीटो ने अल्फ़ा की यात्रा के लिए रूस को दो कराड़ डॉलर का भुगतान किया, यह राशि कंगाली का सामना कर रहे रूसी अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए किसी नेमत से कम नहीं थी।

टीटो को स्कूली दिनों में ही चांद-तारों की दुनिया से लगाव हो गया था, जब उसने 1957 के रूसी उपग्रह स्पूतनिक का प्रक्षेपण देखा था। इसी लगाव के चलते उन्होंने 1964 में नासा शोध केंद्र की जेट प्रोपल्शन लेबोरेट्री में दाखिला ले लिया। उसने नासा को अपनी इच्छा बताई कि वह अंतरिक्ष वैज्ञानिक बनना चाहता है लेकिन कम वेतन के चलते टीटो ने अपनी निवेश कंपनी विलशायर एसोसिएट्स की स्थापना की और देखते ही देखते वह अरबपति हो गया। व्यवसाय की व्यस्त दुनिया में भी टीटो के चांद-सितारे के प्रति लगाव में कमी नहीं आयी।

टीटो ने मास्को से बाहर स्टार सिटी प्रशिक्षण केंद्र में सैकड़ों घंटे प्रशिक्षण में बिताये। वह अपने साथ वीडियो कैमरा, ओपेरा सीडी और अपने परिजनों के छायाचित्र भी लेकर गया। विवादों से घिरी अपनी सप्ताह भर की अंतरिक्ष यात्रा के बाद टीटो धरती पर उतरा तो खुशी से फूला नहीं समाया। रूस का सोयूज़ यान अपने निर्धारित समय पर, ग्रीनविच समयानुसार 5.41 बजे धरती पर लौटा और करीब पचास फुट घिसटने के बाद इसे मजबूत पैराशूट ने थाम लिया। सोयूज़ कैप्सूल से निकल कर टीटो ने कहा, "उफ़ क्या यात्रा थी ! अद्‌भुत ! वह तो परलोक था।"

टीटो की इस सफल यात्रा ने अंतरिक्ष में पर्यटन का एक नया क्षेत्र स्थापित कर दिया है। उसके बाद और अंतरिक्ष पर्यटकों को अंतर्राष्ट्रीय स्टेशन पर भेजने की तैयारी की जा रही है। रूसी अंतरिक्ष एजेंसी रोसावियाकास्मॉन के प्रमुख यूरी कार्पेव ने इस आशय की ख़बरों की पुष्टि की है। यह यात्रा आयोजित करने वाली अमरीकी कंपनी स्पेस एडवेंचर्स ने टीटो की यात्रा के दौरान ही कहा था कि भविष्य की उड़ानों के लिए उसके पास दो और उम्मीदवार हैं। कंपनी के अध्यक्ष एरिक एंडरसन ने तो जैसे पूरी योजना तैयार कर रखी है। उन्होंने कहा कि सोयूज़ यान के ज़रिये हर वर्ष दो सैलानियों को अंतरिक्ष भेजने की संभावना है। इस बार सारी परिस्थितियों को विस्तार से देखने के बाद अमरीकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने भी इस बात के लिए कमर कस ली है कि वह आगामी योजनाओं को आसानी से साकार रूप नहीं लेने देगा। उसके इस अड़ियल रवैये को देखते हुए रूस ने नियमों की सूची तैयार करना शुरू कर दिया

है। रूसी अंतरिक्ष एजेंसी के प्रमुख काप्तेव ने कहा है कि ग़ैर पेशेवर यात्रियों के लिए आवश्यकताओं और नियमों की सूची तैयार की जा रही है, जिसमें सहयोगी देश अमेरिका से भविष्य में किसी भी संघर्ष से बचा जा सके।

अपनी सफलता के बाद रूस की अंतरिक्ष में और भी पर्यटक भेजने की योजना है। इधर तास रूसी संवाद समिति ने रूसी अंतरिक्ष एजेंसी के प्रमुख यूरी कोप्तेव के हवाले से बताया कि अगले अंतरिक्ष पर्यटक के रूप में भेजे जाने वाले सदस्यों के चुनाव पर सोयूज़ अंतरिक्ष यान के मालिक व इर्गेया अंतरिक्ष निगम से बातचीत चल रही है। कोप्तेव ने कहा कि उनकी सूचना के मुताबिक अगला नौसिखिया अंतरिक्ष यात्री रूसी नहीं होगा। उधर अमरीका की एक कंपनी ने घोषणा की है कि वह भविष्य के पर्यटकों के लिए एक अंतरिक्ष स्टेशन का डिजाइन तैयार कर रहा है। एक अन्य ने कहा कि वह सन् 2005 तक अंतरिक्ष जैसी यात्रा की पेशकश लोगों से कर सकेगा। स्पेस आइलैंड ग्रुप टीटो की यात्रा के अनुभवों और अंतरिक्ष में नवविवाहित जोड़ों के लिए स्पेस होटल बनाने की योजना बना रहा है। इस ग्रुप के अध्यक्ष जीन मेयर ने इस महत्वाकांक्षी योजना को लोकप्रिय बनाने का काम शुरू कर दिया है।

टीटो की इस सफल अंतरिक्ष सैर को देखकर टाइटेनिक फिल्म के निर्देशक जेम्स केमरून, जो हमेशा कुछ नया करने के लिए लालायित रहते हैं, भला ख़ामोश बैठने वाले कहां थे ! अब वह एक अनोखा कारनामा करने की सोच रहे हैं जिसके तहत वह अंतरिक्ष की यात्रा के दौरान एक 3 डी मैक्स फ़िल्म, वृत्तचित्र श्रृंखला और फ़ॉक्स टेलीविज़न के कार्यक्रम बनाना चाहते हैं। जेम्स अभी अंतरिक्ष में जाने की योजना बना ही रहे थे कि दक्षिण अफ्रीका के एक और धनकुबेर 28 वर्षीय मार्क शटलवर्थ अप्रैल, 2002 में रूसी रॉकेट सोयूज़ टी.एम. - 34 से रूसी अंतरिक्ष वैज्ञानिक यूरी गिजनको और इटली के वायुसेना के पायलट रॉबर्ट विट्टोरी के साथ अंतरिक्ष यात्रा पर निकल पड़े और अंतरिक्ष में पहुंचने वाले दूसरे अंतरिक्ष पर्यटक का दर्जा हासिल कर लिया। शटलवर्थ ने इस यात्रा के लिए दो करोड़ डॉलर का भुगतान करके 10 दिन की अंतरिक्ष यात्रा का मज़ा लिया।

अब शीघ्र ही रूस, अपने सोयूज़ मिशन के तहत अमरीका के मशहूर पॉप गायक लांस-बास को अंतरिक्ष में भेजने की तैयारी में है। इसके लिए आने वाले दिनों में बास को नासा में प्रशिक्षण दिया जायेगा। इस तरह अगर प्रशिक्षण पूरा कर बास अंतरिक्ष में जाने में सफल होता है तो वह अंतरिक्ष की सैर करने वाला दुनिया का सबसे कम उम्र व्यक्ति बन जायेगा।

अमरीकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने आर.एल.वी. (रियूज़ेबल लांच वेहिकिल) पर काम प्रारंभ कर दिया है और अपने एडवांस स्पेस ट्रांसपोर्टेशन प्रोग्रम के तहत सस्ती प्रौद्योगिकी का विकास कर रही है। किसी भी अंतरिक्ष यान में लगभग एक तिहाई ईंधन यान को तल से ऊपर उठाने में ख़र्च हो जाता है। अगर इस ईंधन की खपत कम हो जाये तो उड़ान न केवल सस्ती हो जायेगी बल्कि ज़्यादा भार भी ले जा सकेगी। इस प्रकार के इंजन का पहला परीक्षण 2003 में होने की संभावना है।

दुनिया की सैर कर करके बोर हो चुके अब ज़्यादातर करोड़ पति लोग अंतरिक्ष की सैर करने की इच्छा रखते हैं। अंतरिक्ष में हम कैसा अनुभव करते हैं और वहां से हमारी दुनियां कैसी नज़र आती है, जैसे अनेक सवालों से घिरा एक साधारण व्यक्ति भी अब अंतरिक्ष में पहुंच कर अपनी जिज्ञासा को शांत कर सकेगा। एक रूसी कंपनी माटासिसचेव पहले की तुलना में दो सौ गुना कम दामों पर पर्यटकों की सी.एक्स.आई. नामक अंतरिक्ष टैक्सी द्वारा अंतरिक्ष यात्रा कराने की तैयारी कर रही है। तीन सीटों वाली इस टैक्सी में एक पायलट तथा दो पर्यटक एक घंटे की उड़ान भर सकेंगे जिसमें तीन मिनट की अंतरिक्ष की सैर शामिल है, शेष समय अंतरिक्ष की बाहर की कक्षाओं के भ्रमण के लिए है। इस कंपनी के मुख्य डिज़ाइनर वालेरी नीवीकोव ने बताया कि इस अंतरिक्ष यात्रा के दौरान लोग भारहीनता का अनुभव कर सकेंगे। यह अंतरिक्ष टैक्सी जियोफ़ाइसिका यान से बंधी होगी और 17 किलोमीटर की ऊंचाई के बाद इसका ख़ुद

का इंजन पृथ्वी से सौ किलोमीटर की ऊंचाई पर ले जायेगा। सत्तर करोड़ डॉलर की इस परियोजना के लिए अगले पांच वर्षों में इस तरह की पांच-सात टैक्सियां बन जायेंगी जो आये दिन यात्राएं आयोजित करेंगी। इस टैक्सी से अंतरिक्ष यात्रा करने वाले लोगों की भीड़ कुछ ज़्यादा ही होगी क्योंकि इसमें जाने वाले यात्री को अंतरिक्ष यात्री टीटो या मार्क शटलवर्थ की तरह भारी भरकम राशि नहीं चुकानी पड़ेगी, यह इन दोनों के द्वारा चुकाई गयी राशि से दो सौ गुना तक कम होगी।

आज जहां अंतरिक्ष अनुसंधानों के लिए अंतरिक्ष में स्काई लैब, सैल्युट, स्पेश शटल जैसी प्रयोगशालाएं बनाई गयी हैं भविष्य में ऐसे ही टूरिस्ट केंद्र नज़र आयेंगे। अंतरिक्ष के इस रोमांचकारी पर्यटन के दौरान खाने-पीने को भी समस्या आयेगी, तो वैज्ञानिकों ने इस पर भी कार्य शुरू कर दिया है। नासा की कैथी ओलसेन अपने सहयोगियों के साथ आलू, शकरकंद जैसी एक किस्म के विकास में लगी हुई हैं जो ज़मीन और अंतरिक्ष में समान रूप से उगाई जा सके। अंतरिक्ष में खाने-पीने के सवाल के साथ-साथ एक अहम मुद्दा सेहत का है। वास्तव में अंतरिक्ष में जाकर मानव शरीर कई तरीकों से प्रभावित होता है। अंतरिक्ष में मानव शरीर की हड्डियों का क्षय प्रारंभ हो जाता है। वैज्ञानिक ऐसी समस्याओं से निपटने और अंतरिक्ष यात्राओं को और अधिक सुलभ बनाने के लिए भी गहन अध्ययन कर रहे हैं।

❑❑❑

विज्ञान लतीफ़े - घी के पीपे

ज्योतिषी मेंढ़क *(युवा मेंढक का हाथ देखते हुए)* : बच्चा, आज तुम्हें एक लड़की मिलेगी, जो तुम्हें देख कर मुस्कुरायेगी, और तुम्हारे बारे में सब कुछ जानना चाहेगी। मसलन, तुम्हें क्या खाना पसंद है, कहां रहते हो, तुम्हारा दिल कितने जोर से धड़कता है वगैरह ...

युवा मेंढ़क : *(खुशी से उछलता हुआ)* अच्छा ? कहां मिलेगी वो मुझे ? क्या हैंगिंग गार्डन में !

ज्यातिषी मेंढ़क : नहीं नहीं बच्चा, वो तुम्हें बायोलॉजी लैब में मिलेगी !!

x x x

बिल गैट्स *(उडिपी रेस्त्रां में)* : वेटर, गर्म-गर्म क्या मिलेगा ?

वेटर : सार, इडली एकदम गरम है।

बिल गेट्स : ठीक है, ले आओ। पर सुनो, इडली एकदम सॉफ्ट, माइक्रोसॉफ्ट होनी चाहिए।

x x x

छोटा भाई : बड़े भइया, मीटर और लिटर में क्या फर्क़ है ?

बड़ा भाई : वेरी सिम्पल। मीटर सूखा होता है, लिटर गीला होता है।

विज्ञान पहेलियां

1) मुंह में पहुंचे, पता लगायें,
विष से भरा, कोई न खायें।
- *थर्मामीटर*

2) करनाल की बिटिया, भारत का नाम रोशन किया,
अंतरिक्ष की खोजों में, जीवन लुटा दिया।
- *कल्पना चावला*

3) चार लाख किलोमीटर पे, पड़ोसी है डेरा जमाये,
हवा और पानी बग़ैर भी, वो हमेशा मुस्कराये।
- *चंद्रमा*

4) पेड़-पौधों का प्राण, ना जले, ना जलाये, यद्यपि
ऑक्सीजन से बनी, फिर भी आग बुझाये।
- *कार्बन-डाइ-ऑक्साइड*

5) किसने पहली बार, एवरेस्ट को फ़तह कर दिखाया,
50 साल पहले, एवरेस्ट पर तिरंगा फहराया।
- *तेनसिंग नोर्गे*

6) तीन पंख का पक्षी ऐसा, घर में ही वो उड़ता रहता,
देख पसीना उसको भागे, गर्मी में वो प्यारा लागे।
- *बिजली का पंखा*

डॉ. देवकी नंदन
ए-304-बी, हृषिकेश, स्वामी समर्थ नगर,
अंधेरी (प.), मुंबई - 400 053

टिप्पणियां

1. गाय से प्राप्त विलक्षण प्राकृतिक रसायन

वैदिक काल से ही पशुओं में गाय का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। वेदों में गाय के शरीर को संपूर्ण ब्रह्मांड की संज्ञा दी गयी है। शायद इसके उपयोगी उत्पादों जैसे दूध, मूल-मूत्र, बछड़े आदि के कारण ही हिंदू धर्म में इसे गौमाता कहा गया है। इसका दूध स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता की दृष्टि से भैंस जैसे अन्य पशुओं तथा मानव के दूध की तुलना में श्रेष्ठ माना जाता है। इसका मुख्य कारण है इसमें वसा की कम तथा अन्य पोषक तत्त्वों की अधिक मात्रा का होना। स्त्री एवं गाय के दूध के रासायनिक संगठन का तुलनात्मक विवरण तालिका-1 में दिया गया है।

तालिका-1 : स्त्री तथा गाय के दूध के रासायनिक संगठन का तुलनात्मक विवरण

(प्रति 100 ग्राम में)

	स्त्री का दूध	गाय का दूध
1. अवयव (ग्राम)		
जल	88.0	87.5
प्रोटीन	1.2	3.3
कार्बोहाइड्रेट	7.0	4.8
वसा	3.4	4.1
कैलोरी	65.0	67.0
2. खनिज (मिग्रा)		
कैल्शियम	28	120
फॉस्फोरस	11	90
लौह	0.1	0.2
गंधक	0	15
पोटेशियम	0	140
सोडियम	0	16
3. विटामिन (मिग्रा)		
विटामिन सी	3	2
विटामिन ए (आई.यू.)	137	174
निकोटिन एसिड	0	0.1
थायमिन	0.02	0.05
कैरोटिन (आई.यू.)	0	10
राइबोफ्लेबिन	0.02	0.19

दूध में मुख्य तत्व शर्करा लैक्टोस होती है। यह एक डाई-सैकेराइड है जो कि एक अणु ग्लूकोस तथा एक अणु गैलेक्टोस का बंध है। यह बीटा-ग्लाइकोसाइड बंध, कार्बन-4 का ग्लूकोस तथा कार्बन-1 के ग्लूकोस के मध्य होता है, इसलिए इसका रासायनिक नाम डी-ग्लूकोपाइरानोज -4 (बीटा-डी-ग्लेक्टोपाइरोनोसाइड) है। केवल उचित बीटा-ग्लाइकोसाइड रखने वाले जीवाणु ही यह बंध विच्छेद कर सकते हैं। परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि शिशु के भोजन में लगभग 36 ग्राम लैक्टोस की मात्रा ग्लूकोस की तुलना में अधिक कैल्शियम प्रदान करती है। दूध से दही बनने की प्रक्रिया में लैक्टोस लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित हो जाता है। यह परिवर्तन स्ट्रैप्टोकोकस-लैक्टिस तथा अन्य जीवाणुओं द्वारा होता है।

गौमल (गोबर) : गौमल के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इसमें 18.0% कार्बनिक तत्त्व 0.31% नाइट्रोजन 0.10% फॉस्फोरस पेंटाऑक्साइड तथा 1.50% पोटेशियम ऑक्साइड मात्रा होती है। इसमें निहित कार्बनिक तत्त्व जीवाणुओं द्वारा अपघटित होकर नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस बनाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेड एवं वसा भी विद्यमान रहते हैं। अकार्बनिक तत्त्वों में पोटोशियम तथा फॉस्फोरस मुख्य हैं। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि इस गोबर में कवक एवं अनेक हानिकारक जीवाणुओं का सफाया करने की क्षमता होती है। इसीलिए स्वास्थ्य की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्रों में इसका उपयोग घर की दीवारों तथा फर्श की पुताई में किया जाता है। इससे प्राप्त राख, अच्छी कीटनाशी भी है। धनिया, लहसुन तथा अनेकों शाक भाजी की फसलों में इसका उपयोग अत्यंत लाभप्रद है। गोबर का सर्वाधिक उपयोग ईंधन एवं खाद के रूप में किया जाता है।

गौमूत्र : इसका उपयोग आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण एवं विभिन्न औषधोपयोगी विषाक्त खनिजों, तत्त्वों एवं वनस्पतियों के शोधन में किया जाता है। गौमूत्र के गुणों एवं उपयोगों का वर्णन आयुर्वेदशास्त्रों में भी मिलता है।

सर्वेष्वपि च मूलेष गो-मूत्रं गुणतोधिकम्
अतो विशेषात्कथितं मूत्रं गोमूत्र मुच्यते।

प्लीहादर श्वास कास शोथ वर्चो कफापहम्
शूल गुल्म रूजानाह कामला पांडुरोग हत्त ।।

गौमूत्र का नियमित सेवन मनुष्य को निश्चित रूप से निरोग बनाने में समर्थ है। उपरोक्त स्वास्थ्यरक्षक गुणों के अतिरिक्त इसमें कुछ विलक्षण गुण भी हैं। इसका उपयोग प्राचीन काल में पेड़-पौधों, आर्किड एवं लाइकेन से प्राकृतिक रंगों के निष्कर्षण तथा कपड़ों की रंगाई में किया जाता था। इसका उपयोग रंजक बंधकों के लिए भी किया जाता था। इसका मुख्य कारण उस समय अमोनिया रसायन का उत्पादन न होना था। गौमूत्र शरीर के यूरेथ्रा से निकलता है। यह स्वाद में खारा तथा इसका pH - 6.0-8.5 के मध्य होता है। ताजा मूत्र गंधहीन होता है, परंतु 10-15 मिनट के पश्चात् रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इसमें निहित यूरिक एसिड तत्काल अमोनिया तत्पश्चात यूरिया में परिवर्तित हो जाता है। तब यह मूत्र गंधयुक्त हो जाता है। इसमें निहित विभिन्न उपयोगी तत्त्व हमारे स्वास्थ्य एवं कृषिकार्य के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। इसके 4-6 लीटर मूत्र को 50-60 डिग्री से. ताप पर सांद्र कर सुखाने पर लगभग 70-80 ग्राम ठोस तत्त्व प्राप्त होते हैं। इसके रासायनिक तत्त्वों का विवरण आगे स्पष्ट किया गया है।

सोडियम 120-250 मिग्रा, क्लोराइड 115-245 मिग्रा, पोटेशियम 20-100 मिग्रा, कैल्शियम 95-255 मिग्रा, मैग्नीशियम 20-290 मिग्रा, फॉस्फोरस अकार्बनिक 1.0-1.2 ग्राम। इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन युक्त तत्त्व भी होते हैं - अमोनिया 25-27 मिग्रा, कीमटीन 0-105 मिग्रा, क्रीमटिनीन 0.7-2.0 ग्राम, प्रोटीन 15-150 मिग्रा, यूरिया नाइट्रोजन 5-20 ग्राम, यूरिक एसिड 0.3-0.8 ग्राम।

इसमें नाइट्रोजनयुक्त यूरिया प्रचुर मात्रा में है, अतएव इसका उपयोग प्राकृतिक उर्वरक के रूप में किया जा सकता है। इसके लिए एक भाग गोमूत्र को 5-6 भाग पानी के साथ मिलाकर फसलों/खेतों में छिड़काव पर्याप्त है। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इस घोल का छिड़काव फल वाले वृक्षों पर फल के समय नहीं करना चाहिए। गोमूत्र की अधिक सांद्रता (नाइट्रोजन की अधिकता) फसलों के लिए हानिकारक हो सकती है। इसके अतिरिक्त गो-मूत्र एक अच्छा कीटनाशी भी है। गोमूत्र तथा पानी का 1 : 6 अनुपात दीमक के नियंत्रण के लिए अत्यंत प्रभावशाली है। लगातार 3-4 दिन तक इस घोल के छिड़काव से दीमक समाप्त हो जाते हैं। 200 मिली गोमूत्र में 5 मिली. पिपरमिंट (मेंथाआयल) एवं 10 ली. पानी का घोल अंगूर की फसल के कवक रोगों के लिए अत्यंत प्रभावशाली है। फसलों पर इसके छिड़काव से उर्वरक के अतिरिक्त फसलों को प्रभावित करने वाले कई रोगों से फसल की सुरक्षा भी संभव है।

सुभाष चंद्र एवं **श्रीकृष्ण तिवारी**
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ

2. प्राकृतिक एस्ट्रोजन दूर भगाता है बुढ़ापा

प्रत्येक स्त्री के जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब उसका मासिक धर्म रुक जाता है। 'रजोनिवृत्ति' (मोनोपॉज) की यह स्थिति लगभग 50 वर्ष की आयु में उत्पन्न होती है। जब रजोनिवृत्ति की स्थिति आती है तो अधिकतर स्त्रियां कुछ मायूस हो जाती हैं, क्योंकि उन्हें ऐसा महसूस होने लगता है कि बस अब बुढ़ापा शुरु हो गया है।

स्त्रियों में मासिक धर्म शुरु होने एवं बंद होने का एक मात्र कारण है शरीर में एस्ट्रोजन नामक हार्मोन की उपस्थिति। लड़कियां जब 8 वर्ष की हो जाती हैं तभी से उनमें 'एस्ट्रोजन' का स्तर बढ़ने लगता है। मस्तिष्क के भीतर मौजूद 'हाइपोंथलेसम' एस्ट्रोजन उत्पादन में डिंब ग्रंथि को संलग्न कर देती है। 11 या 12 वर्ष की आयु तक एस्ट्रोजन इतना बढ़ जाता है कि उनकी खूबसूरती में वृद्धि होने लगती है। उनके शारीरिक अंगों का विकास होने लगता है एवं वे औरत का रूप ग्रहण कर लेती हैं। पच्चीस वर्ष की आयु में पर्याप्त 'एस्ट्रोजन' का उत्पादन कम होने लगता है और 30 की आयु आते-आते उल्टा चक्र चलने लगता है तथा 40 वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते परिवर्तन का समय आ जाता है जिसे 'परिरजोनिवृत्ति' की स्थिति कहा जाता है। इस

स्थिति के आने पर त्वचा सूखने लगती है, बाल कड़े होने लगते हैं, मासिक रजोधर्म अनियमित रहने लगता है एवं जननांग्रों में शिथिलता आने लगती है । इस स्थिति में स्त्री एक अजीब सा तनाव महसूस करती है ।

चालीस वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते एक तरफ जहां 'एस्ट्रोजन' का उत्पादन बंद होने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है, वहीं 'हाइपोथैलसम' यह कोशिश करता रहता है कि एस्ट्रोजन का उत्पादन बंद न हो । इसके लिए वह डिंबग्रंथि को हार्मोन संकेत देता रहता है। फलत: डिंबग्रंथि में विचित्र हरकतें होने लगती हैं जिसके चलते एस्ट्रोजन का स्तर दिन-प्रति दिन घटने-बढ़ने लगता है ।

हाइपोथैलमस शरीर का ताप नियंत्रण करने का भी काम करता है । इसकी सक्रियता में वृद्धि हो जाने के कारण रजोनिवृत्ति के अचानक ही गरमी के झोंके आने लगते हैं, दिल की धड़कन बढ़ जाती है, रात में कभी-कभी तेज पसीना छूटने लगता है । इसके साथ ही चिड़चिड़ाहट, अनिद्रा, बेचैनी जैसे लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं ।

न्यूयार्क नगर के स्त्री रोग विशेषज्ञ रॉबर्ट विलसन के चैंबर में एक दिन 52 वर्ष की एक महिला ने प्रवेश किया । 52 वर्ष की होते हुए भी वह महिला बिलकुल नवयौवना दिखाई दे रही थी । जब डॉ. विलसन ने उस महिला से उसकी जवानी का राज पूछा तो उसने बताया कि वह गर्भ निरोधक गोलियों का सेवन करती है जिनमें प्रोजेस्ट्रोन एवं एस्ट्रोजन नामक स्त्री हार्मोनों की अधिकता रहती है ।

डॉ. विलसन को उक्त महिला की बात सुनकर सुखद अनुभूति हुई, क्योंकि वे ऐसे ही फॉर्मूले की खोज में थे । इस घटना के तीन वर्ष पश्चात् डॉ. विलसन की एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका नाम था 'फेमिनिन फॉर एवर' । इस पुस्तक में डॉ. विलसन ने यह घोषणा की थी कि 'इतिहास में पहली बार औरतें आने वाले दिनों में मर्दों से जीव वैज्ञानिक रुप से बराबरी कर सकेंगी - इसके लिए हार्मोन थैरेपी का लाख-लाख शुक्रिया' । डॉ. विलसन ने इस चिकित्सा का नाम 'हार्मोन प्रतिस्थापना' (एच. आर. टी.) रखा है ।

डॉ. विलसन द्वारा प्रचलित इस उपचार पद्धति के बाद से अमरीका में डॉक्टरी पुर्जों पर सबसे अधिक जिस दवा का नाम लिखा जाने लगा उसका नाम है - 'एस्ट्रोजन' । एस्ट्रोजन गोलियों, टुकड़ों एवं क्रीम के रुप में बाजार में बिक रही है । स्त्रियां इसका इस्तेमाल इसीलिए अधिक करती हैं कि यह रजोनिवृत्ति नहीं होने देती ।

अमरीका में एस्ट्रोजन का सेवन करने वाली 12,000 नर्सों पर किये गये अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि एस्ट्रोजन के सेवन करने वाली औरतों को हृदय रोग नहीं होता है । हड्डियों को पतला करने वाला रोग 'ऑस्टोयोपोरोसिस' नहीं होता । औरतों की स्मरण शक्ति में वृद्धि करता है तथा वृहदांत्र (कोलन) कैंसर नहीं होने पाता एवं त्वचा का लचीलापन कायम रहता है ।

उपर्युक्त लाभों को देखते हुए अमरीका में तो स्त्रियां एस्ट्रोजन की दीवानी हो गयी हैं । अकेले अमरीका में ही लगभग एक करोड़ स्त्रियां इसका सेवन कर रही हैं । ज्ञातव्य है कि शरीर में दिमाग से लेकर जिगर तक एस्ट्रोजन ग्रहण करने वाले लगभग 300 प्रकाश के ऊतक होते हैं । मूत्रजनन नली, खून की नलियां, त्वचा एवं वक्ष की सौंदर्य वृद्धि एवं सुडौलापन तथा लचीलेपन के लिए तो एस्ट्रोजन एक आवश्यक हार्मोन का रुप ग्रहण करता जा रहा है । यही कारण है कि विश्व के तमाम देशों की स्त्रियों में एस्ट्रोजन के सेवन का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है ।

किंतु वैज्ञानिकों द्वारा यह चेतावनी भी दी गयी है कि एस्ट्रोजन का सेवन यदि सिर्फ जवानी लाने हेतु किया जाता है तो वह खतरनाक भी हो सकता है । 'न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन' में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार 'एस्ट्रोजन चिकित्सा' से वक्ष कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है । यही नहीं अधिक सेवन से पथरी भी हो सकती है एवं शरीर के भार में वृद्धि भी हो सकती है । यही कारण है अमरीका में 20 प्रतिशत स्त्रियों ने एस्ट्रोजन का सेवन करना बीच में ही छोड़ दिया ।

सर्वेक्षण से यह भी पता चलता है कि अनेक स्त्रियां रजोनिवृत्ति की स्थिति को प्रकृति की देन मानती हैं, फिर रोग जानकर या रोग की तरह इसका इस्तेमाल क्यों ? ऐसी स्त्रियां एस्ट्रोजन लेने के खिलाफ हैं ।

इसके बावजूद भी स्त्रियों में एस्ट्रोजन का सेवन करने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है । 'एस्ट्रोजन द फैक्टस कैन चेंज फॉर लाइफ' नामक पुस्तक की सहलेखिका डॉ. लीला नैक्तगल के अनुसार एस्ट्रोजन के बिना स्त्रियों का सेक्स जीवन समाप्त हो जाता है, लेकिन ऐसी विचित्रता भी देखने में आयी है कि कुछ स्त्रियों में एस्ट्रोजन सेवन करने के पश्चात भी उनमें सेक्स की इच्छा जागृत नहीं होती । ऐसी स्त्रियों को पुरुष हार्मोन 'टेस्टोटेरोन' की खुराक दी जाती है । किंतु इसका परिणाम यह होता है कि टेस्टोटेरोन के सेवन से सेक्स करने वाली स्त्रियों की आवाज पुरुषों की तरह हो जाती है, एवं दाढ़ी भी उग आ सकती है । अतः इसे निरापद नहीं कहा जा सकता ।

ड्यूक विश्वविद्यालय चिकित्सा केंद्र की अध्यक्ष एस्ट्रोजन की हिमायत करते हुए लिखते हैं कि 'इस सदी के प्रारंभ में यह स्थिति थी कि डिंबाशय के काम बंद करने के कुछ वर्ष के अंदर ही स्त्रियों की मृत्यु हो जाती थी, किंतु अब ऐसा नहीं होता । अब महिलाएं हृदयरोग, ऑस्टीयोपोरोसिस एवं हड्डी टूटने जैसी बीमारियों से उत्पन्न समस्याओं से घबराती नहीं एवं दुःखी नहीं होतीं, कारण कि अब उनके पास एस्ट्रोजन नामक साथी है ।' हालांकि इसकी खुराक 10 वर्षों तक ही लेनी चाहिए ।

एस्ट्रोजन का सेवन करने के पश्चात स्त्रियों का स्वास्थ्य इसलिए भी अच्छा रहता है कि उनको लगातार डॉक्टर के संपर्क में रहना पड़ता है जिससे शरीर के अन्य विकारों का भी उन्हें पता चलता है, जिनका निदान करती रहती हैं । इस संबंध में डॉ. सूजन लव का कहना है कि 'इसके चलते ऐसी स्त्रियों को जानलेवा रोग का भी बहुत कम सामना करना पड़ता है ।'

'हार्मोन प्रतिस्थापना उपचार (एच.आर.टी.)' से लाभ एवं हानि की वास्तविक जानकारी वैसे 2005 तक ही प्राप्त हो सकेगी, क्योंकि 62 करोड़ 80 लाख डॉलर से स्थापित नारी स्वास्थ्य कार्यक्रम के तहत 27,500 स्त्रियों पर इसके प्रभावों का अध्ययन अमरीका के 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान' ने प्रारंभ कर दिया है । यह अध्ययन आठ वर्षों तक जारी रहेगा और इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के बाद ही एच. आर. टी. के बारे में सही तौर पर कुछ कहना उचित होगा ।

वैसे अनेक वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों की राय है कि रजोनिवृत्ति से बचने, हृदय रोग एवं ऑस्टीयोपोरोसिस से बचाव का प्राकृतिक तरीका भी कारगर होगा और प्राकृतिक रूप से प्रोजेस्टोजन एवं एस्ट्रोजन प्राप्त किया जा सकता है । इसलिए आवश्यक है कि उचित व्यायाम किये जायें । धूम्रपान से बचा जाये, कम चर्बी एवं कैल्शियम युक्त भोजन लिया जाये, और फलों तथा सब्जियों का विशेष सेवन किया जाये ।

उल्लेखनीय है कि जापानी स्त्रियों में रजोनिवृत्ति बहुत कम पायी जाती है, कारण कि वहां की स्त्रियां 'सोया-पनीर-तोफू' का सेवन अधिक करती हैं । अपने देश में भी जो स्त्रियां प्रकृति के संपर्क में रहती हैं एवं शुद्ध शाकाहारी पौष्टिक भोजन करती हैं तथा अपने जीवन को एवं शरीर को गतिशील बनाये रखती हैं, उनमें भी रजोनिवृत्ति की स्थिति देर से आती है । आयुर्वेद ग्रंथों में तो इसके लिए अनेक प्राकृतिक उपाय बताये गये हैं ।

डॉ. गणेशकुमार पाठक
प्रतिभा प्रकाशन,
बलिया-277 001 (उ. प्र.)

3. शहद क्रांति की जननी इटालियन मधुमक्खी

देश में हरित क्रांति के साथ-साथ श्वेत क्रांति (दुग्ध उत्पादन) तथा नीली क्रांति (मछली उत्पादन) के लिए काफी प्रयास किये गये हैं । इन प्रयासों का अच्छा परिणाम भी निकला है । लेकिन खेती से जुड़े मधुमक्खी पालन (मौन पालन) व्यवसाय के लिए कोई अभियान नहीं चलाया गया । जिससे इस क्षेत्र में अपेक्षित सफलता नहीं मिली है । सौभाग्य की बात है कि यूरोपीय देशों में शहद क्रांति लाने वाली इटालियन मौन हमारे देश की जलवायु में भी अच्छा काम करती है । इसे पालकर और

इस उद्योग को प्रोत्साहन देकर देश में शहद क्रांति लायी जा सकती है ।

हमारे देश में मधुमक्खियों (मौन) की मुख्य तीन प्रजातियां हैं । ये हैं : 1. भंवर (एपिस डारसेटा), 2. पोतिगां या छोटी मधुमक्खी (एपिस फलोरिया) तथा 3. भारतीय मौन (एपिस सिरेना इंडिका) । इन तीनों मौनों की प्रवृत्ति, छत्ता बनाने एवं शहद उत्पादन की मात्रा में अंतर होता है । भंवर ऊंचे वृक्षों, ऊंचे भवनों एवं ऊंची चट्टानों पर एक विशाल छत्ता बनाती है । यह मौन आकार में भी सबसे बड़ी होती है । इसके छत्ते से सर्वाधिक शहद मिलता है । मौसम में एक बार में करीब पचास किलोग्राम तक शहद इससे प्राप्त किया जा सकता है । पोतिंगा या छोटी मधुमक्खी झाड़ियों की टहनी पर एक छोटा छत्ता बनाती है । इससे मौसम में दो ढाई सौ ग्राम तक शहद निकल सकता है । भारतीय मौन (इंडिका) दीवालों की दरारों एवं वृक्षों की कोटरों में एक के बाद एक कई समांतर छत्ते बनाती है । इससे एक वर्ष में 5 से 10 किलोग्राम तक शहद मिल सकता है । भारतीय मधुमक्खियों में केवल इसे ही लकड़ी की पेटियों में पाला जा सकता है ।

भारत में इटालियन मौन का प्रवेश सबसे पहले 1964 में पंजाब के मौन पालकों के प्रयास से हुआ । पंजाब के बाद पर्वतीय क्षेत्र नगरौटा नामक स्थान पर इसे पालकर इसका परीक्षण किया गया । बाद में 1966 से इसे लुधियाना में पाला जाने लगा । अब यह पूरे देश में तेजी से लोकप्रिय हो रही है ।

इटालियन मौन की लोकप्रियता के कई कारण हैं । भारतीय मौन के एक मौनवंश से प्रतिवर्ष करीब 5 से 10 किलोग्राम तक शहद ही निकल पाता है जबकि इटालियन मौन के प्रति मौन वंश से प्रतिवर्ष 15 से 40 किलोग्राम तक शहद निकाला जा सकता है ।

शहद के अधिक उत्पादन के अलावा इटालियन मौन में एक विशेषता और है । इसमें घर छोड़कर भागने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती । जबकि भारतीय मौन में यह प्रवृत्ति बहुत पायी जाती है । इस प्रवृत्ति से मौन पालक परेशान रहते हैं । इटालियन मौन सीधी भी बहुत होती परेशान रहते हैं । इटालियन मौन सीधी भी बहुत होती हैं । यह कम डंक मारती हैं । शहद की ही तरह इसमें मोम भी ज्यादा प्राप्त होता है ।

इटालियन मौन में 'सैकब्रूड' नामक घातक बीमारी का असर भी कम होता है । 1982-83 में इस वायरल बीमारी से उत्तर प्रदेश के राजकीय एवं व्यक्तिगत मौनपालकों के करीब 90 प्रतिशत मौनवंश समाप्त हो गये थे । मौन पालन को उस साल करारा झटका लगा था । उस समय देखा गया कि सैकब्रूड बीमारी का असर इटालियन मौनवंश पर कम पड़ा । इसके पश्चात् इटालियन मौनवंशों ने शोधकर्ताओं और मौनपालकों को तेजी से अपनी ओर आकर्षित किया । भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने इटालियन मौन पालन हेतु चौबटिया (रानीखेत, अल्मोड़ा) में एक शोध एवं प्रशिक्षण केंद्र खोला । उत्तर प्रदेश में शहद की भीषण कमी को देखते हुए उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग, उत्तर प्रदेश (मैदानी क्षेत्र) ने वर्ष 1989-1990 में बृहद स्तर पर इटालियन मौन के प्रचार का निर्णय लिया । इसके लिए पंजाब से इटालियन मौन मंगवाकर प्रदेश के विभिन्न केंद्रों और उपकेंद्रों पर इसका पालन प्रारंभ किया गया । 1991-92 में इस कार्यक्रम में और भी बढ़ोत्तरी की गयी । वर्तमान समय में इटालियन मौन उत्तर प्रदेश ही नहीं संपूर्ण उत्तर भारत में फैल चुकी है । सरकारी प्रशिक्षण केंद्रों से प्रशिक्षण लेकर निकले हजारों लोगों ने इस कार्य को व्यवसाय के रूप में भी करना शुरू कर दिया ।

मौन पालन का काम लकड़ी की पेटियों में किया जाता है । पेटी के अंदर लकड़ी के चौकोर फ्रेम होते हैं । उन फ्रेमों पर मोम के बने छत्ताधार लगाये जाते हैं । जिन पर मौने छत्ते बनाती हैं । इन्हीं छत्तों में रानी मौन अंडे दिया करती है । खाली छत्तों में शहद भरा जाता है ।

शहद और मोम मौनपालन के प्रत्यक्ष लाभ हैं । इससे कहीं अधिक लाभ परागण के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से होता है । वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि दुनिया की सारी मौने एकबारगी नष्ट हो जायें तो खाद्यान्न उत्पादन तुरंत एक तिहाई कम हो जायेगा । इस तथ्य से मौनों की उपयोगिता अच्छी तरह समझी जा सकती है ।

प्रयोग में देखा गया है कि जहां मौन पालन का काम होता है वहां आस-पास के खेतों में खाद्यान्न उत्पादन 10 से 30 प्रतिशत तक अपने आप बढ़ जाता है ।

हमारे यहां मौन पालन अभी भी मात्र शहद और मोम के लिए ही किया जाता है जबकि पश्चिम देशों में मौन पालन द्वारा प्रोपोलिन (मौनी गोंद), रायल जेली (मधु अवलेह) तथा मौनीविष का भी उत्पादन करके भारी लाभ कमाया जाता है । रायल जैली एवं प्रोपोलिस से स्वास्थ्यवर्धक एवं पुरुषत्व बढ़ाने वाली दवाएं बनायी जाती हैं जबकि मौन विष से गठिया जैसे रोगों के लिए रामबाण दवाएं बनती हैं ।

विजय चितौरी
ग्रामोदय प्रकाशन, घूरपुर,
इलाहाबाद-212 110

कविता

भूकंप और विनाश

भूपृष्ठ पर तनावों से, मुड़ जाती है चट्टानें ।
अत्यधिक संपीड़न से, उनमें पड़ जाती हैं दरारें ।।1।।
चट्टानों के टूटने की प्रक्रिया का
किया मानवों ने अनुभव ।
प्लेटों के परस्पर टकराने से
हुआ हिमालय का उद्‌भव ।।2।।
पांच संवेदनशील क्षेत्रों में
देश का विभाजन किया गया ।
रिक्टर पैमाने पर
भूकंप की तीव्रता का मापन किया गया ।।3।।
अति संवेदनशील प्लेट खिसकते हैं ।
तब भ्रंशों की स्थिति बिगड़ती है ।
और लोग बहुत सिसकते हैं ।।4।।
दिल्ली, मुंबई, पटना या कालीकट
समस्या हो गयी भाई बहुत विकट ।
कटना शुरु हो गया सबों का टिकट ।
जब आया मृत्यु का मुख निकट ।।5।।
सीमांत भ्रंश में आयी फिसलन से
सन् 1934 में बिहार हिल गया ।
उत्तरदायी भ्रंश में आयी विचलन से
सन् 2001 में भुज मिट्टी में मिल गया ।।6।।
भूकंपों की तो, तू मत कर बात
दिन हो या रात, कर दी इसने सबको मात ।
शादी या उत्सव की हो मुसकान
कर दिया इसने सबको परेशान ।।7।।
मेहनतकश इन्सान था, महत्वाकांक्षी था
बड़े जतन से भवन निर्माण में जुट गया ।
अकस्मात् भूकंप का प्रहार सह न सका
पल भर में उसका सर्वस्व लुट गया ।।8।।
कितने घर और कितने बेघर
मत कर तू इनका अनुमान ।
अगर करना ही है तो प्यारे
कर दे तू अगले भूकंप का पूर्वानुमान ।।9।।
क्या हो सकता है, इस अप्रत्याशित
और विकट समस्या का समाधान ?
समस्या सुलझ सकती है, यदि हुआ
भूकंप पीड़ितों के लिए कुछ अंशदान ।।10।।

राघव शैलेंद्र कुमार सिंह
सैद्धांतिक अध्ययन विभाग, पाषाण रोड,
डाकघर - एन.सी.एल., पुणे - 411 008.

पर्यावरण के दोहे

पर्यावरण का कर दिया, हमने बुरा हाल ।
दूषित पानी, हवा से, रोग लिये सौ पाल ।।
बिनु वर्षा धरती तपी, चारों ओर अकाल
भूख-प्यास कैसे मिटे, यह सबसे बड़ा सवाल ।।
वाहन हैं नित बढ़ रहे, बढ़ता, धुआं व शोर ।
दूषित जन-जीवन हुआ, कब होगी सुहानी भोर ।।
हरे वृक्ष सब काट कर, पौध दिये कुछ रोप ।
जलवायु चक्र असंतुलित हुआ, बढ़ा प्रकृति-प्रकोप ।।
दूषित वातावरण से मचा आज कोहराम ।
पर आयेंगे अब नहीं हमें बचाने राम ।।

दिलीप भाटिया
परमाणु ऊर्जा विभाग, भारत सरकार,
राजस्थान परमाणु बिजलीघर, अणुशक्ति-411 008.

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. डाटा अधिग्रहण प्रणाली स्थापित :

भा.प.अ. केंद्र व नेशनल थर्मल पावर कॉर्पोरेशन (NTPC) के मध्य हुए एक समझौते के अंतर्गत, एक डाटा अधिग्रहण (acquisition) प्रणाली का अभिकल्पन व विकास, इस केंद्र के मास स्पेक्ट्रोमीटरी एंड इलेक्ट्रॉनिक्स सिस्टम सेक्शन (MS & ESS), भौतिकी वर्ग, द्वारा किया गया है। इस प्रणाली को नेशनल केपिटल थर्मल पॉवर स्टेशन, दादरी (उ. प्र.) में लगाया गया है।

इसका मुख्य उद्देश्य, संयंत्र के प्राचलों (पैरामीटरों) का सतत् रिकार्ड-एकत्र (लॉग) करना है, जिससे संयंत्र की उपप्रणालियों में होनेवाली श्रांति (फ़टीग) को आसानी से आकलित किया जा सके। इस अनुभाग द्वारा निर्मित यह डाटा अधिग्रहण प्रणाली (DAS), SCADA प्रणाली का अनिवार्य भाग है। प्राप्त डाटा को संयंत्र नियंत्रण व/या बाद में विश्लेषण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इस DAS को विशेषतः बनाया गया है ताकि यह विश्वसनीयता से डाटा अधिग्रहण कर सके।

अभी तो NTPC सिर्फ तीन संयंत्र प्राचलों का मॉनीटरन कर रहा है : हॉट रीहोट प्रैशर (HRH), HRH तापक्रम और बॉयलर दाब इंडेक्स (फ्लो)। आगे, अन्य प्राचल भी जब NTPC उपलब्ध करायेगी तो मॉनीटरन हेतु इसमें जोड़े जायेंगे।

ऑनलाईन (कार्यरत अवस्था में ही) श्रांति व मंद विरूपण (क्रीप)-विश्लेषण सॉफ्टवेयर द्वारा, जिसका विकास रिएक्टर सुरक्षा प्रभाग कर रहा है, इस डाटा को और विश्लेषित किया जायेगा।

2. वेट स्क्रैपिंग टूल विकसित :

भारत के दाबीय भारी पानी रिएक्टरों में इस्तेमाल की जाने वाली जिरकोनियम मिश्र धातु नलिकाओं की अखंडता मुख्यतः हाइड्राइडिंग के नाम से जानी जाने वाली निम्नीकरण प्रक्रिया द्वारा नियंत्रित होती है, यही पदार्थ का संरचनात्मक जीवन काल सीमित करता है। दाब-नलिका के सुरक्षित प्रचालन-काल का अनुमान लगाने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह स्वस्थाने (in situ) कार्य स्थल पर कार्य करते हुए, किस दर से हाइड्रोजन ग्रहण करती है और इस हेतु नलिका में प्रकट होने वाली हाइड्रोजन सांद्रता को भी समय-समय पर ज्ञात करना पड़ता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, दाब-नलिका की संरचना को हानि न पहुंचाते हुए, उसमें से सैंपल निकालना पड़ता है।

इस केंद्र के रिएक्टर इंजीनियरिंग प्रभाग ने इस कार्य के लिए 'स्लाइवर' (पतली छिपटी) सैंपल स्क्रैपिंग (छीलना) तकनीक नाम की एक सुदूर व अविनाशी तकनीक विकसित की है। इस तकनीक से दाब नलिका के भीतरी भाग से निर्देशित स्थल से कार्यरत अवस्था में ही सैंपल निकाल सकते हैं तथा उनका अध्ययन कर दाब नलिका के बाकी बचे सेवा काल का पता लगा सकते हैं। इस प्रक्रिया में 0.1 मिमी. मोटाई और 90 मिग्रा. औसत भार की सैंपल छिपटी, इस सफाई से (मशीन द्वारा) निकाली गयी कि दाब नलिका के अंदरुनी भाग में छिलने से बनने वाली सतह के कारण संरचना-सत्यता को हानि न पहुंचे। इसी स्लाइवर सैंपल तकनीक पर आधारित वेट स्क्रैपिंग टूल (WEST, गीली-छीलन का औजार) का विकास रिएक्टर इंजीनियरिंग प्रभाग व रिफ्यूलिंग टेक्नोलॉजी प्रभाग ने मिलकर किया है। सुदूर से सैंपल प्राप्त करने के लिए 'वेस्ट' टूल मौजूदा ईंधन भरण मशीन का ही इस्तेमाल करता है, जिससे समय व मैन-रेम (man-rem) में बचत होती है। ईंधन भरण मशीन की थापियों (rams) की मदद से दाब-नलिका में इस औजार को चलाने के लिए आवश्यक वेस्ट-विस्तारक व इससे संबंधित प्रक्रियाओं का विकास रिफ्यूलिंग तकनीकी प्रभाग ने किया है। केंद्र का ही सेंटर फॉर डिजाइन व मैन्यूफेक्चर, वेस्ट औजारों व वेस्ट-विस्तारकों के निर्माण से जुड़ा रहा है।

वेस्ट का उपयोग कर MAPS-1 की पांच (अगस्त 2001), MAPS-1 की चार (सितंबर-2002), RAPS-1 की 87 (अक्तूबर-नवंबर-2002) और NAPS-2 की छः (अप्रैल-2003) दाब नलिकाओं से स्लाइवर सैंपल सफलतापूर्वक निकाले गये थे।

मार्च 2003 को भा.प.अ. केंद्र व एन.सी.पी.आई.एल. के मध्य हुए एक समझौते के अनुसार भा.प.अ. केंद्र, उनके NAPS, MAPS व KAPS के लिए वेस्ट टूल्स व विस्तारक बनायेगा तथा उनके कर्मियों को इनके परिचालन व रखरखाव का प्रशिक्षण भी देगा। इस जटिल तकनीक को बड़े पैमाने पर भारतीय PHWR-कार्यक्रम में इस्तेमाल करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है।

तकनीकी विकास

मैग्नेशियम-अल्यूमिनियम - सिलिकेट के मशीननीय कांचीय-सिरेमिक :

कांचीय-सिरेमिक (glass-ceramics) पदार्थों का एक ऐसा वर्ग है, जिसमें बड़ी संख्या में कई छोटे-छोटे मणिभ (क्रिस्टल) कांचीय आधात्री (मैट्रिक्स) में एक समान बंटित रहते हैं। इन पदार्थों को एक ऐसी नियंत्रित क्रिस्टलीकरण प्रक्रिया से बनाया जाता है ताकि बड़े मणिभ बनने के बजाय छोटे-छोटे मणिभ बड़ी संख्या में बनें। ऐसा कुछ विशेष नाभिक कारकों (न्यूक्लीएटिंग एजेंटों) के प्रयोग से किया जाता है।

मैग्नेशियम-अल्यूमिनियम-सिलिकेट (MAS) सिरेमिक प्रगत सिरेमिकों की श्रेणी में आता है, जिसका उपयोग अति उच्च निर्वात, उच्च तापक्रम, उच्च विभव वाले क्षेत्रों में होता है। अधिक ताप स्थिरता, अच्छी यांत्रिकी सामर्थ्य, अत्यधिक विद्युत कुचालकता तथा निर्वात अनुरूपता इसके गुण हैं। इसका एक अनोखा गुण इसकी मशीनन योग्यता है। अर्थात् इस पदार्थ को पारंपरिक कार्बाइड अथवा डायमंड मढ़े औजारों की मदद से मनचाहे आकार तथा आमाप (साइज़) में प्राप्त कर सकते हैं। इसे अच्छे सतही गुण वाले कलपुर्जों में बदला जा सकता है। इसकी मशीननीयता का गुण इसकी सूक्ष्म संरचना के कारण होता है। इसकी संरचना की खास बात यह है कि इसकी कांचीय आधात्री (मैट्रिक्स) में छोटे मणिभों के एक समान फैलाव, अंतः-बंधित प्लेटों के व्यूह (ऐरे) की तरह ही होते हैं। चूंकि इन पदार्थों में रंध्रता नहीं होती है, इनसे संरचित पुर्जों/घटकों को निर्माण के बाद पकाने (Bake) की आवश्यकता नहीं होती है।

इसके विभिन्न उपयोगों और सामरिक महत्व को ध्यान में रखकर तकनीकी भौतिकी एवं प्रोटोटाइप इंजीनियरी प्रभाग (भापअ केंद्र) ने इस प्रकार के सिरेमिक विकसित करने का निर्णय लिया है। इन्हें विभिन्न आकार और आमापों, जैसे ठोस चकतियों (डिस्कों), ठोस बेलनों और खोखले बेलनों में बनाया गया है। इस पदार्थ से कई घटक (कंपोनेंट), जैसे : कुचालक छल्ले, ढिबरियां/काबले (नट/बोल्ट), लग (lug) आदि, रूपों में बनाये गये हैं। इनके बनाने में कुछ विशेष सावधानी रखनी पड़ती है।

इस पदार्थ को निम्न विधियों से तैयार किया गया है : (1) सिंटरण पथ द्वारा एवं (2) कांचीय पथ द्वारा। सिंटरण विधि में जहां वांछित आकार के सुसंहत प्रतिदर्श (सैंपल) में सतही नियंत्रित क्रिस्टलन होता है वहीं कांचीय विधि में कांचीय पदार्थ को वांछित आकार और आमाप में बनाकर, उसका नियंत्रित क्रिस्टलन, विशेष तापीय समय-सारिणी (हीटिंग शैड्यूल) को अपनाकर किया जाता है। सामान्यतः इस पदार्थ को बनाने के निम्न चरण हैं :-

1. आरंभिक भरण (चार्ज़) को मिश्रित करना व पोसना
2. निस्तापन (कैल्शिनेशन)
3. पीसना
4. फुआर-शुष्कन (स्प्रे ड्राइंग)
5. सिंटरण
6. कांच को पिघलाना व ढालना
7. कांच का अनीलन (एनीलिंग)
8. नियंत्रित क्रिस्टलन

दोनों विधियों में प्रथम तीन चरण उभयनिष्ठ हैं। 4 व 5 चरण सिंटरण विधि में तथा 6, 7 और 8 चरण कांचीय विधि में अपनाये जाते हैं। दोनों विधियों में मूल भरण बनाने के लिए, विभिन्न घटकों को ऑक्साइड और कार्बोनेट के रूप में पूर्व-निश्चित अनुपात अनुसार लेते हैं। फिर प्लैनटरी बॉल मिल में 4-8 घंटे तक पूर्णतः मिश्रित व पिसाई करने के बाद, उस मिश्रण का निस्तापन किया जाता है। इसमें मैग्नेशियम फ्लोराइड न्यूक्लिएटिंग

एजेंट का काम करता है। शुष्कन के समय उचित बंधक व प्लास्टीसाइजर को भी मिश्रित किया जाता है, ताकि सुसंहत बेहतर हो। चूर्णन पदार्थ को विभिन्न आमापों में, (50 मिमी. व्यास x 50 मिमी. लंबाई तक में) दाबक मशीन में 4,000 किग्रा/मिमी^{2} के अधिकतम दाब तक सुसंहत किया जाता है। इस कच्ची प्रावस्था में प्राप्त सुसंहत पदार्थ को प्रतिरोधी ताप भट्टी में पूर्व निर्धारित तापीय समय-सारिणी के अनुसार सिंटरित करते हैं।

कांचीय पथ से कांचीय सिरेमिक बनाने के लिए, निस्तापित चूर्ण को Pt-Rh के क्रुसिबल में ढक्कन से ढककर एक विशेष प्रकार की भट्टी में 1500 ^{0}C ताप पर पिघलाते हैं। संवहन द्वारा पूर्ण मिश्रित होने के लिए 1-2 घंटे रखने के बाद, पिघले हुए भरण को विभिन्न आकार और आमाप के ग्रेफाइट/पीतल के सांचों में डालकर तुरंत ही ताप शीतलन (अनीलन) किया जाता है। यह बताना उचित होगा कि इस पूरी प्रक्रिया में अनीलन एक महत्वपूर्ण चरण है - यदि यह ठीक से नहीं किया गया तो कांचीय हिस्सों में दरारें (क्रेकस) बन जाती हैं जो क्रिस्टलन के दौरान और भी बढ़ सकती हैं। मूल कांच का नियंत्रित क्रिस्टलन दो पदों में किया जाता है :

1. नाभिकीकरण (न्यूक्लिएशन)
   (लगभग 500-600 ^{0}C) पर व
2. क्रिस्टलन (लगभग 950-1000 ^{0}C) पर।

इस पदार्थ की फ्लोरोफ्लोगोपाइट प्रावस्था व क्रम से एक दूसरे से बंधी प्लेट वाली सूक्ष्म संरचना (आवरण पृष्ठ) ही इस पदार्थ को मुख्यतः मशीननीय बनाती है। इस पदार्थ से बनाये गये कई प्रतिदर्श इस अंक के आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित हैं।

उच्च विभव के कुचालक/अंतरालक की आवश्यकता विभिन्न आकार व आमापों में पड़ती है। सावधानी पूर्वक मशीनन/कर्तन/छिद्रण द्वारा इनका निर्माण विभिन्न वैश्लेषिक उपकरणों, स्पटर आयन पंपों, निर्वात निकायों व इलेक्ट्रॉन पुंज-वाष्पकों के लिए किया गया है इसके अतिरिक्त सोपानी प्लाज्मा गन के लिए आवश्यक (55 मिमी. बाह्य व्यास, 40 मिमी. अंतः व्यास, 5 मिमी. मोटाई) अंतरालक व स्पटर आयन पंपों के लिए कई छोटे लग (lugs) भी बनाये गये हैं। यह विकसित पदार्थ आयतिक पदार्थ (जो MACOR नाम से जाना जाता है) के समकक्ष पाया गया है।

प्रस्तुति : **डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला**
बी-12, प्लॉट-52, सेक्टर-17, वाशी, नयी मुंबई

अन्य विज्ञान समाचार

1. बॉयोनिक कान, कृत्रिम आंख और साइबरनेटिक पैर :

इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी (सूचना तकनीकी) अर्थात कंप्यूटर आधारित तकनीक ने समूचे विश्व की जीवन-शैली को बदल दिया है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी कंप्यूटर की आवश्यकता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। रक्त की जांच हो या डी. एन. ए. की जांच, आज कंप्यूटर की हर ज़गह उपयोगिता है। सेहत के लिए कंप्यूटर आधारित ऐसे उपकरण बनाये जा रहे हैं कि बहरा सुन सके, लंगड़ा चल सके और अंधा देख सके। आज चिकित्सा के क्षेत्र में बॉयोनिक्स (इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियरिंग सिस्टम में बॉयोलॉजी का प्रयोग) एवं साइबॉर्ग (साइबरनेटिक आर्गन्स) आदि तकनीकों का बहुत प्रयोग हो रहा है, जिससे शारीरिक अक्षमता वाले व्यक्ति भी सामान्य जीवन जी सकते हैं।

बॉयोनिक कान एक ऐसा उपकरण है, जिससे बहरा भी सुन सकता है। ऐसे कानों में एक माइक्रोफोन लगा होता है, जो बाहरी ध्वनि या शोर की पहचान करके इसे स्पीच प्रोसेसर को भेज देता है, जो शरीर के बाहरी भाग में ही लगा रहता है। यह प्रोसेसर ध्वनि या शोर की प्रोसेसिंग करके इसे विद्युत संकेतों में परिवर्तित कर देता है। अवांछित शोर को अलग करने एवं ध्वनि की प्रोसेसिंग का कार्य न्यूक्लियस आर 126 क्लिनिकल प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर द्वारा किया जाता है। इस प्रकार से प्रोसेस किये गये विद्युत संकेतों को आंतरिक कान में स्थित स्नायु कोशिकाओं को भेजा जाता है, जिसके लिए लगभग 20 इलेक्ट्रोडों का प्रयोग किया जाता है। इलेक्ट्रोड आंतरिक कान के स्नायुओं को उत्प्रेरिक करता

है, जिससे ये संकेत मस्तिष्क तक पहुंच जाते हैं । मस्तिष्क इन संकेतों को तुरंत समझ लेता है । इस प्रणाली से बहरे व्यक्ति को भी सुनाई देता है । बॉयोनिक कान के निर्माण में क्लेरियॉन और न्यूक्लियस जैसी कंपनियों को सफलता प्राप्त हुई है ।

सूचना तकनीक को आर्टिफीशियल विजन यानी कृत्रिम आंख बनाने में सफलता प्राप्त हुई है । इससे अभी दृश्य, सफेद और काले (ब्लैक एंड व्हाइट) रंग में ही दिखाई देते हैं । वह भी ऐसा मानो किसी धुंध में से देख रहे हों । इससे अभी पढ़ना-लिखना संभव नहीं हो पाया है, किंतु सूचना तकनीक का जिस तरह से विकास हो रहा है, उससे लगता है कि भविष्य में ऐसी आंखें उपलब्ध हो सकेंगी, जिससे हर रंग साफ-साफ दिखाई पड़ सकेगा और जिससे हर प्रकार कार्य किया जा सकेगा, फिलहाल उपलब्ध कृत्रिम आंख की कीमत भारतीय मुद्रा में लगभग 47-48 लाख है, जिसके कारण बाजार में इसकी सफलता संदिग्ध है ।

बाजार में जो आर्टिफीशियल विजन नामक उत्पाद उपलब्ध हो सका है, उसे डॉ. विलियम डॉलबी का आर्टिफिशियल विजन कहते हैं । डॉलबी संस्थान को इस विजन को तैयार करने में लगभग 20 वर्ष प्रयत्न करना पड़ा है । इस कृत्रिम आंख में दो डिजिटल कैमरे होते हैं, इन कैमरों को धूप के चश्मों में फिट किया जाता है । इसके साथ एक छोटा कंप्यूटर होता है, जिसे पहना जा सकता है । इस कंप्यूटर का विन्यास है : 120 मेगा हट्र्स का प्रोसेसर, 32 एम.बी. रैम (RAM) और 1.5 जी.बी. (GB) हार्ड ड्राइव । इसमें कुछ ऐसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण भी होते हैं, जो वीडियो संकेतों की प्रोसेसिंग करते हैं । प्रोसेस किये गये संकेत इलेक्ट्रोडों के माध्यम से मस्तिष्क को भेजे जाते हैं । मस्तिष्क इन संकेतों को समझ लेता है ।

कंप्यूटर तकनीक ने साइबरनेटिक अंगों के माध्यम से विकलांगों के जीवन में नव आशा और विश्वास का संचार किया है । साइबरनेटिक अंगों का प्रयोग तब किया जाता है, जब किसी व्यक्ति का अंग बीमारी या दुर्घटना के कारण काट दिया जाता है । काटे गये अंगों के स्थान पर साइबरनेटिक अंग लगा दिया जाता है, जिससे व्यक्ति विकलांगता से परे सामान्य रूप से जीवन-यापन कर सकता है । साइबरनेटिक अंग कितने उपयोगी हो सकते हैं, इसका दृष्टांत उस समय देखने को मिला था, जब आतंकवादियों ने 11 सितंबर, 2001 को वर्ल्ड ट्रेड सेंटर गिरा दिया था । घटना के समय वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की 70 वीं मंजिल में कर्टिस ग्रिम्सले नामक व्यक्ति काम कर रहा था । इस व्यक्ति का पैर कार दुर्घटना में जा चुका था और उसने साइबरनेटिक पैर यानी सी-लेग लगवा लिया था । इस पैर के सहारे वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह चल फिर, दौड़ सकता था । जब वर्ल्ड सेंटर गिर रहा था, तब ग्रिम्सले इस सी-लेग के सहारे दौड़ते हुए 70 वीं मंजिल से नीचे उतर आया । सी-लेग के कारण वह चमत्कारिक ढंग से अपनी जान बचाने में सफल हुआ और संपूर्ण विश्व को इस कारगर उपकरण पर विश्वास भी हो गया ।

साइबरनेटिक पैर (सी-लेग) का निर्माण जर्मनी के आटोवॉक हेल्थ सेंटर में किया जाता है । इस प्रकार का पैर बनाने का काम अमेरिका के 'मेसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी' में भी चल रहा है । इस पैर में चार संवेदक (sensor) लगे होते हैं । ये संवेदक दो प्रोसेसरों से प्रचालित रहते हैं । ये संवेदक इन दो प्रोसेसरों को एक सेंकड में 50 बार आंकड़ें प्रेषित करते हैं । दो संवेदक, जिन्हें पीजोइलेक्ट्रिक सेंसर कहा जाता है, पैरों पर आने वाले दबाव को मापते हैं । ये इस बात की भी गणना करते हैं कि एड़ी जमीन पर कितनी बार पड़ी । इसी प्रकार इस पैर में एक चुंबकीय सेंसर होता है, जो एड़ी के कोण को नापता है । इस पैर में लीथियम ऑयन बैटरी का प्रयोग होता है, जो इसे 35 घंटे तक प्रचालित रखती है । इस पैर द्वारा हर प्रकार का कार्य किया जा सकता है, जहां तक कि दुर्गम स्थानों, पहाड़ियों पर भी चढ़ा जा सकता है । स्थिरता के लिए इसमें अंतर्विष्ट-प्रोग्रामिंग (एम्बेडेड प्रोग्रामिंग) होती है । सेंसरों से मिलने वाले आंकड़ों को पढ़कर यह प्रोग्रामिंग चलते-फिरते-दौड़ते समय एक संतुलन बनाये रखती है । वर्तमान में इस पैर को अपनाने में इसकी भारी कीमती ही सबसे बड़ा

अवरोध है । भारतीय मुद्रा में इसका मूल्य लगभग 18 लाख रुपए है । जो भी हो, सूचना तकनीक से अनेक असंभव बातों को संभव किया जा रहा है । जिस प्रकार से इस क्षेत्र में कार्य हो रहा है, उसे देखकर यह उम्मीद की जा सकती है कि भविष्य में शरीर के लिए उपयोगी उपकरणों में और सुधार होगा और ये कम दामों में भी उपलब्ध हो सकेंगे, जो मानव जीवन के लिए अत्यंत कल्याणकारी सिद्ध होंगे ।

2. चाय के बारे में बदली है राय :

इस दुनिया में जल के बाद सबसे लोकप्रिय पेय है - चाय । जर्मनी, जापान और यूनाइटेड स्टेट्स के वैज्ञानिक चाय पर अपने शोध कार्यों से निरंतर कोई न कोई नये लाभप्रद परिणाम के साथ सामने आ रहे हैं । यू.एस. के न्यूट्रिशन वैज्ञानिक जेफरी ब्लूमबर्ग को चाय बहुत पसंद है और वे कहते हैं, 'आपको जितनी चाय पीनी है, पीजिए । यदि आप चाय नहीं पीते हैं, तो शुरू कर दें । कम-से-कम एक कप तो जरूर लें, यह आपकी सेहत को ठीक रखेगा । वैसे यदि दिन में चार कप पी लें, तो फिर कहना ही क्या ।' नयी खोजों के अनुसार चाय हरी हो या काली, गर्म हो या ठंडी, यह आपके स्वास्थ्य की अनेक प्रकार से रक्षा करता है ।

डॅच के शोधकर्ताओं ने पिछले साल चाय पीने वाले और नहीं पीने वाले कुल 4807 व्यक्तियों का अध्ययन किया । उनका निष्कर्ष है कि वे व्यक्ति जो दिन में दो कप चाय भी पी लेते हैं, उन्हें हृदयाघात का खतरा चाय नहीं पीने वालों से 50 % कम होता है । इसी तरह बोस्टन के वैज्ञानिकों ने भी विगत वर्ष हृदयरोग के मरीजों पर शोध किया और पाया कि जो मरीज दो या इससे अधिक कप चाय का सेवन करते हैं, उनमें से 44% मरीजों को आगामी चार वर्षों तक जान को खतरा नहीं है ।

अमरीका के अध्ययनकर्ताओं के अनुसार चाय कोलेस्ट्रॉल के स्तर को औसतन 10% कम कर सकता है । जिन व्यक्तियों की धमनियों में पहले से ही कोलेस्ट्रॉल की परत जम चुकी है, उन्हें चाय में पाये जाने वाले फ्लेवोनॉयड्स और ऑक्सीडेंटों से लाभ होगा । ये उनकी धमनियों की भीतरी लाइन को क्षतिग्रस्त होने से बचाने में मदद करेंगे ।

चाय को लेकर जापान में पिछले कुछ वर्षों में जो खोज कार्य हुए हैं, उनसे पता चलता है कि यदि हरी चाय दिन में 10 या इससे अधिक कप पी जाये, तो यह महिलाओं में कैंसर की शुरुआत को नौ वर्षों के लिए और पुरुषों में तीन वर्षों के लिए टाल सकता है । कनाडा के अध्ययनकर्ताओं ने पुरुषों के लिए चाय के सेवन से एक अन्य लाभकारी निष्कर्ष दिया है कि जो पुरुष दिन में तीन कप चाय पीते हैं, उनमें प्रोस्टेट कैंसर होने की संभावना 30% कम होती है ।

चाय के फ्लेवोनॉयड्स अस्थियों की रक्षा करते हैं । इसमें फ्लोराइड और कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं, जो दांतों में बैक्टीरिया को चिपकने नहीं देते । इससे दांतों में कैविटी बनने से रक्षा होती है ।

चाय के बारे में आज से 150 वर्ष पहले प्रसिद्ध लेखक सिडनी स्मिथ ने एक प्रश्न किया था कि 'चाय के बिना दुनिया क्या करेगी ?' इस प्रश्न के भीतर का रहस्य आज सामने है । दुनिया के लिए चाय की जरूरत को प्रमाणित कर रहे हैं आज के वैज्ञानिक - चाय जो विश्व के अधिकांश लोगों का प्रिय पेय है और दिन की शुरुआत है । जो चाय नहीं लेते हैं, उनके लिए यही संदेश है कि अब संकोच कैसा, बस शुरु कर दें चाय ।

3. खतरे अधिक विटामिनों के : पौष्टिक भोजन का कोई विकल्प नहीं :

लोगों द्वारा विटामिनों की अधिक खुराकों के सेवन को लेकर चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञ चिंतित हैं । भारी संख्या में लोग अच्छे स्वास्थ्य के लिए पूरक दवाइयों के रूप में विटामिनों का प्रयोग कर रहे हैं । अमरीका के शोधकर्ताओं का कहना है कि आहार में पौष्टिकता की कमी को विटामिन दूर नहीं कर सकते हैं । मल्टीविटामिनों से किसी बीमारी को रोकने में मदद नहीं मिलती है, बल्कि विटामिनों और मिनरलों के अधिक सेवन से बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है ।

खोजकर्ताओं की मुख्य चिंता यह रही है कि ये मल्टीविटामिन स्वस्थ लोगों द्वारा लिये जा रहे हैं, न कि उन व्यक्तियों द्वारा जिन्हें विशेष जरूरत के रूप में विशेष विटामिनों या मिनरलों की जरूरत है। अमरीका के फूड एंड न्यूट्रीशन बोर्ड के डॉ. बेंजामिन कैबेलरो का कहना है कि विटामिन 'ए' जैसी पूरक दवाइयों की निर्धारित खुराक एवं वह खुराक जिससे हानि हो सकती है, के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं है। ठीक इसी प्रकार की समस्या अन्य विटामिनों और मिनरलों को लेकर है, जिनमें आयरन व विटामिन 'ई' एवं 'सी' उल्लेखनीय होते हैं।

लोगों में विटामिन 'सी' और 'ई' का सेवन बहुत लोकप्रिय है। वैज्ञानिकों का पहले ऐसा विचार था कि इनसे कैंसर व हृदय-रोग जैसी बड़ी बीमारियों को रोकने में मदद मिलेगी, लेकिन लगातार चले सघन अध्ययनों से ऐसे कुछ विशेष प्रभाव का पता नहीं चला है। इसके उल्टे यह ज्ञात हुआ है कि विटामिन 'ई' की पूरक दवाइयों से हृदयाघात के खतरे बढ़ सकते हैं। इसी तरह विटामिन 'सी' के सेवन से भी किसी लाभकारी प्रभाव का पता नहीं चला।

उपर्युक्त बातों के बावजूद वैज्ञानिक इस बात से इंकार नहीं करते हैं कि कुछ विशेष व्यक्तियों को विटामिनों की विशेष जरूरत होती है। उदाहरणार्थ, अधिक उम्र के व्यक्तियों को विटामिन बी-12 की आवश्यकता हो सकती है, क्योंकि उन लोगों में, आहार से इसे अवशोषित करने की क्षमता कम हो जाती है। वे लोग जिन्हें अपना कुछ समय बाहर खुले में व्यतीत करना होता है, उन्हें विटामिन-डी की जरूरत पड़ सकती है। इस विटामिन का संश्लेषण त्वचा द्वारा सूर्य-प्रकाश में रहने पर किया जाता है। अधिक उम्र के व्यक्तियों की त्वचा में भी इस विटामिन को संश्लेषित करने की क्षमता कम हो जाती है, अतः उन्हें यदि बाहर रहना पड़े तो इस विटामिन की आवश्यकता होती है।

गर्भवती महिलाएं, जिन्हें फॉलिक एसिड (फलों और सब्जियों में उपलब्ध) की पर्याप्त मात्रा नहीं मिल पाती है, उनके लिए यह खतरा बढ़ जाता है कि उनके पैदा होने वाले शिशु में न्यूरल ट्यूब संबंधी दोष आ जायें। अतः उन्हें गर्भावस्था के आरंभ से ही फॉलिक एसिड के सेवन की जरूरत होती है। कुछ वैज्ञानिक तो शिशुओं की उक्त दोष से रक्षा हेतु सभी गर्भवती महिलाओं के लिए इसकी खुराक आवश्यक मानते हैं।

किंतु अधिकांश लोगों की समस्या विटामिनों की कमी नहीं है। शोधकर्ताओं का प्रश्न है कि जो स्वस्थ हैं और पौष्टिक भोजन ले रहे हैं, उन्हें आखिर विटामिनों की क्या आवश्यकता हो सकती है ? और जो पौष्टिक भोजन नहीं ले पा रहे हैं, वे क्या मल्टीविटामिनों से आहार की कमी को पूरा कर सकते हैं ? उनका मानना है कि विटामिनों की पूरक खुराक लेने वाले व्यक्तियों में इनकी मात्रा इतने अधिक स्तर पर जा सकती है कि ये आवश्यकता से पांच गुना अधिक हो जायें और तरह-तरह की बीमारियों का कारण बनें।

अतः आरोग्यमय जीवन के लिए पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। इसके लिए निम्नलिखित उपायों पर ध्यान दिया जा सकता है :

- प्रतिदिन एक गिलास सब्जियों का रस (वेजिटेबल जूस) लें।
- प्रतिदिन पांच या इससे अधिक बार फलों और सब्जियों का सेवन करें। एक बार में एक मध्यम साइज का फल लें या एक छोटे गिलास में फलों का रस लें।
- तेल का प्रयोग कम करें।
- हरी चाय (ग्रीन टी) पियें।
- शक्कर और परिष्कृत आटे यानी मैदे का प्रयोग न करें।
- धूम्रपान न करें।
- अपनी क्षमता का तीन-चौथाई भाग ही भोजन करें।
- व्यायाम करें।
- परिवार जनों और मित्रों में आलिप्त रहें। प्यार पाना और किसी का हो जाने का भाव शॉक-एब्जार्बर की तरह कार्य करता है और शारीरिक प्रतिरक्षा में वृद्धि करता है।

- सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखें ।
- वैसा कुछ करें जिससे आपको वास्तव में खुशी मिलती हो ।

डॉ. कैबेलरों का निष्कर्ष है कि यह लोगों का भुलावा है कि वे आहार में पोषक तत्त्वों की कमी को मल्टीविटामिनों द्वारा पूरा कर सकते हैं । वे कहते हैं, *'जो रोज जंक-फूड का सेवन करते हैं, उनके लिए विटामिन किसी काम के नहीं । पौष्टिक भोजन का कोई विकल्प नहीं है । हम यह नहीं बता सकते कि पोषक भोजन का कौन सा अंश किस स्थिति के लिए जिम्मेदार है । हमें केवल यह पता है कि जो फल या शाक-सब्जी का सेवन पांच या अधिक बार करते हैं, उन्हें बीमारियां कम होती हैं । हमने बीटा कैरोटीन, विटामिन ई और एंटीऑक्सीडेंटों का प्रयोग किया, पर उनसे कुछ नहीं हुआ । लोगों को जादुई गोली की प्रतीक्षा है, जो मुमकिन नहीं है ।'*

प्रस्तुति : **बालकृष्ण काबरा 'एतेश'**
11, सूर्या अपार्टमेंट, राणाप्रताप नगर,
नागपुर - 440 022

संगोष्ठी समाचार

विज्ञान संचारकों के लिए द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन

जून 20-22, 2003 को विज्ञान संचारकों हेतु द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (Second International Conference for Science Communicators) का आयोजन भा.प.अ. केंद्र के ट्रेनिंग स्कूल हॉस्टेल (प्रशिक्षण विद्यालय छात्रावास) अणुशक्तिनगर के मल्टीपरपज सभागृह में संपन्न हुआ । इस सम्मेलन का आयोजन 'नेशनल सेंटर फॉर साइंस कम्युनिकेटर्स' तथा मराठी विज्ञान परिषद द्वारा संयुक्त रूप से किया गया । संगोष्ठी का मुख्य विषय था - 'मानव और ब्रह्मांड' (Man and the Universe) । इसका उद्घाटन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. यशपाल ने किया । इस अवसर पर प्रख्यात खगोल वैज्ञानिक डॉ. जयंत नार्लीकर का अभिनंदन किया गया । डॉ. नार्लीकर के जीवन पर आधारित एक डॉक्यूमेंटरी फिल्म भी इस अवसर पर दिखाई गयी ।

तीन दिन के इस सम्मेलन को सात सत्रों में बांटा गया था । प्रथम सत्र के अंतर्गत विज्ञान तथा सामाजिक दायित्व विषय पर डॉ. नार्लीकर के अलावा, एस.एन.डी.टी. की पूर्व कुलपति सुश्री डॉ. सुमा चिटनिस, लोकसत्ता के ग्रुप एडिटर श्री कुमार केतकर, मुंबई के शल्य चिकित्सक डॉ. वी. एन. श्रीखंडे आदि वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये । डॉ. नार्लीकर ने विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के लाभों के लिए वैज्ञानिकों तथा समाज के बीच संवाद कायम रखने पर बल दिया । श्री कुमार केतकर ने उग्र राष्ट्रवादी धार्मिक विश्वासों के संवर्धन में विज्ञान के प्रयोग तथा दुरुपयोग का आकलन किया । उन्होंने जोर देकर कहा कि - खूबी उपलब्धियों में नहीं, बल्कि मूल्यों में होती है । डॉ. श्रीखंडे ने चिकित्सा व्यवसाय में जवाबदेही होने की वकालत की । विज्ञान संचारकों को दिशा-निर्देश देते हुए उन्होंने कहा कि - विज्ञान की बातें तथा आम समस्याओं के बारे में लोगों को सीधी-सादी भाषा में बताने की जरूरत है । डॉ. सुमा चिटनिस ने जीवन को समृद्ध और उत्तम बनाने में विज्ञान की प्रबल क्षमता का उल्लेख करते हुए कहा कि 'विज्ञान बनाम समाज' पर बहस नहीं होनी चाहिए, बल्कि उन्हें एक दूसरे का पूरक मानना चाहिए ।

दूसरे सत्र में 'खगोल भौतिकी तथा ब्रह्मांड विज्ञान' पर संपन्न हुई चर्चा में IUCAA के प्रो. संजीव धुरंधर ने खगोलिकी के अध्ययन में भूमि पर आधारित संसूचकों के प्रयोग की जानकारी दी । IUCAA के प्रो. पद्मनाभन ने ब्रह्मांड-विज्ञान के क्षेत्र में किये गये नवीनतम अध्ययनों की जानकारी दी । 'यूनिवर्सिटी ऑफ सिरेकस, यूएसए' से आये डॉ. कमलेशवाली ने NASA के नवीनतम स्पेस टेलीस्कोप 'चंद्रा' की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला । उन्होंने 'डार्क मैटर' - इसके स्रोत तथा शक्ति भंडार की भी चर्चा की ।

तीसरे सत्र की चर्चा का विषय था - 'खगोलिकी में शौकिया लोगों की भूमिका' । इस विषय पर बोलते हुए NISTADS दिल्ली के निदेशक प्रो. राजेश कोचर ने व्यक्त किया कि - खगोलिकी ही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें 'अमेचर' (शौकिया) शब्द को सकारात्मक अर्थ

में लिया जाता है । इस सत्र में दोनों, शौकिया तथा स्थापित खगोलविदों ने वार्ताएं प्रस्तुत की । कोलकता के डॉ. आशिष मुखर्जी ने बताया कि खगोलिकी के क्षेत्र में आरंभ में जिन लोगों ने महत्वपूर्ण योगदान किया, वे मूलतः शौकिया खगोलविद थे । मुंबई के श्री अभय देशपांडे ने खगोलिकी के प्रसार में पुस्तकों की जानकारी दी । उन्होंने बताया कि - मुंबई की खगोलमंडल संस्था 'स्लाइड शो', खगोलिकी की शिक्षा, स्थानीय समूहों का समन्वयन तथा प्रगत वैज्ञानिक यंत्रों की प्राप्ति से संबंधित कार्यक्रमों का संचालन करती है । 'अमेचर एस्ट्रोनॉमर एसोसिएशन' के संस्थापक सदस्य डॉ. जे. बी. मिस्त्री ने विद्यार्थियों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकसित करने में शौकिया खगोलविदों की महत्वपूर्ण भूमिका की चर्चा की । 'कॉलेज ऑफ फ्रांस' पेरिस से आये प्रो. जे. सी. पेकर ने बच्चों, बड़ों तथा सामान्य जनों में विज्ञान का संचार करने में शौकिया लोगों की भूमिका पर ज़ोर दिया । ब्राजील के प्रो. एन्निओ कैंडोट्टी ने विज्ञान संचारकों के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Union for Science Communicators) की स्थापना की आवश्यकता पर विचार व्यक्त किये । उन्हें नवगठित संघ का अध्यक्ष चुना गया ।

चौथे सत्र में नक्षत्रालयों (प्लेनेटेरियमों) द्वारा खगोलिकी के संचारण पर चर्चा की गयी । इस सत्र में नेहरू नक्षत्रालय (प्लेनेटेरियम) मुंबई के निदेशक डॉ. पीयूष पांडेय, नेहरू नक्षत्रालय नयी दिल्ली की निदेशक डॉ. एन. रत्नाश्री, चेन्नई के पी. आइया पेरुमल तथा यूएसए के डॉ. केविन स्कॉट ने अपनी वार्ताएं प्रस्तुत की ।

'खगोल रसायनिकी, खगोल जैविकी तथा जीवन की उत्पत्ति,' यह विषय था - पांचवे सत्र का । इस सत्र की अध्यक्षता जैव-रासायनिक वर्ग, भा.प.अ. केंद्र के भूतपूर्व निदेशक डॉ. एम. एस. चड्ढा ने की । डॉ. चड्ढा ने जीवन की उत्पत्ति की गुत्थी सुलझाने में रसायनज्ञों तथा जैवरसायन विदों के योगदान का संक्षिप्त विवरण दिया । उन्होंने न्यूक्लीय अम्लों को प्रकृति का सर्वोत्तम सूचनादायक अणु कहा । इंग्लैंड से आये डॉ. मैक्स वालिस ने ब्रह्मांड में अन्यत्र जीवन होने तथा बाहर से धरती पर जीवन आने की संभावना की चर्चा की । टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान 'मुंबई के भूतपूर्व वैज्ञानिक डॉ. एस. रामादुराई ने जीवन की उत्पत्ति में खगोल रसायनिकी एवं खगोल जैविकी के निहितार्थ की चर्चा की । उन्होंने आगे के परीक्षण युरोपा, टाइटन तथा अन्य उपग्रहों के धरातल पर करने के महत्त्व पर जोर दिया । उनके अनुसार एमीनों अम्लों के बहुलकीकरण को अच्छी तरह समझने से जीवन की उत्पत्ति की गुत्थी सुलझाने में मदद मिल सकती है ।

छठे सत्र में वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास एवं प्रसार से संबंधित कार्यों की चर्चा की गयी । इस सत्र की अध्यक्षता प्रसार भारती के अध्यक्ष श्री एम. वी. कामत ने की । उन्होंने सामान्य जनता को विज्ञान की जानकारी उनकी भाषा में देने की जरूरत बतायी । एनसीएसटीसी (NCSTC) नयी दिल्ली के निदेशक श्री अनुज सिन्हा ने विज्ञान की प्रगति के संबंधित मसलों पर सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का ब्यौरा दिया । उन्होंने बताया कि आगामी वर्ष 2004 को वैज्ञानिक जागरूकता का वर्ष घोषित किया गया है । मराठी विज्ञान परिषद के अध्यक्ष डॉ. पी. एस. देवधर ने विद्यालयों में उत्तेजनात्मक विज्ञान-परीक्षणों द्वारा विद्यार्थियों में विज्ञान के प्रति अधिक रुचि जागृत करने पर बल दिया ।

अंतिम, सातवें सत्र में विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने में अजायबघरों (म्यूजियम) की भूमिका की चर्चा की गयी ।

संगोष्ठी के दौरान विविध विषयों से संबंधित 'पोस्टर' भी प्रदर्शित किये गये । संगोष्ठी का समापन प्रश्नोत्तर तथा पारस्परिक विचार-विमर्श के साथ किया गया ।

प्रस्तुति : डॉ. राजनारायण पांडेय
संपादक - वैज्ञानिक

❑❑❑

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद भा. प. अ. केंद्र, मुंबई

34 वीं वार्षिक रिपोर्ट (वर्ष 2002-03)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पिछली आम सभा 29 जनवरी 2002 को संपन्न हुई थी । इसमें 32वीं व 33वीं (आंशिक 29 जनवरी 02 तक) रिपोर्ट के साथ वर्ष 2000-01 का लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया था । वर्ष 2001-02 का लेखा जोखा, फरवरी 03 में और वर्ष 2002-03 का सितंबर 03 तक ही पूरा किया सका । अत: इस आम सभा के सम्मुख वर्ष 2001-02 एवं वर्ष 2002-03 का लेखा जोखा एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा है । यह प्रसन्नता की बात है कि परिषद के सभी कार्य सुचारू रूप से चलते रहे, 30 सितंबर 2003 तक की विभिन्न गतिविधियों का विवरण इस प्रकार है ।

'वैज्ञानिक' का प्रकाशन :

परिषद का यह महत्वपूर्ण कार्य सुचारू तरह से होता रहा । प्रत्येक वित्तीय वर्ष में तीन अंक प्रकाशित हुए जिसमें से प्रतियोगिता विशेषांक के तौर पर एक संयुक्तांक था । सभी अंक उच्च स्तर के थे । इस कार्य के लिए डॉ. गोविंद कोठियाल व उनकी टीम बधाई के पात्र हैं । श्री कुलवंत सिंह की टीम ने व्यवस्थापन कार्य बखूबी निभाया ।

अखिल भारतीय "डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता" का आयोजन किया गया । प्रतियोगिता के विजेताओं का कई बार यह सुझाव मिला है कि उन्हें उचित प्रशस्ति/प्रमाण पत्र भी दिया जाये । नयी कार्यकारिणी इस सुझाव के साथ ही विजेताओं को केंद्र में बुला कर उनकी वार्ता के आयोजन पर भी विचार करे ।

संगोष्ठियां आयोजन :

परिषद की इस गतिविधि का ध्येय हिंदी के माध्यम से वैज्ञानिक कार्यों को विभिन्न मंचों पर प्रस्तुत करना है । इससे वैज्ञानिक साहित्य का सृजन भी होता है । इस वर्ष तीन संगोष्ठियां आयोजित की गयीं ।

(1) नाभिकीय ईंधन चक्र - सहकर्मियों के लिए यह एक दिवसीय संगोष्ठी 16 सितंबर 02 के दिन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय सभागृह में आयोजित की गयी । संगोष्ठी संयोजन सुश्री के. उमाशंकरी व सुश्री साधना हेमरजानी ने किया । ईंधन चक्र के विभिन्न पहलुओं पर सरल हिंदी में चित्रों सहित दी गयीं वार्ताएं सहकर्मियों को अत्यंत रुचिकर लगीं ।

(2) 'मन' वैज्ञानिक पहलू - स्वास्थ्य संबंधी यह एक दिवसीय संगोष्ठी 5 अक्तूबर 02 को अणुशक्ति नगर में ट्रेनिंग स्कूल हॉस्टल के सभागृह में आयोजित की गयी । मन की कार्य प्रणाली, विस्तरण, व्यवहार, पारस्परिक संबंध, विकार, उपचार व वृद्धावस्था में मानसिक प्रबंधन आदि पर वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं । शाम तक करीब 200 प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया और प्रश्नोत्तरी में भी भाग लिया । परिषद की मानव स्वास्थ्य श्रृंखला की इस कड़ी में डॉ. सुरेश चंद्र पंत (पुणे से आये), डॉ. राकेश धिल्डियाल, डॉ. आशा दामोदरन व श्रीमती शुभा थट्टे ने भाग लिया । संगोष्ठी संयोजन डॉ. (श्रीमती) एस. वी. पाटकर व श्रीमती एस. डी. जोशी ने किया ।

(3) विपत्ति प्रबंधन - वैज्ञानिक एवं तकनीकी की भूमिका : मुंबई के बाहर आयोजित की जाने वाली संगोष्ठियों की श्रृंखला में 'विपत्ति प्रबंधन -वैज्ञानिक एवं तकनीकी की भूमिका' विषय पर दो दिवसीय संगोष्ठी 29 व 30 जुलाई,03 के दौरान उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर में क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला के सभागृह में आयोजित की गयी । संगोष्ठी का उद्घाटन उड़ीसा के राज्यपाल ने एवं समारोह की अध्यक्षता परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डॉ. अनिल काकोडकर ने की ।

इस संगोष्ठी में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद व न्यूक्लियर पॉवर कारपोरेशन के अलावा, उड़ीसा की विभिन्न संस्थाओं यथा भौतिक संस्थान, उत्कल विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय

अनुसंधान प्रयोगशाला, उड़ीसा राज्य विपत्ति शमन प्राधिकरण (DSDMA), उड़ीसा विज्ञान अकादमी व संबंधित संस्थाओं के विशेषज्ञों द्वारा 15 वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं। संगोष्ठी में करीब 200 प्रतिभागी, जिसमें कई विद्यार्थी भी शामिल थे ने भाग लिया। उत्कल विश्वविद्यालय के कुलपति के सुझाव पर संगोष्ठी में स्थानीय भाषा उड़िया में भी विशेषज्ञों ने तीन वार्ताएं दीं। यह नया प्रयोग सफल रहा। संगोष्ठी संयोजन में श्री अरुण कुमार साहू तथा स्थानीय प्रबंधों में श्रीमती स्तुति साहू ने उल्लेखनीय सहयोग प्रदान किया।

हमारी तकनीकी उपलब्धियां :

वर्ष 2003 के हिंदी सप्ताह के दौरान, सहकर्मियों के लिए यह एक-दिवसीय संगोष्ठी 15 सितंबर 03 को भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय सभागृह में आयोजित की गयी। पिछले वर्ष प्रधानमंत्री माननीय श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी की इस केंद्र की दूसरी यात्रा के समय राष्ट्र को समर्पित की गयी उपलब्धियों की जानकारी सरल हिंदी में सहकर्मियों को दी गयी। संगोष्ठी संयोजन डॉ. कोकाटे व श्री राम नरेश शर्मा ने किया।

प्रश्नमंच :

इस कार्यक्रम का आयोजन 6 जनवरी 03 के दिन परमाणु ऊर्जा केंद्रीय विद्यालय के नवीं व दसवीं छात्रों के लिए भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय सभागृह में किया गया। कार्यक्रम की तिथि स्कूल कलेंडर को ध्यान में रख कर तय की गयी। छः से सात सौ छात्रों को केंद्र में लाकर हिंदी के माध्यम से नाभिकीय व अन्य वैज्ञानिक विषयों की जानकारी देने की यह सफल गतिविधि, केंद्रीय स्कूल के अध्यापकों व अन्य अधिकरियों की सहायता से तथा हमारे केंद्र की विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों की सक्रिय भूमिका से ही संभव हो पायी। पिछले वर्षों की तरह प्रश्नोत्तरी मंच का संचालन श्री दिनेश कुमार शुक्ल और कंप्यूटर उपकरणों व सॉफ्टवेयर का भार श्री आर भारतन की टीम ने संभाला। पारितोषिक वितरण, परिषद के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र कुमार शर्मा ने किया, जो अब परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद में नयी जिम्मेदारी के साथ कार्य कर रहे हैं।

नोबल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

यह महत्वपूर्ण कार्यक्रम वर्ष 2001 नोबेल पुरस्कार विजेताओं के बारे में 18 मार्च 02 के दिन एवं वर्ष 2002 के नोबेल पुरस्कार विजेताओं के बारे में 11 जुलाई 03 को आयोजित किया गया था। भौतिकी, रसायनिकी और जैविकी पुरस्कार विजेताओं के कार्यों पर विशेषज्ञों ने प्रकाश डाला। यह गतिविधि बहुत लंबे समय तक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल ने संचालित की और अब इस कार्य को डॉ. सुधाकर कोकाटे ने अपने हाथ में लिया है। 2002 के नोबेल पुरस्कारों के बारे में आयोजित कार्यक्रम में डॉ. कोकाटे ध्वनि व चित्रों के साथ कुछ नवीनता लाये हैं। आशा है यह प्रयास अब कार्यक्रम को एक नयी गति प्रदान करेगा। परिषद डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल के वर्षों तक किये गये इस प्रशंसनीय कार्य को संस्था की एक बड़ी सेवा मानती है।

मोनोग्राफ लेखन :

परिषद पिछले कई वर्षों से मोनोग्राफ लेखन के कार्य को बढ़ाने में प्रयत्नशील थी। इसके लिए लेखकों से संपर्क, नियम बनाने, लेखन के लिए मानदेय, योजना का उचित प्रचार, मोनोग्राफ विषयों का चुनाव आदि सभी कार्य सुचारु रुप से किये गये। आम सभा को बताते हुए हर्ष होता है कि अब 12 मोनोग्राफों पर कार्य प्रारंभ हो गया है और लेखकों को एक-एक हजार रुपये की अग्रिम राशि दे दी गयी है। आशा है कि अगले 2 वर्षों में लेखन कार्य पूरा हो जायेगा। परमाणु ऊर्जा विभाग को मोनोग्राफ मुद्रण के लिए उचित सहायता के लिए एक पत्र भेज दिया गया है। लेकिन परिषद को अन्य विकल्पों पर भी सोचना होगा ताकि मोनोग्राफ योजना का यह महत्वपूर्ण कार्य सफलतापूर्वक पूरा हो सके। 'वैज्ञानिक' के लगातार प्रकाशन के बाद यह एक बड़ी उपलब्धि कही जा सकेगी।

नयी कार्यकारिणी :

वर्ष 2003-04 व 2004-05 की कार्यकारिणी के चुनाव की प्रक्रिया 22 अगस्त 03 को प्रारंभ हो कर 25 सितंबर 03 को पूरी हो गयी। इस कार्य के लिए हम

डॉ. मिथिलेश कुमार श्रीवास्तव के आभारी हैं। इस आम सभा के बाद नयी कार्यकारिणी कार्यभार संभालेगी। नयी कार्यकारिणी की जानकारी अलग से प्रकाशित की जा रही है।

विविध :

सहकर्मियों के लिए "विज्ञान पत्रिका" का प्रकाशन व राजभाषा वार्ताओं का कार्यक्रम इस वर्ष भी आयोजित नहीं किये जा सके।

"अभियांत्रिकी के आधुनिकतम विश्लेषीय साधन" विषय पर प्रस्तावित संगोष्ठी का निर्णय कार्यान्वित नहीं किया जा सका।

इस वर्ष संस्था के कुछ कर्मठ कार्यकर्ता भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से सेवा निवृत्त हो कर हमसे विदा हुए। इनमें से श्री राम प्रसाद के साथ मेरा नाम भी जुड़ गया है। नयी कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में मैं आगे भी परिषद के कार्यों में अपना योगदान दे पाऊंगा यह मुझे आशा है। इन वर्षों में मिले सहयोग और प्रोत्साहन के लिए मुझे जिनका धन्यवाद देना चाहिए उनके नामों की सूची लंबी है। परंतु हिंदी का कार्य नाम की बजाय समर्पण से ही हो पाया है, यह विचार अवश्य आगे भी बना रहेगा।

परिषद अपने कार्यों को सुचारु रूप से संपन्न कर पायी इसके लिए भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के निदेशक डॉ. बी भट्टाचारजी और नियंत्रक श्री अन्टोनी डी'सा का संरक्षण लगातार मिला। अध्यक्ष श्री सुरेंद्र कुमार शर्मा तथा उपाध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार सूरी का मार्गदर्शन, अन्य सदस्यों और विभिन्न कार्यक्रमों के संयोजकों का निष्ठापूर्वक सहयोग मिला। अध्यक्ष ट्रेनिंग प्रभाग, पुस्तकालय व सूचना प्रभाग, हिंदी कक्ष ने हमेशा हमारी आवश्यक मदद की। कई हिंदी प्रेमियों ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रचार-प्रसार के कार्य में हाथ बटाया। मैं इन सभी का अत्यंत आभारी हूं।

रमेश चंद्र पंत
सचिव, हिं.वि.सा.प.

कुछ फूल : कुछ कांटे

'वैज्ञानिक' का जनवरी-मार्च 03 का अंक बहुत ही अच्छा लगा। अच्छे लेख, अच्छी टिप्पणियां एवं कविताएं दिल को छू गयीं। संपादकीय पढ़कर प्लास्टिक को लेकर जो लोगों में गलत अवधारणा बनी हुई थी थोड़ी कम होगी। प्लास्टिक युग वास्तव में लोगों के रोजमर्रा कार्य को आसान एवं सस्ता बना रहा है। जहां तक पॉलीथीन बैग (20 माइक्रॉन) का सवाल है उसकी जगह कागज के बैग का इस्तेमाल होना चाहिए। आज प्लास्टिक का हर कार्य में जोर-शोर से उपयोग हो रहा है। लेकिन लोगों में गलत धारणा बनने का एक कारण यह भी है कि सस्ती प्लास्टिक खरीद कर वे एक तरह से ठगे जाते हैं, वह जल्दी टूट जाती है जिसकी रिपेयरिंग नहीं हो पाती। धातु से बनी चीज का टूटने के बाद ब्रेजिंग हो जाता है। यहां तक उद्योगों में धातु के टैंक की जगह प्लास्टिक के टैंकों का इस्तेमाल हो रहा है लेकिन उसका गुणवत्ता नियंत्रण करना बहुत जरूरी है। हाल ही में अपशिष्ट प्रबंध प्रभाग में अल्प अवधि के लिए तरल अपशिष्ट (अल्प रेडियो सक्रिय) को प्लास्टिक (PVC) में रखा जाता था जो 15,000 लीटर क्षमता का था। परंतु उसकी मोटाई के परीक्षण के लिए क्यू. ए. एन. आर. जी. को सौंपा गया और अल्ट्रासॉनिक परीक्षण द्वारा उसकी मोटाई 4 से 5/6 मिमी., निचली सतह एवं ऊपरी सतह पर 9-10 मिमी. तक थी। जबकि सप्लायर द्वारा 9 मिमी. मोटाई बतायी गयी थी। ऐसे में, निचली सतह पर मोटाई कम होने की वजह से अपशिष्ट स्टोर करने वाले दो टैंक एक-दो दिन के अंदर, रख रखाव में ही टूट गये जिससे सप्लायर को अपना टैंक वापस लेना पड़ा। वस्तुतः प्लास्टिक में टूटने के बाद रिपेयरिंग की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि उसका उपयोग किसी और चीज में हो और उद्योगों में उपयोग लाने से पहले इसकी मोटाई, भंवर धारा (माइक्रॉन के लिए) एवं अल्ट्रासॉनिक विधि से ज्ञात करनी चाहिए ताकि टूटने का भय न बना रहे।

संजय गोस्वामी
क्यू ए एन आर जी, बीएआरसी, मुंबई - 85

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 2003

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित **हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता** हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों / फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है।** अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज / ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000 - 4000 शब्द) भेजें।

बढ़ी हुई अंतिम तिथि : 15 जनवरी 2004

: पुरस्कार :

प्रथम	: 2000 रु.
द्वितीय	: 1500 रु.
तृतीय	: 1000 रु.
प्रोत्साहन	: 500 रु.

*पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं **अहिंदी भाषी** प्रतियोगियों को **दो विशेष पुरस्कार** 500/- रु (प्रत्येक) के दिये जायेंगे। अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।*

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित रहेगा।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री कुलवंत सिंह, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक",
वैज्ञानिक अधिकारी, पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD), मॉडलैब
भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई - 400 085. फोन : 2559 4378

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा श्री कुलवंत सिंह द्वारा वन अप प्रिंटर्स, चेंबूर, मुंबई (फोन : 2521 2348 / 2521 6284) में मुद्रित व प्रकाशित।

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत ।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'
की
वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनोग्राफ (पृष्ठ संख्या लगभग 64, 96, 128, 192, 256) प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है । इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120 रु प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है । परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे । विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूपरेखाएं आमंत्रित हैं । जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो ।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिकीय, ताप, रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों । उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग
- नाभिकीय रिएक्टर
- नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम
- नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य
- आइसोटोप उत्पादन व उपयोग
- रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग
- नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा
- एजिंग (काल प्रवाहन) एवं डिकमीशनिंग
- ईंधन पुनर्संसाधन
- अन्य संबद्ध कार्य

रूपरेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी । मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे । इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें : **श्री जयप्रकाश त्रिपाठी**, प्रभारी अधिकारी, न्यूक्लीयर मैटेरियल मैनेजमेंट अनुभाग, पी.पी.,एफ.आर.डी., भा.प.अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

E-mail : jptripathi@rediffmail.com

Tel. : 022-2559 1224